राजस्थानी चित्रकला और हिन्दी कृष्ण काव्य

जयसिंह नीरज

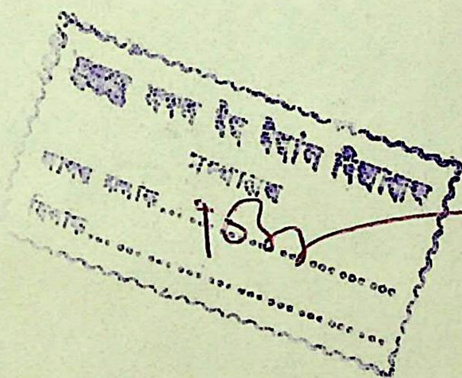


कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।

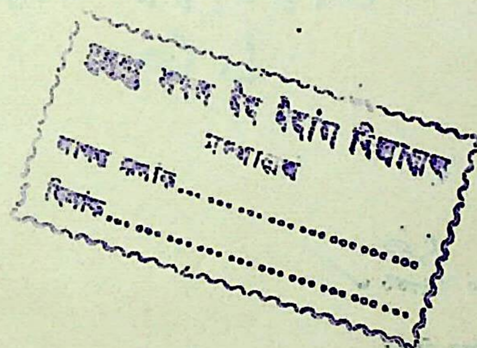


राजस्थानी चित्रकला
और
हिन्दी कृष्णकाव्य



राजस्थानी चित्रकला
और
हिन्दी कृष्णकाव्य

जयसिंह नीरज





राजकमल प्रकाशन
दिल्ली : पटना

मूल्य : रु० ~~२५.००~~ 50

प्रथम संस्करण : १९७६

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०,
८, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२

मुद्रक : गजेन्द्र प्रिंटिंग प्रेस,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

आवरण : राजीव वर्मा

आदरणीय पिताश्री ठा० धीरसिंह जी को
सादर समर्पित

दो शब्द

कलाओं के प्रति आरम्भ से ही मेरा लगाव रहा है। सांस्कृतिक स्थलों की यात्राओं ने इस रुचि को और भी मुखर कर दिया। अजन्ता, अलोरा, कोणार्क, भुवनेश्वर, साँची, खजुराहो, देलवाड़ा के स्थापत्य एवं मूर्तिकला तथा देश के विभिन्न संग्रहालयों की कला-वीथियों में प्रदर्शित सचित्र ग्रन्थों एवं लघुचित्रों के अवलोकन ने कलाओं के पारस्परिक सम्बन्ध के अध्ययन की ओर मुझे आकर्षित किया।

विषय

भारतीय चित्रकला का परिवेश विराट रहा है। अजन्ता, अलोरा की परम्परा का निर्वाह करने वाली राजस्थानी चित्रकला तो और भी मोहक रही है। यद्यपि राजस्थानी चित्रकला का विश्लेषण-विवेचन पहले से होता आया है, तथापि 'राजस्थानी चित्रकला के परिपार्श्व में हिन्दी 'कृष्णकाव्य का संश्लेषणात्मक अध्ययन' शोध रूप में प्रस्तुत नहीं हुआ। काव्य और चित्रकला का यह पारस्परिक अध्ययन मेरी रुचि का विषय था। राजस्थानवासी होने के कारण राजस्थानी कला और संस्कृति से मेरा सीधा सम्पर्क रहा है। राजपूती-सामन्ती-वैभव को मैंने भोगा तो नहीं, किन्तु उसे एक आलोचक की खुली आँखों से देखने का अवसर मुझे समय-समय पर मिलता रहा, इसलिए 'राजस्थानी चित्र कला और हिन्दी कृष्णकाव्य' को मैंने अपने शोध-प्रबन्ध का विषय बनाया। कार्यारम्भ के पूर्व विषय के विस्तार एवं गाम्भीर्य से मुझे भी सम्भ्रम हुआ था, पर साहित्य और कला के मर्मज्ञों के सहयोग ने मेरी संकल्प-पूर्ति को साकार कर दिया।

विषय का औचित्य

प्रस्तुत विषय हिन्दी-शोध-जगत में नया विषय है। राजस्थानी चित्रकला

का आधार प्रमुखतया काव्य रहा है। कृष्ण-चरित्र अपनी सरसता, विविधता एवं चित्रोपयोगिता के कारण चित्रण का प्रमुख आधार रहा है, इसलिए सूरसागर, रसिकप्रिया, कविप्रिया, बिहारी-सतसई, नागर-समुच्चय आदि ग्रन्थों एवं स्फुट-पदों के आधार पर उपर्युक्त ३०० वर्षों में राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियों में जो चित्रण हुआ है, वह मध्यकालीन काव्य के नये आयाम खोलता है। चित्राध्ययन के अभाव में मध्यकालीन कृष्ण-काव्य का अध्ययन सम्यक् परि-पुष्ट न होता, क्योंकि तत्कालीन कृष्ण-काव्य और चित्रांकन में बड़ी गहनता ही नहीं, पारस्परिकता भी रही है।

कृष्ण-काव्यगत कुछ रचनाएँ लोकप्रिय एवं बहुमान्य रही हैं, अतएव हमारे विवेच्यकाल के ३०० वर्षों में उन्हीं के चित्रण की धूम रही है। प्रस्तुत अध्ययन का केन्द्रबिन्दु प्रायः वही रचनाएँ रही हैं।

अध्ययन का स्वरूप

प्रस्तुत अध्ययन को शोध-प्रबन्ध की आवश्यकतानुसार ७ अध्यायों में विभा-जित किया गया है। प्रथम अध्याय में काव्य और चित्रकला के परस्पर सम्बन्धों, सीमा-रेखाओं आदि पर विचार किया गया है।

द्वितीय अध्याय में राजस्थानी चित्रकला का विवेचन है। इसके अन्तर्गत इस चित्रकला के नामकरण, विकास, विभिन्न शैलियों का उत्कर्ष, उनकी विशेष-ताएँ, वर्ण्य-विषय आदि पर विस्तृत विचार किया गया है।

तृतीय अध्याय "राजस्थान में कृष्ण-भक्ति-आन्दोलन : काव्य एवं चित्रकला का विकास" से सम्बन्धित है। कृष्ण-भक्ति-आन्दोलन व्रज की परिसीमाओं को लाँघकर बाहर भी गया और राजस्थान ने उसके विकास में अपना पूर्ण सहयोग दिया, जिसके फलस्वरूप काव्य और चित्रकला पर उसका विशेष प्रभाव पड़ा। कथ्य की एकता के कारण तत्कालीन धर्म, काव्य और चित्रकला में एकरसता दर्शनीय है।

चतुर्थ अध्याय में राजस्थानी चित्रकला में चित्रित हिन्दी-कृष्ण-काव्य का विस्तृत आलोचनात्मक विवरण दिया गया है। उपलब्ध सचित्र ग्रन्थों, लघु-चित्रों, भित्ति-चित्रों, 'पिछवाई' एवं 'पड़ों' के विवरणात्मक सन्दर्भों ने इस अध्याय में परवर्ती अध्यायों की पीठिका प्रस्तुत की है।

पाँचवाँ, छठा और सातवाँ अध्याय अध्ययन से सम्बन्धित है। उपर्युक्त अध्यायों में राजस्थानी चित्रकला के परिपार्श्व में हिन्दी-कृष्ण-काव्य का चित्र-योजनात्मक, भावांकनात्मक और कलांकनात्मक अध्ययन उदाहरण सहित विस्तार से हुआ है। साथ ही काव्य के परिपार्श्व में चित्रकला के अध्ययन की भी अनेक समस्याओं का यथास्थान संकेत कर दिया है।

इस प्रकार शोध-प्रवन्ध सर्वथा नवीन विषय से सम्बन्धित होने के कारण अत्यधिक श्रमसाध्य एवं आर्थिक दृष्टि से महार्घ सिद्ध हुआ है। भारतवर्ष के विभिन्न संग्रहालयों में (यथा पिक्चर एण्ड आर्ट गैलेरी बड़ौदा, प्रिन्स ऑफ वेल्स म्युजियम बम्बई, इतिहास संशोधक मण्डल पूना, भारत कला भवन बनारस, राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली तथा राजस्थान के विभिन्न संग्रहालयों में) मुझे कितनी बार ही घूमना और भटकना पड़ा है। अध्ययन के लिए फोटो-प्रतियाँ भी बड़ी कठिनाई से प्राप्त हो पायी हैं।

कृतज्ञता-ज्ञापन

इस शोध-कार्य में साहित्य एवं चित्रकला के मर्मज्ञ विद्वानों ने मुझे पूर्ण सहयोग दिया एतदर्थ मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। डॉ० सरनामसिंह शर्मा (आचार्य, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर) के निर्देशन में मैंने यह कार्य पूर्ण किया। मैं उनका किन शब्दों में आभार प्रगट करूँ।

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० नगेन्द्र, डॉ० विश्वनाथप्रसाद, डॉ० भागीरथ मिश्र, डॉ० विश्वम्भर उपाध्याय ने मुझे समय-समय पर सहयोग दिया।

राजस्थानी चित्रकला के सम्बन्ध में स्वर्गीय डॉ० मोतीचन्द्र, डॉ० रायकृष्ण दास, श्री रामगोपाल विजयवर्गीय, कुँ० संग्रामसिंह, डॉ० रत्नचन्द्र अग्रवाल जैसे विद्वानों से मैं समय-समय पर परामर्श लेता रहा हूँ, अतः मैं उनका कृतज्ञ हूँ। कुँ० संग्रामसिंह ने फोटो-प्रतियाँ प्राप्त करवाने में विशेष सहयोग दिया।

अन्त में राजकमल प्रकाशन का मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ को प्रकाशित कर कला के अध्ययन को नया आयाम दिया है।

—जयसिंह नीरज



विषय-क्रम

१. भूमिका

काव्य और चित्रकला

कला से मनुष्य का सम्बन्ध कब हुआ होगा, इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ कहना कठिन है, किन्तु यह मानव-चेतना के अनुपम वरदान के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है। मनुष्य ने जब से अपनी वाणी या कृति से अपने साथियों को मुग्ध या विस्मित करने का प्रयत्न किया तभी से उसका सम्बन्ध कला से जुड़ गया। कला के विकास की भूमिका में अभ्यास और प्रयोग का एक दीर्घकालीन इतिहास निहित है। दृश्य या अदृश्य, स्थूल या सूक्ष्म, वस्तु या भाव से सम्बन्धित सौन्दर्यानुभूति साकार होकर मनुष्य के सामने व्यक्तरूप में प्रकट होती है तो उस अभिव्यंजना को 'कला' कहते हैं। कला काल्पनिक सौन्दर्य को भी अभिव्यक्त करके मनुष्य के अन्तर की सौन्दर्य-निधि को प्रत्यक्ष कर देती है।

कला

कला संस्कृत भाषा का शब्द है। संस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है, जिनमें प्रमुख 'किसी वस्तु का सोलहवाँ भाग', 'समय का एक भाग', 'किसी भी कार्य के करने में अपेक्षित चातुर्य' आदि विशेषतः उल्लेखनीय हैं।[१] भरत-मुनि से पूर्व 'कला' शब्द का प्रयोग काव्य को छोड़कर दूसरे प्रायः सभी प्रकार के चातुर्य-कर्म के लिए होता था और इस चातुर्य-कर्म के लिए विशिष्ट शब्द था 'शिल्प'। जीवन से सम्बन्धित कोई उपयोगी व्यापार ऐसा न था जिसकी गणना शिल्प में न हो। इस प्रकार सभी कलाएँ शिल्प के अन्तर्गत समझी जाती थीं।[२] कला

१. देखिए, मोनियर विलियम्स : संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी, 'कला' शब्द
२. देखिए, वासुदेवशरण अग्रवाल : कला और संस्कृति, पृ० २२७-२३५

शब्द का सबसे प्रामाणिक प्रयोग भरत के नाट्यशास्त्र में मिलता है :—

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।[१]

भरतमुनि ज्ञान, शिल्प और विद्या से भी अलग 'कला' से क्या अभिप्राय ग्रहण करते थे, यह कहना कठिन है। अनुमान यही लगता है कि भरत द्वारा प्रयुक्त 'कला' शब्द यहाँ 'ललित-कला' के निकट है और शिल्प शायद उपयोगी कला के।[२] हमारे यहाँ 'कला' उन सारी जानकारियों या क्रियाओं को कहते रहे हैं जिनमें थोड़ी-सी भी चतुराई की आवश्यकता होती है।

कला के सम्बन्ध में पाश्चात्य दृष्टिकोण भी कुछ इसी प्रकार है। 'आर्ट' का सम्बन्ध पुरानी फ्रेन्च 'आर्ट' और लेटिन 'आर्टेम' या 'आर्स' से जोड़ा जाता है,[३] जिसका अर्थ बनाना, पैदा करना, या फिट करना होता है। वह शारीरिक या मानसिक कौशल, जिसका प्रयोग किसी कृत्रिम निर्माण में किया जाये, 'आर्ट' माना गया है।[४] अंग्रेजी में 'कला' शब्द का प्रयोग १३वीं शती से होने लगा था, जिसका शुद्ध अर्थ 'कौशल' मात्र था। १७वीं शती में 'कला' का प्रयोग वहाँ काव्य, संगीत, चित्र, वास्तु आदि ललित-कलाओं के रूप में भी होने लगा। आज भी 'कला' शब्द से प्रायः ललित-कलाओं की ही ध्वनि निकलती है।

इस प्रकार कला के स्वरूप के निरूपण में पूर्वी और पश्चिमी, दोनों ही विद्वानों के मत एक से जान पड़ते हैं। देश, काल, और परिस्थितियों के अनुसार 'कला' शब्द अनेकार्थों में प्रयुक्त होने के उपरान्त भी चातुर्य-कर्म और कौशल-पूर्ण अभिव्यक्ति के अभिप्राय से वंचित नहीं हुआ।

समय-समय पर विद्वानों एवं कला-मर्मज्ञों ने कला को जिस प्रकार परिभाषित किया है, उससे प्रायः ललित-कला ही ध्वनित होती है। महान् दार्शनिक प्लेटो के कथनानुसार प्रत्येक व्यक्ति सुन्दर वस्तु को अपना प्रेमास्पद चुनता है, अतः कला का प्राण सौन्दर्य है। उन्होंने कला को 'सत्य की अनुकृति की अनुकृति' माना है।[५] अरस्तू उसे अनुकरण कहते हैं।[६] हीगेल ने कला को आधिभौतिक-सत्ता को व्यक्त करने का माध्यम माना है।[७] क्रोचे की दृष्टि से कला बाह्य प्रभाव की अभिव्यक्ति है।[८] टाल्स्टाय की दृष्टि में क्रिया, रेखा, रंग, ध्वनि, शब्द आदि

---

१. देखिए, बटुकनाथ शर्मा : नाट्यशास्त्र (१-११३)
२. ,, भोलानाथ तिवारी : कला, सम्मेलन-पत्रिका, कला अंक, पृ० १६
३. ,, एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, भाग-२, पृ० ४८४
४. ,, वही
५. ,, स्काट जेम्स : दि मेकिंग ऑफ लिटरेचर, पृ० ३७-४६
६. ,, अरस्तू का काव्यशास्त्र, अनुवादक : डॉ० नगेन्द्र, पृ० ६
७. ,, आलोचना, ९, पृ० १३८
८. ,, क्रोचे : ऐस्थैटिक, पृ० १३

के द्वारा भावों की वह अभिव्यक्ति जो श्रोता, दर्शक, और पाठक के मन में भी वही भाव जाग्रत कर दे, 'कला' है।[१] टैगोर के अनुसार मनुष्य कला के माध्यम से अपने गम्भीरतम अन्तर की अभिव्यक्ति करता है। फ्रायड ने कला को मानव की दमित-वासनाओं का उभार माना है। हरबर्ट रीड ने कला की सरल और सामान्य परिभाषा देते हुए कहा है कि 'कला' अभिव्यक्ति का आह्लादक या रंजक स्वरूप है।[२] मैथिलीशरण गुप्त 'अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति' को कला मानते हैं।[३] प्रसादजी के अनुसार 'ईश्वर की कर्त्तृत्वशक्ति का मानव द्वारा शारीरिक तथा मानसिक कौशलपूर्ण निर्माण कला है'।[४] जैनेन्द्रजी के शब्दों में 'कला' शब्द मनुष्य ने बनाया इसलिए कि उसके द्वारा वह अपने भीतर अनुभूत किसी सत्य को प्रगट करना चाहता था।[५] संक्षेप में, कला शिवत्व की उपलब्धि के लिए सत्य की सुन्दर अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति के बिना कलाकार रह नहीं सकता। सत्य की सुन्दर अभिव्यक्ति जिसका आदर्श शिवत्व की प्रेरणा और सिद्धि है, 'कला' है। शब्द, ध्वनि, रेखा, रंग आदि अभिव्यक्ति के शक्तिशाली माध्यम हैं, जो कलाकार की रुचि और संस्कार के अनुसार समय-समय पर उस अखण्ड अभिव्यक्ति के लिए अपनाये जाते रहे हैं। अस्तु, कला का सामान्य अर्थ सौन्दर्य की रचना है। रूप ही सौन्दर्य है, अतः रूप की रचना कर कलाकार समाज को विशिष्ट दाय देता रहा है।

वर्गीकरण

कलाओं के वर्गीकरण के सम्बन्ध में पूर्व और पश्चिम के विद्वानों ने विस्तार से विचार किया है। भारतीय विचारकों ने काव्य को कला से पृथक् 'विद्या' तथा कला को 'उपविद्या' माना है। संख्या की दृष्टि से 'ललित विस्तर' में ८६, 'काम-सूत्र' में ६४, 'प्रबन्धकोश' तथा अन्य जैन ग्रन्थों में ७२ कलाओं का विवरण है।[६] कश्मीरी पण्डित क्षेमेन्द्र ने तो अपनी 'कला-विलास' नामक पुस्तक में कलाओं की संख्या को भी विस्तार दे दिया है।[७] हमारे यहाँ कला के अन्तर्गत सामान्यतः उपयोगी और ललित दोनों प्रकार की कलाएँ परिगणित रही हैं। विवाद तो वहाँ उपस्थित हुआ है जहाँ काव्य 'विद्या' और संगीत, चित्र, एवं स्थापत्य कलाएँ

१. देखिए, टाल्स्टाय : व्हाट इज आर्ट, पृ० १२३
२. ,, हरबर्ट रीड : दि मीनिंग ऑफ आर्ट, पृ० १६
३. ,, मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, सर्ग-५
४. ,, प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १५
५. ,, जैनेन्द्रकुमार : साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ० ३४
६. ,, सम्मेलन पत्रिका, कला अंक, पृ० ४७६-८५
७. ,, नागरी प्रचारिणी सभा : हिन्दी-विश्वकोश भाग-२, पृ० ३७८

'उपविद्या' मानी गयी हैं। आचार्य शुक्ल तथा प्रसाद तक ने काव्य को कला मानने से इन्कार किया है।[1]

कला के वर्गीकरण के सम्बन्ध में पाश्चात्य विचारकों के भी दो सम्प्रदाय हैं। क्रोचे कला को अविभाज्य मानते हुए कहते हैं कि कला के वर्गीकरण का प्रश्न ही असंगत और व्यर्थ है, क्योंकि कला एक अखण्ड अभिव्यक्ति है। यह अभि-व्यक्ति आन्तरिक है, इसलिए वाहर दिखायी पड़ने वाली कलाएँ (वास्तु, मूर्ति, चित्र, संगीत, काव्य) वास्तविक कला की प्रतिकृति मात्र हैं।[2] कला के वर्गीकरण से सम्बन्धित विचारकों में प्रमुखतया अरस्तू, कांट, हीगेल, स्पेन्सर, ब्राउन, लैसिंग आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ग्रीस में पाँचवी शती ईसा पूर्व से ललित-कलाओं और उपयोगी कलाओं का भेद स्वीकार किया जाने लगा था।[3] प्लेटो व अरस्तू ने इस भेद को 'पुनःप्रस्तुति' (रिप्रेजेन्टेशन) के आधार पर स्वीकारा। उपयोगी कलाओं में लुहार, कुम्हार, वढ़ई आदि का ध्यान वस्तु की पुनःप्रस्तुति पर न रहकर उपयोगिता पर अधिक रहता है, जबकि ललित-कलाओं में भाव या वस्तु को शब्द, रंग, रेखा आदि के माध्यम से पुनः प्रस्तुतः कर सुन्दर बनाया जाता है। आगे चलकर कला की चर्चा ललित-कलाओं के सन्दर्भ में ही विशेष रूप से होने लगी। प्रचार तथा व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि से हीगेल का वर्गीकरण अधिक प्रसिद्ध और मान्य हुआ। हीगेल ने विकास-क्रम के आधार पर कला को तीन वर्गों में रखा है :[4] १. प्रतीकवादी (वास्तु), २. शास्त्रीय (मूर्ति) तथा ३. रोमानी (काव्य, संगीत, चित्र)।

उसने समस्त ललित-कलाओं को विचार (आइडिया) की अभिव्यक्ति का माध्यम माना है। उसके अनुसार भाव या विचार को रूप में बदल देना ही कला का लक्ष्य है। रोमानी कलाओं के माध्यम क्रमशः शब्द, स्वर, रेखा-रंग आदि कोमल होने के कारण, अभिव्यक्ति का विशेष सामर्थ्य रखते हैं। अमूर्त-से-अमूर्त भाव काव्य, संगीत एवं चित्रकला में अभिव्यक्ति पाता है। इस दृष्टि से माध्यम जितना ही अमूर्त या सूक्ष्म होगा, कला उतनी ही उत्कृष्ट होगी, किन्तु यह भी स्पष्ट है कि वास्तु और मूर्ति-कला में स्थूल माध्यम के कारण रूप का विन्यास

---

१. शुक्लजी : "सारा उपद्रव काव्य को कलाओं के भीतर लेने से हुआ है। हमारे यहाँ काव्य की गिनती ६४ कलाओं में नहीं की गयी है।" चिन्तामणि भाग-२, पृ० १८०
प्रसादजी : "इससे प्रकट होता है कि काव्य और कला भिन्न वर्ग की वस्तु हैं।" काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १२
२. बी० क्रोचे : ऐंस्थेटिक, पृ० १४४
३. बी० बोजांके : हिस्ट्री ऑफ ऐंस्थेटिक्स, पृ० ३८
४. देखिए, भोलानाथ तिवारी : सम्मेलन-पत्रिका, कला अंक, पृ० ३१

अधिक स्थिर और ऐन्द्रिय होता है तथा रोमानी कलाओं में सांकेतिकता और अमूर्तता के कारण अस्पष्टता और अस्थिरता का समावेश भी स्वाभाविक है। संक्षेप में उपर्युक्त विभाजन कला के स्वरूप को समझने के लिए समय-समय पर होता रहा है। क्रोचे के अनुसार, "कला एक अखण्ड अभिव्यक्ति ही है, जिसके लिए कलाकार रुचि एवं संस्कारानुसार अनेक माध्यम अपनाता रहा है।"

काव्य और चित्रकला

हीगेल के रोमानी विभाजन के अनुसार काव्य, संगीत और चित्रकला का माध्यम कोमल होने के कारण उनका सम्वन्ध वहुत गहन है। काव्य का माध्यम 'शब्द' है। उसमें संगीत का 'स्वर' संकेत में वदलकर 'शब्द' के रूप में प्रयुक्त होता है। 'शब्द' विचार या भाव का संकेत करता है। शब्द में स्थान, दिक्, काल, सवके परे सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव को अभिव्यक्त करने का सामर्थ्य होता है। भावानुकूल शब्द-नियोजन द्वारा कवि अनुभूत एवं काल्पनिक भाव तथा विचारों की सूक्ष्म अभिव्यंजना करता है, अतः अनुभूति की सच्चाई को वहन करने वाली शब्दावलि द्वारा विशेष शैली में रचित रस से परिपूर्ण वाक्य आज भी सशक्त काव्य परिभाषा के रूप में गृहीत है। काव्य भी एक प्रकार की कला है। कला का अर्थ है रूपात्मक सृजन। काव्य में शब्द के माध्यम से सौन्दर्य की रचना होती है। अर्थ और भाव से पूर्ण शब्द से ही काव्य का सृजन होता है। काव्य की अभिव्यक्ति में दो तत्त्व काम करते हैं—एक नाद-तत्त्व और दूसरा चित्र-तत्त्व। किसी कृति में दोनों का योग रहता है और किसी में एक का प्राधान्य। यह चित्र-तत्त्व काव्य का प्राण होता है। इस दृष्टि से प्रत्येक कविता अपने-आपमें भाव एवं विचारों की प्रतिमूर्ति है। शब्दों में चित्र-निर्माण की शक्ति होती है। इस शक्ति के कारण, उच्चरित शब्द श्रोता के मन में मानस-चित्र उभारता है। काव्य के पठन या श्रवण से शब्द रंग-रेखादि में सम्मूर्तता धारण कर मन में गुंजार उत्पन्न करते हैं। यह गुंजार जितनी ही सजीव, सतरंगी और चित्रोपम होगी, काव्य भी उतना ही रसात्मक होगा। कवि निराकार एवं गहनतम अनुभूतियों को साकार बनाने के लिए चित्रभाषा का प्रयोग करता है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि का सम्मूर्तन[1] काव्य को अत्यधिक उदास बना देता है। उपमान, प्रतीक योजना, विम्वविधान आदि के द्वारा कवि काव्य को चित्रोपम और संवेदन-

---

१. भूतकाल के चाक्षुष, श्रवणात्मक, संस्पर्शात्मक तथा अन्यान्य प्रभावों के संयोग से जिन स्मृत्यात्मक अनुभूतियों का कला में पुनर्स्थापन किया जाता है उसे सम्मूर्तता की संज्ञा दी जाती है। देखिए, रोनाल्ड पीकाक : दी आर्ट ऑफ ड्रामा, पृ० ९६

शील बनाने में सफल होता है। यह सफलता ही काव्य की उत्कृष्टता है। पाठक अपने शब्द ज्ञान, अनुभूति, कल्पना, जीवन-दर्शन आदि से काव्यगत भावों को समझने का प्रयत्न करता है, पर काव्य का ठोस मूर्तरूप उसके सम्मुख नहीं होता। भाव चलचित्र की भाँति पाठक के मानस-पट पर उद्बुद्ध होकर उसको रसान्वित करते रहते हैं। इसलिए काव्य अधिक व्यापक, गम्भीर तथा सूक्ष्म भावों का अभिव्यंजक होने के साथ ही माध्यम की सूक्ष्मता और अमूर्तता के कारण अन्य कलाओं की अपेक्षा दुरूह, जटिल और अस्पष्ट भी हो जाता है।

चीयते इति चित्रम्।[1] चित्रकार बहिर्जगत और अन्तर्जगत के भावों का चयन करता है। शिल्प के षडंग[2] इस चयन की प्रवृत्ति को चित्र का रूप देने में सहायक होते हैं। जिस चयन में माधुर्य, ओज, सजीवता हो वह शोभन चित्र कहा जा सकता है।[3] चित्र की शोभा के कारण ही प्राचीन भारत में चित्रकला को महत्त्व-पूर्ण स्थान दिया गया था।[4] चित्रकला का माध्यम रेखा और रंग हैं। किसी आधारभूत सतह पर रेखा और रंगों के द्वारा चित्रकार भावाभिव्यक्ति करता है। इसमें स्थापत्य व मूर्ति की भाँति स्थान (स्पेस) का उपयोग आवश्यक है, पर माध्यम कोमल होने के कारण अभिव्यक्ति अधिक सशक्त हो जाती है। "किसी एक तल पर जो सम हो या खमदार, पानी, तेल अथवा अन्य माध्यम में घोले अथवा सूखे एक वा एकाधिक रंग की रेखा एव 'रंगामेज़ी' द्वारा किसी रमणीय आकृति के अंकन को और उसी प्रसंग में निम्नोन्नत तथा एकाधिक तल और पहलू दरसाने को चित्रण कहते हैं और ऐसी 'प्रस्तुत वस्तु' को चित्र। उक्त आधारभूत सतह मुख्यतः भित्ति, पत्थर, काठ, पकायी मिट्टी के पात्र वा फलक, हाथीदाँत, चमड़ा, कपड़ा, ताड़पत्र वा कागद होती है।"[5] चित्रकार की विशेषता यह है कि वह समतल धरातल पर ऊंचाइयाँ, गहराइयाँ, दूरी और नैकट्य आदि दिखलाता है। उसमें

---

१. देखिए, अमरकोश, 'चित्र' शब्द

२. रूपभेदा : प्रमाणानि भावलावण्य योजनम्।
सादृश्य वर्णिकाभंग इति चित्र षडंगकम्॥
कामसूत्र १।३ की टीका—यशोधर पण्डित-जयमंगल

३. लसतीव च भूलम्बो विम्यतीव तथा नृप।
हसतीव च माधुर्य सजीव इव दृश्यते॥
सश्वास इव यच्चित्रं तच्चित्र शुभलक्षणम्।
चित्र-सूत्रम्-४३।२१।

४. कलानां प्रवरं चित्रं धर्म कामार्थमोक्षदम्॥
मंगल्यं प्रथमं चैतदगृहे यत्र प्रतिष्ठितम्॥
विष्णुधर्मोत्तर पुराण— चित्रसूत्रम्, ४३।३८

५. रायकृष्णदास : भारत की चित्रकला, पृ० १

कलाकार मानस-चित्रों को रेखा और रंगों के माध्यम से अपने सामर्थ्यानुसार चाक्षुष चित्रों में प्रस्तुत करता है। मूर्ति और स्थापत्य की भाँति चित्रकला भी चाक्षुष होने के कारण आँखों द्वारा मानसिक तृप्ति प्रदान करती है, पर माध्यम की कोमलता के कारण चित्र में मूर्तता कम और मानसिकता अधिक रहती है।

सृजन-प्रक्रिया

काव्य और चित्रकला के सम्वन्ध पर उनकी सृजन-प्रक्रिया का अध्ययन विशेष प्रकाश डाल सकता है। मानस-चित्र कवि और चित्रकार के मन में एक ही स्थिति में उभरते हैं। यह आन्तरिक 'अखण्ड अभिव्यक्ति' पृथक् माध्यमों से व्यक्त होकर काव्य तथा चित्रकला का रूप धारण करती है। सृजन-प्रक्रिया के समय कलाएँ एक दूसरी को प्रभावित ही नहीं करतीं, योगदान भी देती हैं। कवि अपने सृजन-क्षणों में काव्य के प्राण 'चित्रतत्त्व' को साथ लेकर चलता है, "क्योंकि प्रतिभा सर्वप्रथम बिम्ब के माध्यम से बोलती है।" उपमान, प्रतीक और बिम्बविधान के माध्यम से कवि अपने मानस-चित्रों को शब्द-चित्रों में रूपायित कर उत्कृष्ट काव्य की रचना करता है। चित्रकार के मन में जो कल्पना-चित्र रहते हैं, वे उसके अनुभव और संस्कारों से बनते हैं। कथ्य की एकता के कारण मध्यकालीन भारतीय चित्रकला ने तो प्रायः काव्य को ही चित्रण का आधार बनाया है। पोथीग्रन्थों के चित्रण की परम्परा इस कथ्य का साक्ष्य देती है।

बोध-प्रक्रिया

काव्य और चित्रकला को समझने या रसास्वादन करने की प्रक्रिया में भी समता है, जिसके आधार पर उनका सम्बन्ध परिपुष्ट होता है। काव्य पढ़ने एवं सुनने के लिए और चित्र देखने के लिए होता है, किन्तु गम्भीरता से विचार करने पर दोनों के बोध की प्रक्रिया में समता है, जो एक से दूसरे को समझने में सहायक होती है।

रिचर्ड्स महोदय के अनुसार काव्य और चित्र को समझने के लिए हमें कुछ प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है।[1] एक बात तो यह है कि शब्दों को हम आँखों के माध्यम से देखते हैं। शब्दों की बनावट तथा सफ़ाई से लिखे गये शब्दों का पाठक के मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है जो चित्र देखने की प्राथमिक प्रक्रिया से मेल खाता है। रिचर्ड्स महोदय ने इसे 'दि विजुअल सैन्सेशन ऑफ दि प्रिंटेड वर्ड्स' कहा है। काव्य पढ़ते समय और चित्र देखते समय पाठक और दर्शक की स्वच्छन्द

---

१. देखिए, आई० ए० रिचर्ड्स : प्रिन्सिपिल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म, पृ० ११४

कल्पना (फ्री इमेजरी) भी भाव के साथ-साथ चलती है। ऐसी स्थिति में पिछले अनुभवों के अनेक चित्र और बिम्ब सम्मुख आ जाते हैं जो अभिव्यक्त एवं अंकित भाव के साथ समन्वित होने लगते हैं। ऐसी दशा में काव्य एवं चित्र को पाठक और दर्शक अपनी अनुभूति एवं कल्पना के परिप्रेक्ष्य में ही समझने का प्रयत्न करता है। कविता और चित्र को क्रमशः बार-बार पढ़ने और देखने पर ही उनकी अर्थ-वत्ता एवं सार्थकता का भान होता है। कविता को जितनी बार पढ़ते हैं उतना ही अर्थ स्पष्ट होकर हृदयंगम होता है। चित्र को भी बार-बार अनेक दृष्टिकोणों से देखने पर उसकी अर्थवत्ता और सुन्दरता सहज रंजक होती जाती है। अन्त में सम्पूर्ण कविता एवं चित्र का, भाव-पक्ष और कला-पक्ष की दृष्टि से, अध्ययन कर पाठक एवं दर्शक अपने विचारों तथा तत्सम्वन्धी लोक-मान्यताओं पर विचार करता है और निष्कर्षस्वरूप कविता और चित्र की अच्छाई-बुराई के प्रति अपनी धारणा (ऐटिट्यूड) बनाता है।

काव्य के आधार पर यदि चित्र बना है तो चित्र के अध्ययन में भी सुविधा रहती है और चित्र के प्रेक्षण से काव्य का भाव तो सहज हो ही जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि काव्य और चित्रकला के सम्बन्ध को उनकी बोध-प्रक्रिया भी पुष्ट करती है।

सम्बन्ध का शास्त्रीय आधार

काव्य और चित्रकला के सम्बन्ध को शास्त्रीय आधार पर स्वीकृत करना भी अयुक्त न होगा। "काव्यशास्त्र के सिद्धान्त काव्य की भाँति चित्रकला पर भी लागू होते हैं।"[१] भरत के रस-सिद्धान्त की जो व्याख्याएँ आगे चलकर हुईं, उनमें "रसमग्न करने की क्षमता रूपक और काव्य तक ही सीमित नहीं रही, स्फुट रचनाओं में भी मान ली गयी। उसकी परिधि गीत, नृत्य, चित्र आदि कलाओं तक विस्तृत हो गयी।"[२] दोनों का विशेष सम्बन्ध इसी से है कि उनका लक्ष्य रसान्वित करना है, जिसके लिए वे एक-दूसरी पर आधृत हैं; क्योंकि जो प्रतीक मस्तिष्क में उभरते हैं काव्य उन्हें, शब्दों के माध्यम से, निश्चित अर्थ और चित्रकला उन्हें ठोस अभिव्यक्ति देते हैं। काव्य की भाँति चित्रकला में भी नौ रसों की अभिव्यक्ति मानी गयी है,[३] अतः काव्य ने जहाँ रस-सिद्धान्त को महत्त्व

---

१. एन० सी० मेहता : दि गोल्डन फ्ल्यूट, पृ० १
२. डॉ० नगेन्द्र : रीति काव्य की भूमिका, पृ० ३७
३. शृंगार हास करुणवीर रौद्र भयानकाः ॥
बीभत्सादभुतशान्तश्च नव चित्ररसाः स्मृताः ॥
विष्णुधर्मोत्तर, चित्रसूत्रम्, ४३।१

दिया है, वहाँ अन्य ललित-कलाओं ने भी रस को अपने लक्ष्य के रूप में विस्मृत नहीं किया है।[1]

ध्वनि-सम्प्रदाय के आचार्य आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त आदि ने सूक्ष्म विवेचन के उपरान्त यही स्थिर किया कि 'अर्थबोध' शब्द में विस्फोट द्वारा होता है। उसी का दूसरा नाम 'ध्वनि' है। उन्होंने शब्द की तृतीय शक्ति व्यंजना पर आश्रित ध्वनि को काव्य की आत्मा घोषित किया। उपर्युक्त शब्द-विस्फोट या ध्वनि स्वयं चित्रोपमता से युक्त होती है, जो काव्य और चित्रकला का सम्बन्ध स्थापित करती है। शिल्प के 'षडंग' में 'सादृश्य' का विवेचन करते हुए कहा गया है कि 'भाव का अनुरणन जो कुछ देता है वह उत्तम सादृश्य होता है, और केवल आकृति या रूप का अनुकरण देने वाला अधम सादृश्य है।"[2] निश्चय ही चित्रकला में भाव का अनुरणन देने वाला सादृश्य व्यंजना पर आधृत होता है, जो ध्वनि-सम्प्रदाय के अधिक निकट है। ध्वनि-सम्प्रदायकों ने 'चित्रकाव्य' को अधम काव्य माना है, किन्तु उसका सम्बन्ध चमत्कार से है, चित्रोपमता से नहीं।[3]

रसवादियों एवं ध्वनिवादियों के अनुसार अलंकार काव्य का अस्थिर धर्म है। अलंकारों के द्वारा शब्द और अर्थ की शोभा बढ़ती है। यदि काव्य में अलंकार न भी हो तो शब्द और अर्थ की सहज-सुन्दरता और मधुरता बनी रह सकती है, किन्तु भामह, दण्डी आदि आलंकारिकों ने काव्य में अलंकार का स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकारा है। चित्रकला में भी अलंकरण शोभा बढ़ाता है। इसीलिए काव्य में जब अलंकार सम्प्रदाय का प्रभाव रहा है तब चित्रकला पर भी अलंकरण की पूर्ण छाप रही है। रीतिकालीन काव्यानुसार शाहजहाँ तथा परवर्ती राजाओं के आश्रय में पली अन्य कलाओं में बाह्य अलंकृत स्वरूप विशेषतः द्रष्टव्य है। स्थापत्य की मीनाकारी, पच्चीकारी, मणिकुट्टिम की विचित्र कला जड़ाव और नक्काशी की सूक्ष्मता आदि तथा चित्रकला में वर्तना (परदाज़) की बारीकी, रंगों का सतरंगा प्रयोग, सोने का मुक्त प्रयोग, अलंकृत हाशिये और वस्लियों का निर्माण, नायक-नायिकाओं के वस्त्राभूषणों का वैभव आदि निश्चय ही अलंकारवादियों से प्रभावित है।

हम चाहे शास्त्रीय ढंग से विचार करें या स्वतन्त्र ढंग से, काव्य एवं चित्र-

---

१. अजन्ता तथा अकबरकालीन कला विशेष भाव-प्रधान तथा रसात्मक है।
२. अवनीन्द्रनाथ ठाकुर (अनु० महोदव साहा) : भारतीय शिल्प के षडंग, सम्मेलन-पत्रिका, कला अंक, पृ० ४२३
३. अनेकधा वृत्तवर्णविन्यासैः शिल्पकल्पना।
तत्तत्प्रसिद्ध वस्तूनांबन्ध इत्यभिधीयते॥
अग्नि-पुराण, अध्याय ३४२

कला में अभिव्यक्ति के माध्यम का ही अन्तर है, कला की आत्मा तो एक ही है। काव्य बोलता हुआ चित्र है और चित्र मूक काव्य है।[1] प्रत्येक कविता अपने आपमें एक चित्र है। प्रकृत कवि चित्रमय भाषा का प्रयोग करता है। भाषा और छन्द के विधायक तत्त्व, अक्षर अथवा शब्द, स्वयं भावमय चित्र हैं। 'इसलिए "कविता वह वर्णमय चित्र है जो स्वर्गीय भावपूर्ण संगीत गाया करता है।" चित्रकला में आकृति, रस और विचारों का सम्पुटन होता है, जो समय की सीमाओं को लाँघकर स्थायी प्रतिरूप प्रदान करता है, अतः काव्य और चित्रकला का सम्बन्ध अक्षुण्ण है। वे एक-दूसरे के प्रेरक और सहायक ही नहीं, पूरक भी हैं।

पर इतना सम्बन्ध होने पर भी दोनों कलाएँ अलग हैं। काव्य चित्र नहीं हो सकता और चित्र, काव्य नहीं कहा जा सकता। उनका माध्यम अलग है। उनकी अपनी सीमा-रेखाएँ हैं। काव्य पढ़कर या सुनकर रसान्वित होने के लिए है और चित्र आँखों से देखने के लिए। एक में शब्दाधार है और दूसरी में रेखा और रंग। एक भावों एवं विचारों की सरस निर्झरिणी है, तो दूसरी विभाव, अनुभावों के सम्मूर्त बन्धन का माध्यम। एक का सम्बन्ध समय की गतिशीलता से है तो दूसरी का स्थान (स्पेस) से। एक अन्तर्मुखी भावों के अंकन का समर्थ माध्यम है तो दूसरी वहिर्मुखी चित्रण के लिए विशेष उपयोगी। एक का आधार सूक्ष्म है, दूसरी का स्थूल। एक शब्दों के द्वारा अतल गहराइयों की अभिव्यक्ति करती है तो दूसरी रंग और रेखाओं का जादू करती है। जो भाव शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है उसकी अभिव्यक्ति चित्रण में असम्भव है और जो भाव रंग और रेखाओं से व्यक्त हो सकता है वह शब्दों से नहीं हो सकता। अतः अन्तर्मन से कवि चित्रकार और चित्रकार कवि होने पर भी अभिव्यक्ति में कवि कवि ही रहता है और चित्रकार चित्रकार ही, पर निश्चय ही 'उस अखण्ड अभिव्यक्ति' को रूपायित करने के लिए तथा उससे रसान्वित होने के लिए एक-दूसरी कलाएँ परस्पर महत्त्वपूर्ण सहयोग देती हैं, इसमें दो राय नहीं हैं।

कवि और चित्रकार : एकस्थता

इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण हैं जो एक ही व्यक्ति में कवि और चित्रकार के गुण प्रस्तुत करते हैं। काश्मीर के प्रसिद्ध चित्रकार भोलाराम उच्चकोटि के कवि थे और अपनी कविताओं के आधार पर चित्रांकन भी करते थे।[2] किशनगढ़

---

१. पोयट्री इज ए स्पीकिंग पिक्चर एण्ड पिक्चर एं म्यूट पोयजी, लैंस्सिग : लैकून (अंग्रेज़ी अनुवाद)
२. देखिए, मुकन्दीलाल : कवि और चित्रकार भोलाराम, सम्मेलन-पत्रिका, कला अंक, पृ० २२४-२३४

के प्रसिद्ध राजा नागरीदास जी कवि भी थे और चित्रकार भी। स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर के व्यक्तित्व में कला की त्रिवेणी समाहित थी। हिन्दी की प्रमुख कवयित्री महादेवी वर्मा उच्चकोटि की चित्रकार भी हैं। आधुनिक चित्रकार रामकुमार अच्छे साहित्यकार भी हैं। जगदीश गुप्त कवि भी हैं और चित्रकार भी। वास्तव में भाव-धारा जब एक माध्यम से अभिव्यक्त होने में असमर्थ होती है तो अन्य माध्यमों को सहज ही अपना लेती है। कवि और चित्रकार का समन्वित स्वरूप कलाओं के सम्बन्ध को और भी दृढ़ बना देता है।

काव्य-चित्रण

भारत में काव्य और चित्रकला के सम्बन्ध तथा पारस्परिक सहयोग का एक पुराना इतिहास है। अजन्ता के भित्तिचित्र जातक कथाओं पर आधारित हैं। अनेक ताड-पत्रीय वौद्ध और जैन सचित्र ग्रन्थ तथा संस्कृत के विभिन्न ग्रन्थ जैसे रामायण, महाभारत, भागवत्, गीत-गोविन्द और हिन्दी के सूरसागर, रसिकप्रिया, विहारी-सतसई आदि का चित्रण चित्रकला के इतिहास में ही नहीं, वरन् काव्य-जगत और इतिहास के क्षेत्र में भी अध्ययन के विस्तृत आयाम खोलता है।

चित्रण-आधार

काव्य के चित्रण के लिए देश, काल और परिस्थिति के अनुसार कलाकार ने समय पर विभिन्न माध्यम चुने हैं, जो प्रमुखतया भित्तिचित्र, पटचित्र, पोथीचित्र और लघुचित्र के रूप में मिलते हैं।

भित्तिचित्र

भित्ति-चित्रण चित्रकला की आदिम प्रवृत्ति है। प्रागैतिहासिक गुहाचित्र इस कथ्य के साक्षी हैं। अजन्ता, एलोरा, वाघ आदि गुफाओं के भित्तिचित्रों ने संसार के अनेक कलामर्मज्ञों को अपनी ओर आकर्षित किया है। समय-समय पर मन्दिरों, राजमहलों, छतरियों, किलों आदि में भी भित्ति-चित्रण होता रहा है।[१] उपर्युक्त भित्ति-चित्रण का आधार काव्य ही रहा हो, ऐसी बात नहीं है, किन्तु परोक्ष रूप से काव्य के कथ्य को आधार वनाकर बहुत से भित्तिचित्रों का निर्माण हुआ है। अजन्ता के भित्तिचित्र जातक कथाओं पर तथा राजस्थान के विभिन्न भित्तिचित्र राम और कृष्ण-चरित्र की विभिन्न लीलाओं पर आधारित हैं, जिनका स्रोत रामायण, भागवत् आदि ग्रन्थ हैं।

---

१. देखिए, चित्तौड़ का किला तथा आम्बेर, कोटा, बूँदी आदि स्थानों के राजमहल।

पटचित्र

भारत में पट-चित्रों की परम्परा भी बहुत प्राचीन है।[१] भित्ति-चित्रण की भाँति यह भी अब तक प्रचलित है। "पट-चित्रों के सम्बन्ध में बौद्ध धर्म के तान्त्रिक-ग्रन्थ 'आर्यमंजुश्रीकल्प' में कहा गया है कि स्वच्छ श्वेत कपड़े पर चित्र अंकित करना चाहिए। उसके दोनों ओर किनारियाँ हों।" रेशमी कपड़ा उसके लिए सर्वथा त्याज्य है।[२] काव्यांकन की दृष्टि से पट-चित्र भी दो रूपों में प्राप्त होते हैं—१. पिछवाई या पड़, २. कुण्डलितपट (स्क्रोल)। पिछवाई या पड़ का कपड़ा विशेष लम्बा-चौड़ा नहीं होता। ऐसी पड़ पद-सहित और पद-रहित, दोनों ही रूपों में प्राप्त होती हैं।[३] कुण्डलितपट की चौड़ाई तो कम होती है; किन्तु लम्बाई विशेष होती है।[४] सम्पूर्ण ग्रन्थ या उसका अंश उसमें लिखित एवं चित्र-सज्जित होता है। कागज़ के आविष्कार के साथ कुण्डलितपटों में भी अनेक प्रयोग किये गये। अधिकांशतः चित्रांकन के लिए प्राचीन विधि से कपड़े पर पृष्ठभूमि न बनाकर कागज़ चिपकाया गया है। ऐसे कुण्डलितपट (स्क्रोल) आज विशेष रूप से उपलब्ध हैं।

पोथीचित्र

प्राचीन भारत में भूर्जपत्र अथवा ताडपत्र पर काव्य-लेखन एवं चित्रण की परम्परा विशेषतः रही है। इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप अनेक जैन भण्डारों एवं संग्रहालयों में सचित्र ग्रन्थ भरे पड़े हैं।[५] उपर्युक्त सचित्र ग्रन्थों के विषय जैन धर्म से अधिक सम्बन्धित हैं, जिनमें 'कल्पसूत्र'[६] कालिकाचार्य कथानक, नैमिनाथ चरित्र

---

१. देयो मृत्तिकया लेयः पुस्ते चर्मकृते दृढः ।
सूत्रेनेन विधानेन चित्रवस्त्र तथा लिखेत् ॥
विष्णुधर्मोत्तर-चित्रसूत्रम्, ४३।३५
२. वाचस्पति गरोला : भारतीय चित्रकला, पृ० ६०
३. किशनगढ़ दरवार के निजी कपड़-भण्डार एवं नाथद्वारा शैली की अनेक पड़ द्रष्टव्य ।
४. मेरी जानकारी में सबसे लम्बा कुण्डलितपट अलवर के राजकीय संग्रहालय में है। महाभारत—२५७-३-५ सं० ४७५९
५. प्राचीनतम प्रतियों की दृष्टि से जैसलमेर एवं खम्भात के जैन ज्ञान-भण्डार विशेष उल्लेखनीय हैं।
६. वि० सं० १२१६ का भद्रबाहुस्वामी रचित सचित्र ताडपत्रीय कल्पसूत्र जैन ग्रन्थ भण्डार जैसलमेर में सुरक्षित है, जो भारतवर्ष के पश्चिमी भाग का प्राचीनतम कलात्मक ग्रन्थ है।

आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। ताडपत्रीय ग्रन्थों का एक निश्चित आकार रहा है तथा अलग-अलग पत्रों पर पार्श्व में लेखन एवं चित्रण हुआ है। ऐसे पत्रों को प्रायः बीच में छेद कर ग्रथित किया गया है।

ताडपत्र एवं भूर्जपत्र के उपरान्त लगभग १२वीं शती में कागज़ के आविष्कार ने ग्रन्थों के चित्रण में क्रान्ति ला दी।[1] कागज़ एक ऐसा माध्यम है जिसमें काव्य एवं चित्र दोनों का अंकन सहजता और विस्तार से हो सकता है। जैसलमेर के ग्रन्थ-भण्डार में वि० सं० १२७७ का ग्रन्थ 'उत्तराध्ययन सूत्र' तथा १२७९ का वाचस्पति मिश्र कृत 'न्यायतात्पर्य टीका' कागज़ पर ही चित्रित है।[2] १३ से १५वीं शती तक ताडपत्र एवं कागज़ दोनों में ही ग्रन्थों के अंकन की प्रथा चालू रही, तदनन्तर कागज़ की चित्रोपयोगिता ने पोथी-चित्रण की परम्परा को अधिक प्रचलित कर दिया। इस परम्परा को विस्तार देने का श्रेय सगुण भक्ति के आन्दोलन एवं मुगल-शासन के संस्थापन को है।

सगुण-भक्ति ने लोक जीवन को नये उत्साह एवं नयी प्रेरणा से भर दिया। विचारों की नवीन शक्ति पाकर कलाएँ रस की अभिव्यक्ति का माध्यम बन गयीं, जिसके फलस्वरूप राम और कृष्ण की लीलाएँ काव्य एवं चित्रकला के माध्यम से साकार हो उठीं। कथ्य की एकता के कारण काव्य को आधार बनाकर ग्रन्थ चित्रित करने की परम्परा वेगवती हो उठी।

मुगल-शासन की स्थापना से ग्रन्थ-चित्रण की परम्परा को विशेष बल मिला। "हुमायूँ के साथ फारस के दो कलाकार सैयद अली और अब्दुलसमद भारत आये, जिन्होंने 'अमीरहम्ज़ा' को चित्रित किया।"[3] चित्रकला के प्रेमी और पारखी बादशाह अकबर के दरबार में बसावन, दसवन्त, साँवलदास, फार्रुखबेग, मुराद आदि प्रमुख चित्रकारों को प्रश्रय दिया, जिन्होंने 'बाबरनामा', 'अकबरनामा', 'रज़्मनामा', 'तूतीनामा' आदि के अतिरिक्त 'महाभारत', 'अनवार-ए-सुहाली' (पंचतन्त्र) आदि भारतीय ग्रन्थों का कलात्मक चित्रण भी किया।[4] अकबर के उपरान्त भारतीय चित्रशैली में पोथीचित्रों की प्रथा ही चल पड़ी। मुगल-शैली, राजस्थानी-शैली, पहाड़ी-शैली आदि में सूफी काव्य, रामकाव्य, कृष्ण-काव्य, रीतिकाव्य, बारहमासा, ऋतु-वर्णन, रागरागिनी आदि पर आधारित

---

१. देखिए, कार्ल-खण्डालवाला : राजस्थानी पेंटिंग—ऐन इन्ट्रोडक्शन, राजस्थान ललित-कला अकादमी वार्षिकी—६३, पृ० ११
२. डॉ० सत्यप्रकाश : राजस्थान में चित्रकला का क्रमिक विकास, राजस्थान भारती, भाग ८, अंक १, पृ० १३
३. सम्मेलन-पत्रिका, कला-अंक, सम्पादकीय, 'त'
४. देखिए, रायकृष्णदास : अकबरकालीन चित्रित ग्रन्थ और उनके चित्रकार, कलानिधि, अंक-३, पृ० २७

जो पोथीचित्र एवं लघुचित्र वने वे सचित्र-ग्रन्थों की परम्परा एवं विकास की महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं।

कागज़ के आविष्कार से ताडपत्रीय निश्चित आकार भी घट-बढ़ गया, जिससे ग्रन्थलेखन एवं चित्रण में अनेक प्रयोग हुए :—

१. ग्रन्थ के पृष्ठ के पार्श्व में चित्रण एवं वीच में लेखन।
२. ग्रन्थ के बीच में यत्र-तत्र चित्रण।
३. ग्रन्थ के प्रत्येक पृष्ठ के एक ओर लेखन एवं सामने चित्रण।
४. ग्रन्थ के पृष्ठ के ऊपरी भाग पर छन्द या पद लेखन एवं नीचे चित्रांकन।

उपर्युक्त ढंग से लिखित एवं चित्रित पृष्ठों को पुस्तकाकार रूप में ग्रथित कर दिया गया है, जिनसे किसी भी काव्य के क्रम का सहज ही ज्ञान हो सकता है। ये ग्रन्थ भी दो रूपों में प्राप्य हैं—पूर्ण-रूप में और खण्ड-रूप में। गीता, भागवत्, गीतगोविन्द, रसिकप्रिया, बिहारी-सतसई आदि ग्रन्थ विशेषतः पूर्ण रूप में मिलते हैं। काव्य का लघु आकार, चित्रोपयोगी एवं प्रसिद्ध होना सम्पूर्ण चित्रण का मानदण्ड रहा है। दुर्भाग्यवश इधर-उधर विखर जाने एवं वेच दिये जाने से भी ग्रन्थ की सम्पूर्णता नष्ट होती रही है। अपूर्ण या खण्ड-ग्रन्थों में केवल रुचिकर एवं चित्रोपयोगी पदों को ही चित्रण का आधार बनाया गया है। ऐसे ग्रन्थ 'एल्वम' के रूप में प्राप्त हैं।

लघुचित्र

लघुचित्र भी पोथी-चित्र की परम्परा में ही आते हैं तथा उनके निर्माण एवं चित्रण का तरीका भी वही है। कल्पना या काव्यात्मक भाव के आधार पर शीर्षक देकर और पद लिखकर कागज पर निर्मित ऐसे चित्रों की संख्या वहुत अधिक है, जो संसार के विभिन्न संग्रहालयों में तथा अनेक संग्रहकर्त्ताओं एवं चित्र-व्यापारियों के पास सुरक्षित हैं। अध्ययन की दृष्टि से ऐसे चित्रों को शीर्षक-मुक्त, शीर्षक-युक्त तथा पद या छन्द-युक्त—इन तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। निश्चय ही शीर्षकयुक्त एवं छन्दयुक्त लघुचित्र अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्त्व के हैं। काव्य के महत्त्वपूर्ण अंशों, बारहमासा, ऋतुवर्णन, रागरागिनी आदि पर आधृत लघुचित्रों में काव्य एवं चित्रकला का भण्डार सुरक्षित है।

भित्तिचित्रों, पटचित्रों, पोथीचित्रों एवं लघुचित्रों के रूप में काव्य एवं चित्रकला की अमूल्य धरोहर आज राज्य की लापरवाही, सामान्य जन की अज्ञानता एवं व्यापारियों की धनलोलुपता के कारण नष्ट हो रही है या विदेशों में जा रही है। सरकार एवं कला मर्मज्ञों को निश्चय ही इस ओर ध्यान देना चाहिए।

काव्य-चित्रण काउ द्देश्य

शिल्पशास्त्रों में चित्रकला को अन्य कलाओं से श्रेष्ठ मानकर, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की दात्री माना है।[1] काव्य-चित्रण का उद्देश्य भी इसी भाव में समाहित है, अतः समय-समय पर काव्य को आधार बनाकर जो चित्रण हुआ है उसके कारणों में भावमूर्तीकरण, कला-प्रदर्शन एवं यशोर्जन, अर्थार्जन तथा शिक्षण प्रमुख है।

भावमूर्तीकरण

काव्य के चित्रण का प्रमुख उद्देश्य भाव को मूर्तस्वरूप प्रदान करना रहा है। काव्य के जिन भावों की हम केवल कल्पना ही कर पाते हैं वे चित्रण के संसर्ग में आकर चाक्षुष हो जाते हैं। धार्मिक भावना के प्रसार हेतु, कथ्य की एकता को सभी माध्यमों से परखने के लिए तथा आश्रयदाताओं की तुष्टि के लिए चित्रकारों ने समय-समय पर काव्य को आधार वनाकर चित्रण किया है। उपर्युक्त चित्रण के और भी अनेक उद्देश्य हैं, किन्तु उनमें भी भावमूर्तीकरण ही प्रमुख रहा है।

कला-प्रदर्शन एवं यशोर्जन

कलाकारों ने मौलिक चित्रण के साथ ही काव्य को आधार वनाकर जो चित्रण किया है उसमें कला-प्रदर्शन एवं यश-उपार्जन का भाव भी निहित रहा है। काव्य की उत्कृष्टता एवं लोकप्रियता से प्रभावित होकर कलाकार ने काव्य-चित्रण किया। साथ ही उसे अपनी कला को विशेष परिप्रेक्ष्य में चित्रित करने का अवकाश मिला। ऐसा करके उसने आत्म-तुष्टि भी प्राप्त की और समाज में यश भी अर्जित किया।

अर्थार्जन

कला की साधना के साथ कलाकार अपनी भौतिक स्थिति को नहीं भुला सकता। चित्रण स्वान्तःसुखाय होते हुए भी भरण-पोषण का साधन भी रहा है। दरबारों में मुसव्विरों का जमघट इस तथ्य का साक्षी है। आश्रयदाताओं के निर्देशानुसार काव्य-चित्रण कर कलाकार यश और अर्थ दोनों उपार्जित करते रहे हैं। दरबारी जीवन में पोथी-चित्रण पर लाखों रुपये खर्च करना और मुसव्विरों को मुक्तहस्त पुरस्कार-स्वरूप धन और जागीरें देना, काव्य-चित्रण का प्रमुख

---

१. कलानां प्रवरं चित्रं धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥
मंगल्यं प्रथमं चैतद्गृहे यत्र प्रतिष्ठितम् ॥
विष्णुधर्मोत्तर, चित्रसूत्रम्, ४३। ३८।

आकर्षण रहा है। पोथीचित्रों और लघुचित्रों की अनेक प्रतियों का क्रय-विक्रय चित्र-निर्माण का प्रेरक रहा।

शिक्षण

भारतीय जीवन में धार्मिक भावना प्रधान रही है। धर्म के प्रचार एवं प्रसार के लिए अनेक धर्मावलम्बियों, धर्माचार्यों एवं धर्मप्रचारकों ने सभी कलाओं के माध्यम से समय-समय पर धर्म की शिक्षा देने का प्रयत्न किया है। इस दृष्टि से काव्य के चित्रण ने भी विशेष सहयोग दिया है। अजन्ता के भित्तिचित्रों में जो जातक कथाएँ चित्रित हैं उनका यही प्रमुख उद्देश्य है। जैनग्रन्थों का चित्रण प्रमुख रूप से शिक्षण के लिए ही हुआ है। रामायण, महाभारत, भागवत् आदि ग्रन्थों के प्रासंगिक चित्रों का उद्देश्य धार्मिक होने के साथ-साथ शैक्षणिक एवं प्रचारात्मक भी है। दरवारी जीवन में काव्यशास्त्र, काव्य धर्म आदि की शिक्षा के लिए भी समय-समय पर काव्य का चित्रण होता रहा है।

निष्कर्ष

कला के विवेचन तथा काव्य और चित्रकला के सम्वन्ध-निर्धारण से यह वात स्पष्ट हो गयी है कि कथ्य की एकता के कारण काव्य और चित्रकला में अन्योन्याश्रय सम्वन्ध रहा है। काव्य को आधार वनाकर चित्र वनाये जाते रहे हैं और चित्रों से कवियों की भावधारा उद्वेलित रही है। भारतीय चित्रकला की विशेषता ही यह रही है कि उसने काव्यगत शव्द चित्रों को साकार कर दिया है। इसलिए संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी-साहित्य आदि के सचित्र ग्रन्थों तथा तत्सम्वन्धी लघुचित्रों के आधार पर काव्य का विस्तृत एवं सुस्पष्ट अध्ययन हो सकता है। कुमारस्वामी का कथन है कि "राजपूत चित्रकला तो भारतीय साहित्य की प्रतीक है।"[१] भारतवर्ष में साहित्य ने कला का रूप समृद्ध किया है और कला ने साहित्य की व्याख्या की है। इनकी गहनतम पारस्परिकता अनुपेक्षणीय है। "भारतीय कला एक प्रकार से साहित्य की ही मार्मिक व्याख्या है। कला के मार्मिक ज्ञान के विना साहित्यिक अध्ययन अधूरा और साहित्य की सूक्ष्म जानकारी के बिना कला की समीक्षा संकुचित रह सकती है।"[२] साहित्य द्वारा कला की पारिभाषिक शव्दावली का ज्ञान होता है। साहित्य अन्य कलाओं के रूप को संजोये रहता है और अन्य कलाएँ साहित्य की ही मार्मिक अभिव्यक्ति हैं।

---

१. राजपूत पेंटिंग, खण्ड-१, पृ० २

२. वासुदेवशरण अग्रवाल : भारतीय कला का अनुशीलन, कलानिधि, अंक-१ वर्ष १, पृ० १८-२०

राजपूत, मुगल और पहाड़ी चित्रकारों की प्रेरणा का स्रोत संस्कृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी साहित्य की मध्ययुगीन भक्ति और रीतिविषयक कृतियाँ रही हैं। इन्हीं की भावभूमि को लेकर समस्त मध्ययुगीन चित्रशैलियों का निर्माण हुआ है। इसलिए मध्यकालीन भक्ति-काव्य और रीति-काव्य के भावगाम्भीर्य को समझने के लिए ये चित्र व्याख्या स्वरूप हैं। "यह कहना असंगत न होगा कि मध्यकालीन हिन्दी साहित्य का अध्ययन विना उस काल वाले चित्रों के अध्ययन के अधूरा और अपरिपक्व रहता है, क्योंकि जो लिखता था, चित्रकार उसे अंकित करता था। इतना ही नहीं, अनेक बार चित्रकार जो अंकित करता था उसे कवि की वाणी कविता में अनूदित करती थी। कविता के अनेक स्थल जिनके अर्थ विवादग्रस्त हैं, इन चित्रों की सहायता से स्पष्ट हो सकते हैं। कविता और प्रेक्ष्यकला का यह सम्वन्ध बहुत पुराना है। हिन्दी में काव्य और कला के इस समन्वयात्मक पक्ष पर काम होने की बड़ी आवश्यकता है।"[1]

इन्हीं सव बातों से प्रेरित होकर प्रस्तुत प्रबन्ध लेखक ने राजस्थानी चित्र-कला के परिपार्श्व में मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण-काव्य के अध्ययन का प्रयत्न किया है। इसमें तत्कालीन संस्कृति, धर्म, कला आदि को चित्रों के बटखरों से और चित्रों को उनके बटखरों से तोलकर दोनों की पारस्परिकता की गवेषणा की गयी है।

---

१. राय कृष्णदास : भारतकला भवन का सूचीपत्र (निवेदन से)

२. राजस्थानी चित्रकला

भारतीय चित्रकला संसार की चित्रकला में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। अजन्ता के जगत्प्रसिद्ध भित्तिचित्र इस कला की अमर धरोहर हैं। बौद्ध और जैन कलाओं तथा पाल, गुजरात, अपभ्रंश, राजस्थानी, मुगल, पहाड़ी आदि शैलियों ने भारतीय चित्रकला के गौरव को ईसा-पूर्व दूसरी शती से आज तक सुरक्षित रखा है। चित्रकला के इतिहास की इस श्रृंखला में अजन्ता की परम्परा को निभानेवाली राजस्थानी चित्रकला का अपना निजी सांस्कृतिक परिवेश और इतिहास है।

नामकरण

राजस्थानी चित्रकला के नामकरण पर विद्वानों के विभिन्न मत हैं। अनेक तर्क-वितर्कों के उपरान्त भी कोई इसे 'राजपूत चित्रकला' और कोई 'राजस्थानी चित्रकला' कहता है। राजस्थानी चित्रकला का सबसे पहला वैज्ञानिक विभाजन स्वर्गीय आनन्दकुमार स्वामी ने 'राजपूत पेंटिंग' नामक पुस्तक में सन् १९१६ ई० में किया।[1] उनके अनुसार राजपूत चित्रकला का विषय राजपूताना और पंजाब की पहाड़ी रियासतों से सम्बन्धित है। राजपूत चित्रकला को उन्होंने दो भागों में विभाजित किया—राजस्थानी अर्थात् राजपूताने से सम्बन्धित और पहाड़ी अर्थात् जम्मू, काँगड़ा, गढ़वाल, बसौली, चम्बा आदि पहाड़ी रियासतों से सम्बन्धित। इन रियासतों के अधिकारी प्रमुखतया राजपूत राजा होने के कारण इसे राजपूत चित्रकला नाम से अभिहित किया गया। उनके अनुसार राजस्थानी चित्रकला का प्रसार बीकानेर से गुजरात की सीमा तक और जोधपुर से ग्वालियर और उज्जैन तक रहा है तथा आम्बेर, ओरछा, उदयपुर, बीकानेर, उज्जैन आदि कला-केन्द्र रहे

१. देखिए, आनन्दकुमार स्वामी : राजपूत पेंटिंग, पृ० २-३

हैं। इसके विपरीत रायकृष्णदास का कथन है कि, "डा० स्वामी ने अर्वाचीन भारतीय चित्रकला के प्रमुखतः दो वर्ग माने हैं—राजपूत शैली और मुगल शैली, किन्तु राजपूत शैली मानने की कोई गुंजाइश नहीं है। यद्यपि राजपूत जाति एक शासक जाति थी तो भी एक ऐसी जाति का प्रभाव समष्टि रूप से कला पर नहीं पड़ सकता जिसके देश-भर में भिन्न-भिन्न केन्द्र हों।"[1] श्री वेसिल ग्रे का कथन है कि "राजपूताना विभिन्न देशी रियासतों का केन्द्र था, किन्तु राजपूत चित्रकला का विस्तार बुन्देलखण्ड से लेकर गुजरात तथा अनेक पहाड़ी राजपूत शासकों द्वारा शासित रियासतों तक था, इसलिए राजपूत चित्रकला नाम सार्थक है।"[2] वाचस्पति गैरोला ने राजपूत शैली के अन्तर्गत केवल राजस्थान की चित्रकला को ही स्वीकार किया है,[3] जो और भी भ्रामक है।

उपर्युक्त तथ्यों के अनुसार राजपूत चित्रकला के अन्तर्गत राजस्थानी शैली के सभी चित्र आ जाते हैं। जो प्रदेश अंग्रेजी शासन-काल में राजपूताना कहलाता था वही (थोड़े से हेर-फेर से) स्वतन्त्रता के बाद 'राजस्थान' कहलाया। "अंग्रेजों से पूर्व यह सारा प्रदेश कभी किसी एक नाम से प्रसिद्ध रहा हो, ऐसा कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता।" टाड ने ही सर्वप्रथम इस सारे प्रदेश को 'रायथान' या 'राजस्थान' नाम दिया था।······किन्तु अंग्रेज अधिकारी साधारणतया इसे राजपूताना नाम से ही अभिहित करते थे।[4] अतः राजस्थानी चित्रकला से हमारा तात्पर्य उस चित्रकला से है जो इस प्रान्त की अमर धरोहर है और जिसने अनेक कला पारखियों को अपनी ओर आकर्षित किया है। 'राजस्थानी चित्रकला' नामकरण पर बल देने वाले कलामर्मज्ञों में सर्वश्री रायकृष्णदास, रामगोपाल विजयवर्गीय, डॉ० मोतीचन्द्र, कार्ल-खण्डालवाला, कु० संग्रामसिंह, आनन्द कृष्ण प्रभृति विद्वानों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

उद्भव और विकास

राजस्थानी चित्रकला के जन्मस्थल, समय तथा विकास की परिस्थितियों का इतिहास अभी प्रकाश की प्रतीक्षा कर रहा है। विभिन्न विद्वानों ने राजस्थानी चित्रकला की अनेक शैलियों पर पुस्तकें लिखकर १७वीं शती और उसके बाद के इतिहास को प्रकाश में ला दिया है, किन्तु इससे पूर्व का इतिहास मतभेद पूर्ण है। चित्रकला मर्मज्ञ डॉ० हरमन ग्वेत्स का कथन है कि "कठिनाई से एक-आध वर्ष

१. रायकृष्णदास : भारत की चित्रकला, पृ० ५९
२. बेसिल ग्रे : राजपूत पेंटिंग, पृ० २
३. देखिए, वाचस्पति गैरोला : भारतीय चित्रकला, पृ० १५३-६८
४. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : राजपूताना-१, पृ० १-२

बीतता है कि राजस्थानी चित्रकला सम्बन्धी नवीन खोज हमारे पूर्वनिर्णयों को सर्वथा बदल देती है। मुख्यतः मेवाड़ शैली सम्बन्धी नवीन खोजों ने अनेक प्रश्न खड़े कर दिये हैं।"[1]

पाश्चात्य विद्वानों के प्रारम्भिक मतों के आधार पर राजस्थानी शैली मुगल शैली के बाद विभिन्न रियासतों में पलनेवाली शैली मानी गयी थी। कुछ विद्वानों का तो यह भी कथन है कि वह मुख्यतः जहाँगीर-कालीन मुगल शैली की एक शाखा मात्र थी, किन्तु नवीन खोजों के आधार पर आज से वर्षों पूर्व जो निष्कर्ष निर्धारित किये गये थे वे अमान्य ठहरा दिये गये हैं। डॉ० आनन्दकुमार स्वामी ने भी जो अपने विचार प्रकट किये हैं,[2] वे ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने पर भी उपयुक्त नहीं हैं। राजस्थानी चित्रकला की प्राचीनता तथा समृद्धि के परिचायक सूत्र डॉ० ग्वेत्स ने अनेक खोजपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किये हैं जिनमें उसके इतिहास पर नवीन प्रकाश पड़ता है।[3] कार्ल-खण्डालवाला, ने इसके उद्‌गम और विकास का विस्तार से विवेचन किया है।[4] रायकृष्णदास,[5] प्रमोदचन्द्र,[6] सत्यप्रकाश,[7] आनन्द-कृष्ण,[8] हीरेन मुखर्जी[9] आदि विद्वानों ने भी समय-समय पर खोजपूर्ण लेख लिखकर राजस्थानी चित्रकला के उद्‌भव और विकास पर विशेष प्रकाश डाला है। उपर्युक्त खोज तथा अनेक उपलब्ध प्राचीन चित्रों के आधार पर यह तो प्रायः निश्चित मान लिया गया है कि राजस्थानी चित्रकला प्राचीन भारतीय चित्रकला की पारम्परिक चित्र-शैली की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

तिब्बती इतिहासकार तारानाथ (१६वीं शती) ने मरुप्रदेश (मारवाड़) में ७वीं शती में श्रीरंगधर नामक चित्रकार की चर्चा की है, किन्तु उस समय के चित्र अनुपलब्ध हैं।[10] भारतवर्ष के तात्कालिक इतिहास पर मनन करने से ज्ञात होता

---

१. डॉ० हरमन ग्वेत्स : मेवाड़, मार्ग ११।२, पृ० ३८
२. देखिए, आनन्दकुमार स्वामी : राजपूत पेंटिंग, भाग-१, पृ० १-१०
३. डॉ० हरमन ग्वेत्स : इण्डियन आर्ट ऐंड लेटर्स, अंक-१
४. मार्ग-४।३ लीव्ज फ्रॉम राजस्थान। मार्ग-११।२ दि ओरिजिन एण्ड डेवलप-मेण्ट ऑफ राजस्थानी पेंटिंग
५. भारत की चित्रकला
६. मार्ग ११।२, ऐन आउट लाइन ऑफ अर्ली राजस्थानी पेंटिंग
७. राजस्थान भारती, भाग ८।१, राजस्थान में चित्रकला का क्रमिक विकास, पृ० ६-१६
८. ए सर्वे ऑफ राजस्थानी पेंटिंग, शोध प्रबन्ध (अप्रकाशित) काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय
९. हीरेन मुखर्जी : दि आरिजिन ऑफ राजस्थानी पेंटिंग, रूपलेखा— पृ० ४३-५६
१०. देखिए, ताराचन्द्र : तारानाथ एण्ड बुद्ध आर्ट-मार्ग ४।१, पृ० ६३

है कि "५वीं शती से १२वीं शती तक का काल राजस्थान के इतिहास में महत्त्व-पूर्ण युग था। ८वीं से १०वीं शती में यह प्रदेश 'गुर्जरत्ना' कहलाता था,[1] अतः यहाँ अन्य कलाओं के उत्थान के साथ चित्रकला भी विकास पाती रही होगी। उपलब्ध पोथीचित्रों में वि० सं० १२१६ का भद्रबाहुस्वामी रचित सचित्र 'कल्पसूत्र' भारतवर्ष के पश्चिमी भाग का प्राचीनतम कलात्मक ग्रन्थ है।[2] राजस्थान में चित्रित (ताडपत्र पर) प्रथम उपलब्ध ग्रन्थ 'सावग-पड़िकमण सुत चुन्नी' (श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र चूर्णी) है, जो अघाट (अहाड़, उदयपुर) में सन् १२६० में गुहिल्ल तेजसिंह के राज्य काल में चित्रित हुआ,[3] और जिसकी साज-सज्जा नागदा और चित्तौड़ के भोकल के मन्दिर की तक्षणकला की समता में है। दूसरा प्रमुख उदाहरण भोकल के शासन काल में देवकुलपाटक (देलवाड़ा) में सं० १४८० (सन् १४२२-२३) में लिखित एवं चित्रित ग्रन्थ 'सुपासनाह चिरियम्' (सुपार्श्वनाथ चरितम्) है। इसमें राजस्थानी चित्रण की भावभूमि पर जैन एवं गुजरात शैली का पूर्ण प्रभाव है।"[4] इसी शैली की कड़ी में सन् १४२६ का 'कल्पसूत्र'[5] भी उल्लेखनीय है, जिसकी वेशभूषा कुम्भा के विजयस्तम्भ की मूर्तियों की वेशभूषा के अनुरूप है। "लगभग सन् १४५० के आसपास पश्चिमी भारत में एक प्रति 'गीतगोविन्द' की और दो 'वाल-गोपाल-स्तुति' की चित्रित की गयी, जो कृष्ण-चरित्र सम्बन्धी प्रथम उपलब्ध चित्रण है"[6] और जिनमें राजस्थानी के प्रारम्भिक चित्रण का बीजांकुर द्रष्टव्य है। सन् १४५१ में अपभ्रंश शैली में चित्रित 'वसंत विलास' का प्रसिद्ध पटचित्र[7] आचार्य रत्नागिरि द्वारा अहमदाबाद में लिखा गया[8] जो राजस्थानी चित्रकला के उद्गम पर विशेष प्रकाश डालता है।[9] मेवाड़ के इतिहास में काव्य संगीत और स्थापत्य की दृष्टि से राणा कुम्भा

---

१. डॉ० सत्यप्रकाश : राजस्थान में चित्रकला का क्रमिक विकास, राजस्थान भारती, भाग ८-१, पृ० ११
२. ताडपत्रीय सचित्र ग्रन्थ, जैन ग्रन्थ भण्डार जैसलमेर
३. म्यूजियम ऑफ फाइन आर्ट्स, बोस्टन (भारतीय कला दीर्घका) में द्रष्टव्य
४. मुनि पुन्यविजय : (सुपासनाह परियम नी हस्तलिखित पोथीमां चित्र, आचार्य श्री विजयवल्लभ सूरी स्मारक ग्रन्थ, पृ० १५६ (जैसलमेर के जैनग्रन्थ भण्डार में उपलब्ध)
५. सरस्वती भण्डार उदयपुर में द्रष्टव्य
६. डब्ल्यू० जी० आर्चर : दि लव्ज ऑफ कृष्णा, पृ० ९४
७. फ्रियर गैलेरी ऑफ आर्ट, वाशिंगटन में द्रष्टव्य (लिपटवाँ पटचित्र, ४३६ इंच लम्बा ९.२ इंच चौड़ा)
८. एन० सी० मेहता : स्टडीज इन इण्डियन पेंटिंग, पृ० १६ (फलक ६ और ७ द्रष्टव्य)
९. आनन्दकृष्ण : ए सर्वे ऑफ राजस्थानी पेंटिंग (अप्रकाशित शोधग्रन्थ)

(१४३३-१४६८) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऐसा कला प्रेमी राजा चित्रकला के प्रति उदासीन रहा हो यह वात समझ में नहीं आती, किन्तु बिना आधार के कुछ कहना सम्भव नहीं है। केवल उनके दुर्ग (कुम्भलगढ़) और कुम्भा महल (चित्तौड़गढ़) के तत्कालीन भित्तिचित्रों के कुछ अवशेष अस्पष्ट रूप से अवश्य दिखायी देते हैं।

१५वीं शताब्दी तक इस प्रकार जो चित्रशैली राजस्थान में प्रचलित रही वह बड़ी व्यापक शैली थी। जैन तथा जैनेतर ग्रन्थों को आधार बनाकर जो चित्रण हुआ है उसे जैन शैली, गुजरात शैली, पश्चिमी भारतीय शैली या अपभ्रंश शैली आदि कुछ भी कहें, पर इसमें सन्देह नहीं कि ७वीं शती से १५वीं शती तक राजस्थान में मौलिक कला तथा अजन्ता-एलोरा-परम्परा की कला के सामंजस्य से पैदा होनेवाले सिद्धान्तों के अनुकूल चित्रकला, मूर्तिकला तथा शिल्पकला की अविरल रूप से प्रगति होती रही थी। इस दृष्टि से राजस्थान और गुजरात में कोई भेद नहीं रहा। 'वागड़' तथा 'छप्पन' के भाग में गुजरात से अनेक कलाकार जाकर यहाँ बसे, जो आज भी सोमपुरा कहलाते हैं।[1] "महाराणा कुम्भा के समय प्रसिद्ध शिल्पी मण्डन वहीं से आकर बसा।"[2]

१२वीं शताब्दी से १५वीं तक सचित्र ग्रन्थों के जो उपर्युक्त उदाहरण प्राप्त होते हैं उनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनमें राजस्थानी शैली का बीजांकुर अवश्य था। इन चित्रों के आधार अधिकतर जैन ग्रन्थ हैं। चित्रों में सवा चश्म वाले चेहरे,[3] गरुड़ की-सी नाक, परवली-फाँक-सी आँख (जिनमें से एक आँख चेहरे की सीमान्त रेखा से उभरी हुई), घुमावदार, लम्बी, पर ऐंठी हुई उँगलियाँ, अधिक उभरा हुआ वक्ष, अंग-भंगी, मुद्राएँ एवं आसन अकड़े हुए, बादल, वृक्ष, पर्वत, नदी आदि के चित्रण में अकड़न के साथ अलंकरण का प्रावल्य एवं लाल-पीले रंगों का विशेष प्रयोग मिलता है।[4]

तथ्यों के आधार के बिना यह कहना कठिन है कि प्रारम्भिक राजस्थानी चित्रकला १६वीं शती में किस प्रकार और कहाँ-कहाँ विकसित हुई; किन्तु अन्य उपलब्ध सचित्र ग्रन्थों के आधार पर तत्कालीन राजस्थानी चित्रकला का परिवर्तित स्वरूप कुछ विशेषताओं के साथ विकसित हुआ है। सन् १५४० में चित्रित ४१७ चित्रों से सुसज्जित गुजराती शैली का ग्रन्थ 'आदि-पुराण' भारतीय चित्र-

---

१. देखिए, डॉ० गोपीनाथ वर्मा : भारतीय चित्रकला और राजस्थान, वार्षिकी ६३, पृ० २२, २३
२. ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० ३१५
३. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ग
४. श्री विजयवल्लभ स्मारक ग्रन्थ, बम्बई, सुपासनाचर्यम् के अनेक फलक द्रष्टव्य

कला में दीपस्तम्भ के समान है।[1] अपभ्रंश से प्रभावित होते हुए भी रंग, रेखाओं, शारीरिक गठन, प्रकृति-चित्रण, वेशभूषा एवं हाव-भाव में राजस्थानी चित्रकला का प्रतीक, यह ग्रन्थ अध्ययन की दृष्टि से वहुत महत्त्वपूर्ण है।[2] अवधी-काव्य मृगावती[3] (२५० चित्रों से सुसज्जित) तथा सचित्र लोरचन्दा[4] भी इसी श्रेणी के ग्रन्थ हैं। सन् १५८३ का संग्रहणीसूत्र[5] तथा १५९१ का उत्तराध्ययन-सूत्र[6] नामक सचित्र ग्रन्थों से भी राजस्थानी चित्रकला का परिवर्तित स्वरूप विशेष उल्लेखनीय है। तत्कालीन सचित्र 'चौरपंचाशिका'[7] तथा 'गीतगोविन्द'[8] में इस चित्रकला की विशेष थाती उपलब्ध है। "राजस्थानी चित्रकला से सम्बन्धित दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ और हैं जो भागवत् पर आधृत हैं। उनमें से प्रथम[9] १५९८ में और दूसरा[10] १६१० में शायद राजस्थान में ही कहीं, चित्रित हुआ। इनमें राजस्थानी चित्र-कला का विकसित स्वरूप अपनी विशेषताओं में आविर्भूत हुआ है।"[11] राजस्थानी शैली में महाराणा प्रताप की राजधानी चाँवड़ में नासिरुद्दीन द्वारा सन् १६०५ में चित्रित 'रागमाला चित्र'[12] प्रथम उपलब्ध चित्र हैं जो राजस्थान की भूमि में चित्रित हुए हैं। इससे आगे की परम्परा मेवाड़ शैली में उपलब्ध है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह वात मान्य है कि तथाकथित 'राजस्थानी चित्रकला' की जन्मभूमि राजस्थान ही है और उसका केन्द्र मेदपाट (मेवाड़) रहा है। "वास्तव में राजस्थानी शैली अपभ्रंश शैली का नवीन उत्थान है। दूसरे शब्दों में ९वीं, १०वीं शती में जो अवनति होती जा रही थी, उसके स्थान पर १५वीं शती में उन्नति का क्रम चल पड़ा। यह पुनरुत्थान गुजरात और दक्षिणी

---

१. देखिए, कार्ले-खण्डालवाला : बुलेटिन ऑफ प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, सं० ४, पृ० ६-८
२. आनन्द कृष्ण : ए सर्वे ऑफ राजस्थानी पेंटिंग (अप्रकाशित शोधग्रन्थ, का० हि० वि० वि०, वाराणसी)
३. देखिए, भारत कला-भवन, वाराणसी : संख्या ७७४२-७९९१
४. ,, लाहौर म्यूजियम
५. ,, मुनि पुन्यविजय के व्यक्तिगत संग्रह में
६. ,, आर्ट एण्ड पिक्चर गैलेरी, बड़ौदा, पी० जी० ५, एफ-के
७. ,, एन० सी० मेहता आर्ट गैलेरी, गुजरात म्यूजियम सोसायटी, अहमदावाद
८. देखिए, प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई
९. ,, पोथीखाना, जयपुर
१०. ,, पुस्तक प्रकाश, जोधपुर
११. ,, कार्ले-खण्डालवाला : बुलेटिन ऑफ दि प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम-४, पृ० ९
१२. गोपीकृष्ण कानोड़िया, कलकत्ता के निजी संग्रह में द्रष्टव्य

राजस्थान-मेवाड़ में हुआ जान पड़ता है।"[१] मेवाड़ का नाम राजस्थानी चित्रकला के जन्म और विकास के सम्बन्ध में अन्य विद्वानों द्वारा भी लिया जाता रहा है। डॉ० हरमन ग्वेत्स का विचार भी इस बारे में मेवाड़ पर ही अधिक केन्द्रित रहा है। दक्षिणी राजस्थान में मेवाड़, बांसवाड़ा तथा ईडर के पहाड़ी प्रान्तों के वे भाग आते हैं जो प्राचीन काल से ही सूर्यवंशी राजाओं के अधीन रहे और गुप्त साम्राज्य के विघटन के उपरान्त भी भारतीय संस्कृति की मशाल अपने हाथों में लिये रहे, अतः मेवाड़ के जिन सूर्यवंशियों ने अजन्ता-एलोरा के शिल्प को तत्परता से मध्ययुग तक निभाया, उन्हें चित्रकला की समान परम्परा के निर्वाह में अक्षम मानना, उनके प्रति अन्याय और हमारी अज्ञता का ही परिचायक होगा।[२] "अस्तु राजस्थानी शैली का प्रारम्भ १५वीं शती के उत्तरार्द्ध १६वीं शती के पूर्वार्द्ध के बीच (सम्भवतः १५०० ई० के आसपास) प्रतिपादित होता है। राजस्थानी शैली का उद्भव अपभ्रंश शैली से गुजरात एवं मेवाड़ में काश्मीर शैली के प्रभाव द्वारा १५वीं शती में हुआ। ऐसे भी कतिपय चित्र प्राप्त हुए हैं जिनमें कहीं भी मुगल प्रभाव नहीं पाया जाता। भारत कला-भवन का वंगाली रागिनी-वाला चित्र इन्हीं में से एक है।"[३] रायकृष्णदास का उपर्युक्त कथन आज अधिकृत रूप से मान्य है; क्योंकि जिस समय राजस्थानी चित्रकला का जन्म हो रहा था उन दिनों भारत में मुग़ल साम्राज्य के संस्थापक अकबर के पितामह बाबर का जन्म (सन् १४८३) हुआ था। गुजरात का सुल्तान महमूद वेगड़ा तथा मेवाड़ का महाराणा कुम्भा, दोनों कला-प्रेमी तथा कलाश्रयदाता थे। इस समय जैनुल आबिदीन के शासनकाल में काश्मीर में भी चित्रकला उन्नति पर थी, अतः मित्र राज्यों में चित्रकला के क्षेत्र में कोई पारस्परिक आदान-प्रदान हुआ हो तो आश्चर्य नहीं।

विशुद्ध राजस्थानी चित्रकला का प्रारम्भ १५वीं शती के उत्तरार्द्ध और १६वीं शती के पूर्वार्द्ध के बीच, १५०० ई० के आसपास मानना चाहिए। गुजरात और मेवाड़ में जिस समृद्धिशाली राजस्थानी शैली के उदय के कारण भारतीय चित्रकला की प्रसुप्त चेतना उद्बुद्ध हुई, वह अपभ्रंश शैली का ही नवीन संस्करण था। "भाव-विधान एवं आलेखन की दृष्टि से राजपूत शैली यद्यपि अपने अपूर्व नये परिवेश को लेकर आयी थी, किन्तु विषय-वस्तु के लिए उसने अपनी पूर्ववर्ती अपभ्रंश शैली का ही आश्रय लिया। रागमाला, शृंगार, ऋतु-

---

१. रायकृष्णदास : भारत की चित्रकला, पृ० ५८
२. देखिए, भंवरलाल शर्मा : राजस्थानी शैली की जन्मभूमि : मेवाड़, न्याय १७, अगस्त, १९६३
३. रायकृष्णदास : भारत की चित्रकला, पृ० ५८-५९

वर्णन, कृष्णलीला आदि से सम्बन्धित जो उत्कृष्ट चित्र राजपूत शैली की देन हैं उनका स्रोत अपभ्रंश शैली ही है।"[१]

कुछ विद्वानों ने गुजरात शैली को राजस्थानी चित्रकला की जन्मदात्री एवं पोषिका माना है। प्रमोदचन्द्र का कथन है कि "गुजरात प्रमुख केन्द्र रहा है जहाँ से राजस्थानी शैली समृद्ध हुई है।"[२] श्री मंजुलाल रणछोड़लाल मजुमदार का कथन है, "गुजराती शैली ने राजपूत चित्रशैली को जन्म दिया। पर्वत, नदी, सागर, पृथ्वी, अग्नि, वादल, वृक्ष, लता आदि के आलेखनों की जो दर्शनीयता राजपूत शैली में दृष्टिगोचर होती है, वह गुजरात शैली की ही देन है।"[३] जैन कला के प्रभाव के वारे में अनेक विद्वानों का कथन है कि हिन्दू राजपूत कला के लिए जैन कला का महत्त्वपूर्ण योग है। भारतीय चित्र शैलियों में बेल-बूटों के सन्निवेश की जन्मदात्री जैन कला ही रही है। बाद में अपनी परम्परा का सारा उत्तराधिकार राजपूत कला को सौंपकर जैन कला विलुप्त हो गयी है।[४] इसके विपरीत डॉ० मजदानी का विचार है "कि जैन कला अपने युग की सर्वोत्तम कला का प्रतिनिधित्व नहीं करती। इसलिए जैन कला ने राजपूत कला को अपना सर्वस्व सौंपा होगा, ऐसा मानना भारी भूल होगी।"[५]

अतः राजस्थानी चित्रकला का जन्म राजस्थान के ही प्रान्त में हुआ। अन्य भारतीय शैलियों से प्रभावित होती हुई वह स्वतन्त्र रूप से राजस्थान के वीर प्रदेश में पल्लवित हुई। राजस्थानी शैली के विकास में राजस्थान के प्राचीन इतिहास और भौगोलिक रचना का प्रमुख हाथ रहा है। वीर राजपूतों की वीर-भूमि के कण-कण में उनके शौर्य की गाथाएँ, सभ्यता और संस्कृति के पदचिह्न, काव्य चित्रकला स्थापत्य आदि के रूप में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। वास्तविकता तो यह है कि अपने प्राकृतिक निर्माण और मोहक वातावरण के कारण काव्य एवं कला की उद्‌भावना के लिए राजस्थानी धरती अत्यधिक उपयुक्त रही है।

वर्गीकरण

राजस्थानी चित्रकला का उद्‌भव और विकास कई अन्य शैलियों की भाँति न तो एक स्थान में हुआ और न ही कुछेक कलाकारों द्वारा। राजस्थान के जितने भी

---

१. वाचस्पति गैरोला : भारतीय चित्रकला, पृ० १३६
२. मार्ग ११।२, १९५८, एन आउट लाइन ऑफ अर्ली राजस्थानी पेंटिंग
३. एम. आर. मजुमदार : दि गुजराती स्कूल ऑफ पेंटिंग, जर्नल ऑफ दि इण्डियन सोसायटी ऑफ ऑरियण्टल आर्ट, भाग १०, १९४२
४. देखिए, वाचस्पति गैरोला : भारतीय चित्रकला, पृ० १४२
५. डॉ० जी० मजदानी : एनुवल रिपोर्ट ऑफ आर्कियोलाजिकल डिपार्टमेण्ट ऑफ हिज हाईनेस दि निजाम, १९३०, पृ० ४८

प्राचीन नगर, राजधानियाँ तथा धार्मिक और सांस्कृतिक प्रतिष्ठान हैं, वहाँ चित्रकला पनपी और विकसित हुई है। धर्मपीठों, दरबारों एवं धर्माचार्यों, राजाओं, सामन्तों, जागीरदारों आदि का राजस्थानी चित्रकला के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। धार्मिक प्रतिष्ठानों के अतिरिक्त दरबारी कवियों, चित्रकारों, संगीतज्ञों, शिल्पाचार्यों आदि के योग से राजस्थानी चित्रकला की अजस्र धारा अनेक रियासती शैलियों और उपशैलियों को परिप्लावित करती हुई १७-१८वीं शती में अपने चरमोत्कर्ष पर जा पहुँची, जिससे इसका समन्वित स्वरूप सामने आया। इसके विराट् परिवेश में अनेक शाखाएँ और उप-शाखाएँ समाविष्ट हो गयीं।

इसके विभाजन के बारे में विद्वानों के अनेक मत हैं। विभिन्न रियासतों के चित्रकारों ने अपने तौर-तरीकों से जो चित्र बनाये, वे अपनी स्थानीय विशेषताओं के प्रतीक बन गये। इस प्रकार अनेक शैलियों का जन्म हुआ। डॉ० मोतीचन्द्र मेवाड़, किशनगढ़ और बूंदी शैली को ही प्रमुख मानते हैं। हरमन ग्वेत्स, कार्ल-खण्डालवाला, रामगोपाल विजयवर्गीय आदि विद्वानों ने मारवाड़, बीकानेर, कोटा और जयपुर शैली का वर्गीकरण और जोड़ दिया है।[1] वर्गीकरण के बारे में कुं० संग्रामसिंह के विचार और भी चमत्कारपूर्ण हैं। उन्होंने इसे भौगोलिक दृष्टि से चार भागों में विभाजित किया है[2] :—१. मेवाड़ी (उदयपुर, नाथद्वारा, प्रतापगढ़ आदि), २. मारवाड़ी (जोधपुर, बीकानेर, नागौर, किशनगढ़ आदि), ३. हाड़ौती (बूंदी और कोटा) तथा ४. ढूंढाड़ी (जयपुर, अलवर उणियारा आदि)। उपर्युक्त विभाजन के अन्तर्गत उन्होंने अनेक शैलियों और उपशलियों के नाम गिनाये हैं। अजमेर, उणियारा आदि को भी उन्होंने शैली के अन्तर्गत माना है।

अलवर शैली की मौलिकता पर अभी तक अधिक विचार नहीं हुआ है, जबकि अलवर के सम्पन्न संग्रहालय और विभिन्न भवनों के भित्तिचित्रों के आधार पर उसे उचित स्थान मिलना चाहिए। मैं समझता हूँ राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न प्रमुख शैलियों और उपशैलियों का विभाजन इस प्रकार होना चाहिए :—१. मेवाड़ शैली (उदयपुर तथा उपशैली नाथद्वारा सम्बन्धी), २. बूंदी शैली, ३. कोटा शैली, ४. मारवाड़ शली (जोधपुर तथा उपशैली नागौर सम्बन्धी), ५. किशनगढ़ शैली, ६. बीकानेर शैली, ७. जयपुर शैली, ८. अलवर शैली। छोटे-छोटे ठिकानों और राजघरानों में पनपनेवाली चित्रशैली के स्वतन्त्र स्वरूप पर पर्याप्त सामग्री के अभाव में विचार करना अधिक संगत न होगा।

---

१. देखिए, मार्ग ११, अंक-२

२. सीटी पैलेस म्यूजियम, जयपुर में उपलब्ध मानचित्र के आधार पर

अतएव विवेचन में इन्हीं शैलियों को आधार बनाया गया है।

मेवाड़ शैली

राजस्थानी चित्रकला में मेवाड़ शैली का सर्वोपरि स्थान है। भेदपाट या मेवाड़ (आधुनिक उदयपुर जिला) प्राचीन समय से ही कलाओं का प्रेरणा-स्रोत रहा है, इसलिए राजस्थानी चित्रकला के उद्‌भव और विकास तथा ऐतिहासिक मूल्यांकन में मेवाड़ शैली का प्रमुख हाथ रहा है। प्रारम्भिक राजस्थानी के चित्र मेवाड़ शैली से ही सम्बन्धित हैं। अतः मेवाड़ में परिपोषित चित्रकला मेवाड़ शैली के नाम से प्रख्यात है जिससे राजस्थान की विभिन्न चित्र-शैलियों का विकास हुआ।

पीठिका

मेवाड़ का इतिहास वीरता, स्वतन्त्रता की रक्षा, कला धर्म आदि के संरक्षण के लिए प्रसिद्ध रहा है। भीषण विपत्तियों, बाधाओं और युद्धों से आक्रान्त मेवाड़ ने धर्म और कलाओं की अविस्मरणीय सेवा की है।[1] स्थापत्य, साहित्य, संगीत आदि कलाओं से राणा कुम्भा (१४४३-१४६८) का विशेष प्रेम रहा है, राणा सांगा (१५०९-१५२८) का जीवन बाबर से युद्ध करते ही बीता, जो अपनी वीरता की कथाएँ पीछे छोड़ गया। उसकी पुत्रवधू मीरांबाई ने कृष्ण-भक्ति की अजस्र रसधारा बहायी। कलाओं का केन्द्र-स्थल चित्तौड़ बार-बार युद्धों से जर्जरित होता रहा है, इसलिए उदयसिंह (१५३७-१५७२) ने सामरिक महत्त्व के कारण उदयपुर को अपनी राजधानी बनाया। महाराणा प्रताप (१५७२-१५९७) ने मुग़लों की अधीनता कभी नहीं स्वीकारी और छप्पन की पहाड़ियों में स्थित चाँवड़ को अपनी राजधानी बनाया। इस दृष्टि से चित्तौड़, चाँवड़ और उदयपुर प्रारम्भिक मेवाड़ी चित्रकला के प्रमुख केन्द्र रहे हैं। अमरसिंह प्रथम (१५९७-१६२०) ने मुग़लों की आंशिक अधीनता स्वीकारी जिसके कारण मुग़ल कला का प्रभाव मेवाड़ शैली पर आया जो करणसिंह (१६२०-१६२८) और जगतसिंह प्रथम (१६२८-१६५२) पर भी रहा। राजसिंह (१६५२-१६८०) अपने पिता की ही भाँति कला-प्रेमी एवं पुष्टिसम्प्रदायी विद्वान् राजा था। जयसिंह (१६८० १६९८) तथा अमरसिंह द्वितीय (१६९८-१७१०) ने मेवाड़ की कला परम्परा को आगे बढ़ाया।

---

१. देखिए, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : मेवाड़ का इतिहास

विकास

सन् १६०५ में महाराणा प्रताप की राजधानी चाँवड़ में चित्रित 'रागिनी चित्रमाला'[1] प्रारम्भिक राजस्थानी चित्रकला की परम्परा में विशेष महत्त्व की है। नासिरुद्दीन द्वारा चित्रित यह प्रथम रोचक और मौलिक कृति है जिससे राजस्थानी चित्रकला के विकास की पृष्ठभूमि के साथ समय और स्थान का कुछ अनुमान भी लगाया जा सकता है। मेवाड़ी लोक कला और रंगों के चटकीलेपन के लिए यह चित्रमाला विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[2] मेवाड़ शैली को १६०५ से १६४८ की प्रगति, सामग्री की अनुपलब्धता के कारण अभी अन्धकार में है। सन् १६४० में चित्रित नायक-नायिका चित्रमाला[3] मेवाड़ शैली का उदाहरण है जिसमें जहाँगीरकालीन मुग़ल शैली का कुछ प्रभाव भी दिखायी देता है। यह समय महाराणा जगतसिंह का था (१६२८-५२) जो मेवाड़ शैली का स्वर्ण-युग माना जाता है। कृष्ण-काव्य, रास-काव्य, रीति-काव्य, रागरागिनी, बारहमासा आदि को आधार बनाकर इस समय अनेक चित्र बने। वल्लभ सम्प्रदाय के प्रचार और प्रसार के कारण कृष्ण-भक्ति का महत्त्व दिन-दिन बढ़ने लगा, इसलिए 'भागवत पुराण' को आधार बनाकर ग्रन्थ-चित्रण की परम्परा ने आकर्षक रूप ग्रहण किया। जगतसिंह के समय में चित्रित अनेक सचित्र 'भागवत्-पुराण' उपलब्ध हैं। 'शाहबदी' द्वारा चित्रित (१६४८) 'भागवत्-पुराण' के उपलब्ध ४ स्कन्ध[4] (८, ९, ११, १२) कला की दृष्टि से बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। उसके २३४ पन्नों में १२९ चित्र हैं जिनमें पीले, लाल, हरे, और नीले रंगों का विशेष प्रयोग हुआ है।[5] भागवत् के अन्य सचित्र ग्रन्थ महाराणा जोधपुर, कोटा के सरस्वतीभण्डार[6] और अनेक खुले पन्ने राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में इसी समय के उपलब्ध हैं।[7] सन्

---

१. गोपीकृष्ण कानोडिया कलकत्ता के निजी संग्रह में ४२ चित्रों में से केवल २५ उपलब्ध
२. गोपीकृष्ण कानोडिया कलकत्ता : ए नोट ऑन दि चाँवड़ रागमाला सैट, जर्नल ऑफ दि इण्डियन सोसायटी ऑफ ऑरियण्टल आर्ट, सं० १९
३. राष्ट्रीय संग्रहालय नयी दिल्ली में द्रष्टव्य। १ फलक मध्याधीश नायिका डॉ० मोतीचन्द की मेवाड़ पेंटिंग में प्रकाशित
४. देखिए, भण्डारकर इन्स्टीट्यूट पूना, सं० ६१ (खेद कि १०वाँ स्कन्ध वहाँ नहीं है और व्यापारिक दृष्टि से इधर-उधर बिखर गया है)
५. विशेष विवरण देखिए, पी. के. गोडे : एन इल्युस्ट्रेटड मनुस्क्रिट ऑफ भागवत् पुराण न्यू इण्डिया एन्टीक्वायरी १।४ जु० १९३८
६. इसके बारे में अनेक कलामर्मज्ञों की राय है कि वह बूंदी शैली का है
७. डॉ० मोतीचन्द्र : मेवाड़ पेंटिंग, पृ० ३

१६४६ में किसी मनोहर नाम के कलाकार ने सचित्र रामायण[1] को प्रस्तुत किया। इसके बाद एक और सचित्र रामायण[2] सन् १६५१ में सामने आयी जिसका चित्रकार अज्ञात है। फिर भी मेवाड़ शैली की चित्रकला के इतिहास की गवेषणा में इस ग्रन्थ का उल्लेख भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। सचित्र कृष्ण-काव्य के समानान्तर सचित्र रामकाव्य की अवतारणा चित्रकला के विकास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इसी समय का 'रसिकप्रिया'[3] तथा रागमाला चित्र[4] मेवाड़ शैली के कलात्मक उदाहरण हैं। रसिकप्रिया ने चित्रकला में प्रवेश क्यों किया यह प्रश्न अपने उत्तर के लिए व्यग्र है। ऐसा लगता है कि 'नायिकाभेद' को चित्रकला ने अपना लिया था। राधा-कृष्ण या गोपीकृष्ण के प्रसंगों के होने से वल्लभाचार्य के (दूरस्थ) साम्प्रदायिक प्रभाव ने भी इसके चित्रण को प्रोत्साहित किया।

इसके अतिरिक्त मेवाड़ शैली में कृष्ण सम्बन्धी दो ग्रन्थों को चित्रकारों ने विशेष रूप से समादृत किया। उनमें से एक तो 'गीतगोविन्द' (संस्कृत) है और दूसरा 'सूरसागर।' इस समय की 'गीतगोविन्द'[5] और 'सूरसागर'[6] की प्रतियाँ उपलब्ध हैं। प्रसिद्ध चित्रकार 'शाहवदी' द्वारा सन् १६५५ में चित्रित 'शूकरक्षेत्र महात्यम'[7] तथा १६५६ का 'भ्रमरगीत'[8] मेवाड़ शैली की प्रगति के परिचायक हैं। मेवाड़ शैली का यह चित्रण राजसिंह (१६५२-१६८०) के राज्य काल में भी संरक्षण एवं पोषण पाता रहा। अनेक संस्कृत ग्रन्थ तथा हिन्दी के भक्तिकालीन और रीतिकालीन ग्रन्थों का चित्रण हुआ जिनमें कृष्णलीला का अंकन, इस युग की प्रमुख देन है।[9] औरंगज़ेब के भय से गोवर्धन स्थित श्रीनाथजी के विग्रह को राजस्थान में लाया गया और सन् १६७० में नाथद्वारा में प्रतिष्ठित किया गया। आचार्य श्री गोपीनाथजी के साथ मथुरा तथा गोवर्धन से अनेक धर्मनिष्ठ कलाकार भी आये जिनके हाथों से श्रीनाथजी के विग्रह के चित्र बनाये गये।[10] मेवाड़

---

१. देखिए, प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई
२. ,, सरस्वती भण्डार, उदयपुर
३. ,, महाराजा बीकानेर के निजी संग्रह में २१ पन्ने
४. ,, राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी-दिल्ली
५. ,, प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई
६. ,, गोपीकृष्ण कानोडिया के निजी संग्रह में
७. ,, सरस्वती भण्डार उदयपुर।
८ ,, राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी-दिल्ली
९. हरमन ग्वेत्स : मेवाड़ मार्ग ११।२, पृ० ४०
१०. देखिए, गोवर्धनलाल जोशी : नाथद्वारा की चित्रकला, वार्षिकी ६३, पृ० ३५-३६

की पूर्व प्रतिष्ठित शैली और नाथद्वारा के कलाकारों के समन्वय से मेवाड़ी चित्र-कला की 'नाथद्वारा' उपशैली का प्रादुर्भाव हुआ। श्रीनाथजी के प्राकट्य एवं लीलाओं से सम्बन्धित असंख्य चित्र कागज़ और कपड़े पर बनने लगे, जो आज भी देशी-विदेशी कला संग्रहालयों तथा वैयक्तिक संग्रहों में उपलब्ध हैं। महाराणा जगतसिंह तथा राजसिंह के काल (१६२८-१६८२) में मेवाड़ शैली अपने चरमोत्कर्ष पर थी। व्यापारिक दृष्टि तथा कथ्य की पुनरावृत्ति के कारण धीरे-धीरे नाथद्वारा शैली ने ह्रास की दिशा ग्रहण कर ली। वह अपनी पूर्ववर्ती मेवाड़ शैली के विख्यात मार्ग और यश से भ्रष्ट हो गयी। महाराणा जयसिंह (१६८१-९८) ने अपनी विलासप्रियता के कारण कला-परम्परा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया, इसलिए मेवाड़ शैली का धीरे-धीरे अपकर्ष होने लगा। महाराणा अमरसिंह द्वितीय (१६९८-१७१०) तथा संग्रामसिंह द्वितीय (१७१०-३४) की कलाप्रियता मुग़लकला के प्रभाव से मुक्त न रह सकी। इस प्रभाव के परिलक्षण का अनुमान संग्रामसिंह के समय में (लगभग १७१७) में चित्रित 'बिहारी सतसई'[1] से हो सकता है। मेवाड़ शैली का मिश्रित स्वरूप राज-दरबार, ठिकानों तथा वैष्णव पीठों में १९वीं शती के प्रारम्भ तक चलता रहा।[2] नाथद्वारा शैली की परम्परा तो आज तक भी प्रचलित है। लगभग ३५ कुटुम्बों के पुश्तैनी चित्रकार जीविकोपार्जन के लिए नाथद्वारा में आज भी चित्रांकन करते हैं, जो अत्यधिक हल्के और बाजारू होते हैं।

विशेषताएँ

प्रारम्भिक मेवाड़ शैली में जैन, गुजरात तथा अपभ्रंश शैली का मिश्रण एवं प्रभाव द्रष्टव्य है; किन्तु लोककला की रुक्षता और मोटापन तथा रेखा और रंगों का भारीपन मेवाड़ शैली की निजी मौलिकता रही हैं। १७वीं शती के मध्य में विकसित मेवाड़ शैली का स्वतन्त्र प्रारूप अपनी निजी विशेषताओं के लिए प्रसिद्ध है। पुरुषाकृति गठीली, मूँछों से युक्त भरे चेहरे, विशाल नयन, खुले हुए अधर, छोटी ग्रीवा, उदयपुरी पगड़ी, लम्बा साया, कमर में दुपट्टा और सामान्य अलंकारों से आवृत्त शरीर तत्कालीन मेवाड़ शैली की विशेषताएँ हैं। नारी-चित्रण में सरल भाव, मीनाकृत आँखें, सीधी लम्बी नाक तथा भरी हुई दोहरी चिबुक, ठिगना क़द, लूगड़ी, घाघरा और विभिन्न ठेठ राजस्थानी आभूषणों से आवेष्टित शरीर अंकित हुआ है। प्रकृति का सन्तुलित चित्रण मेवाड़ शैली में उल्लेखनीय है।

---

१. सरस्वती भण्डार, उदयपुर : सं० ९४१ हि०, (३९२ पन्नों में से केवल २३६ ही उपलब्ध हैं)
२. हरमन ग्वेत्स : मेवाड़, मार्ग ११।२, पृ० ४१

पक्षियों में चकोर, हंस, मयूर और पशुओं में हाथी, घोड़ा, हरिण, सिंह आदि विशेष चित्रित हुए हैं। लाल, हरे और पीले रंगों का प्रयोग तथा तड़क-भड़क रहित सरल भावमय चित्रण मेवाड़ शैली की विशेषता हैं ।

१८वीं शती के चित्रों में नाथद्वारा उप-शैली के चित्रों की बहुलता रही है, इसलिए बालकृष्ण का विभिन्न रूपों में चित्रण हुआ है। माता यशोदा के चित्रण की प्रमुखता के कारण स्त्रियों की आकृति में प्रौढ़ता,[1] शारीरिक स्थूलता और भावों में वात्सल्य की झलक विशेष दर्शनीय है। पुरुषों में गुसाइयों के पुष्ट क्लेवर, नन्द और अन्य बाल गोपालों के भावपूर्ण चित्र उल्लेखनीय हैं। गाय, बछड़े, बालक वन, निकुंज कदलीस्तम्भ आदि का चित्रण शैली में बहुलता से हुआ है । लोक-कला का पूर्ण प्रभाव होने के कारण तत्कालीन शैली में सरलता, गतिशीलता और रंगों का सरल समन्वय अपनी विशेषता लेकर अवतीर्ण हुआ है। व्यापारिक दृष्टिकोण ने १९वीं २०वीं शती की शैली में रंगों का बिखराव, रेखाओं का भद्दा-पन, फोटोग्राफी का प्रभाव आने लगा, जिसने उसे पतनोन्मुख कर दिया।

विषय

मेवाड़ शैली में ग्रन्थ-चित्रण विशेष मिलता है। प्रारम्भ में जैनग्रन्थों तथा रागरागिनी चित्रण की बहुलता रही। १७वीं शती से राधाकृष्ण की लीलाओं सम्बन्धी ग्रन्थों, जैसे भागवत्, गीतगोविन्द, सूरसागर तथा नायक-नायिका भेद सम्बन्धी ग्रन्थों, जैसे रसिकप्रिया, बिहारी सतसई आदि का विशेष चित्रण हुआ। कृष्णकाव्य के समानान्तर रामकाव्य भी सम्भवतः किसी धार्मिक या साम्प्रदायिक आग्रह से मेवाड़ शैली में समादृत हुआ। मैं समझता हूँ कि धार्मिक परिपार्श्व के साथ कला-प्रेम भी उपेक्षणीय नहीं है; अन्यथा ढोलामारू, बारहमासा आदि को मेवाड़ शैली में आदर न मिलता। इनके चित्रण में सामाजिक और साहित्यिक अभिरुचि की प्रेरणा भी देखी जा सकती है। इसलिए रामायण, ढोलामारू, बारहमासा आदि भी मेवाड़ शैली के प्रमुख विषय रहे हैं। अन्तिम १८वीं शती से श्रीनाथजी के विग्रह, बाललीला, रासलीला, गोचारण आदि विषयों को आधार बनाकर बहुलता से चित्र बने। संक्षेप में, बालकृष्ण, गोपालकृष्ण और शृंगारी-कृष्ण का चित्रण मेवाड़ शैली की प्रमुख देन रही है।

बूंदी शैली

प्राकृतिक सौन्दर्य और सुषमा से आवेष्टित हाड़ा राजपूतों के राज्य बूंदी में परिपोषित चित्रकला बूंदी शैली के नाम से प्रसिद्ध है । वहाँ की हरी-भरी

१. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ परिशिष्ट, चित्र सं० ६

पहाड़ियाँ, झील, सरोवर और गहन जंगलों से युक्त प्राकृतिक परिवेश बूँदी के कलात्मक जीवन को प्रभावित करता आया है।

ऐतिहासिक पीठिका

१४वीं शताब्दी के मध्य (सं० १३९८) में राव देवा द्वारा स्थापित बूँदी हाड़ा वीर राजपूतों का प्रमुख राज्य रहा है; किन्तु बूँदी की चित्रकला का इतिहास राव सुरजन (१५५४-१५८५) से ही आँका जाता है। उन्होंने मेवाड़ से सम्बन्धविच्छेद कर अकबर को रणथम्भौर का किला सौंपकर उसका आधिपत्य स्वीकार किया।[1] उनके पौत्र राव रतनसिंह (१६०७-१६३१) को जहाँगीर ने 'सरबुलन्दराय' की पदवी देकर सम्मानित किया तथा हाड़ा मुग़ल सम्बन्धों को दृढ़ बनाया।[2] राव रतन के पौत्र शत्रुशाल (१६३१-१६५८) ने अपने राज्य में अनेक कलाकारों को आश्रय दिया। उनके पुत्र भावसिंह (१६५८-१६८१) की कलाप्रियता ने बूँदी निवासियों को संगीत, काव्य और चित्रकला से परिप्लावित कर दिया।[3] "भावसिंह के आश्रय में मतिराम जैसे कवि रहें, जिन्होंने 'ललित ललाम' और 'रसराज' की रचना कर कला-प्रेमियों तथा कलाकारों को प्रभावित किया।[4] भावसिंह तथा उनके पुत्र अनिरुद्धसिंह ने मुग़ल-शासन के निर्देशों से दक्षिण के युद्धों में भी भाग लिया, जिससे बूँदी शैली में दक्षिणी शैली का प्रभाव समाविष्ट हुआ। राव बुद्धसिंह (१६९५-१७३१) के समय में सन् १७१९ में राव भीमसिंह (कोटा) ने बूँदी को अपने अधीन कर लिया, किन्तु मरहठों की सहायता से राव उम्मेदसिंह ने सन् १७४८ में उसे स्वतन्त्र करा लिया, जिससे बूँदी पर मरहठा प्रभाव भी रहा।[5] १९वीं शती से राजस्थानी राज्यों पर अंग्रेज़ी प्रभाव पड़ने लग गया, इससे बूँदी राज्य भी मुक्त न रहा।

विकास

बूँदी शैली के उद्भव के बारे में अभी तक निश्चित तिथियाँ अंकित नहीं हो पायी हैं; किन्तु १८वीं शती के मध्य में अपने पर आरूढ़ बूँदी शैली के पीछे एक

---

१. रघुवीर सिंह : पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ० ४७
२. वही, " " पृ० १०१
३. जगत विदित बूँदी नगर सुख सम्पत्ति को धाम।
गीत कवित कलानि को जहं सब लोग सुजान॥
मतिराम ग्रन्थावली (ललित ललाम) सं० कृष्णबिहारी मिश्र, पृ० ३६२।
४. भोलाशंकर व्यास : मधुमति—अप्रैल-जुलाई ६२, पृ० १४८
५. देखिए. डॉ० रघुवीरसिंह : पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ० १७१

इतिहास अवश्य है।[1] अब तक की प्राप्य सामग्री के आधार पर दो रागमाला सम्बन्धी चित्र ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।[2] १७वीं शती के प्रारम्भ में मेवाड़ शैली की प्रशाखा के रूप में मुगल शैली से प्रभावित होती हुई अपनी मौलिक प्राकृतिक देन के साथ कला-प्रेमी राजाओं के आश्रय में बूंदी शैली पनपी और धीरे-धीरे विकसित होकर उसने अपने वैभव के दिन देखे।[3] राव छत्रसाल ने प्रसिद्ध रंगमहल बनवाया जो सुन्दर भित्तिचित्रों से सुसज्जित है। 'ललितललाम' में भावसिंह की वीरता, कला-मर्मज्ञता, कला-पोषण आदि का सहज ही पता लगता है। उनके समय के चित्रित रागरागिनी, नायिका-भेद, कृष्णलीला सम्बन्धी अनेक चित्र संग्रहालयों तथा व्यक्तिगत संग्रहकर्त्ताओं के पास उपलब्ध हैं।[4] 'रसराज' पर आधारित चित्रण परम्परा इसी समय से प्रारम्भ हुई। रीति-काल के अन्त में लाल कवि ने राजा बुद्धसिंह (१६९५-१७३१) के लिए एक अलंकार-ग्रन्थ की रचना की, जिससे उनकी विद्वत्ता और कला-मर्मज्ञता का परिचय मिलता है।[5] "१८वीं शती के प्रथम सोपान में बूंदी शैली अत्यधिक विकसित हुई। चित्रण की बहुलता तथा विशेषता की दृष्टि से यह समय चित्रकला के इतिहास में महत्त्वपूर्ण है।"[6] प्रारम्भिक बूंदी शैली की सरलता और मेवाड़ प्रभाव इस समय अपने मौलिक स्वरूप में प्रस्फुटित होने लगा। रंगों का बाहुल्य और चटकीलापन, शारीरिक गठन आदि से युक्त रीतिकालीन श्रृंगारी-काव्य पर आधारित और उससे प्रभावित बूंदी शैली अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची।

१८वीं शती के मध्य में राजा उम्मेदसिंह के काल (१७४८-१७७१) में शैली में नवीन मोड़ आया, जिसमें भवनों की सभ्यता, प्रकृति की विविधता, पशु-पक्षियों तथा सतरंगे बादलों, जलाशयों आदि के चित्रण की बहुलता और नायक-नायिकाओं के शारीरिक सौन्दर्य की तीव्रता तथा तूलिका की सुघड़ता और स्निग्धता सहज ही परिलक्षित होती है। मुगल प्रभाव की झलक होते हुए भी शैली में अपनी मौलिकता और आकर्षण है। प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम का संग्रह तथा राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली का 'रसिकप्रिया' का अधूरा सैट इसी काल का है।[7]

---

१. देखिए, मोतीचन्द्र : बूंदी, मार्ग ११।२, पृ० ५०
२. राग दीपक और रागिनी भरवी, क्रमशः देखिए—भारत कला-भवन, बनारस, और नगरपालिका संग्रहालय, इलाहाबाद।
३. प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेंटिंग, पृ० २
४. वही, पृ० ३
५. भोलाशंकर व्यास : मधुमति—अप्रैल-जुलाई, १९६२ पृ० १४८
६. प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेंटिंग, पृ० ४
७. आदर्श बनर्जी : इलस्ट्रेशन्स टु दि रसिकप्रिया फ्रॉम बूंदी कोटा, ललित-कला अंक, ३-४, पृ० ६७

काव्य तथा कला आगे भी प्रगति करती रही। राव राजा विष्णुसिंह (१७७३-१८२१) अपने पिता की भाँति कला-मर्मज्ञ थे। "उनके स्वयं के रचित शृंगार एवं भक्तिपरक हजारों पद आज भी हस्तलेखों के रूप में उपलब्ध हैं। उन्होंने रीतिकालीन शृंगारपरकता के आधार पर अनेक ग्रन्थों का चित्रण करवाया।[1] १९वीं शती के प्रारम्भ में अंग्रेजों के कारण सारे देश में कम्पनी शैली का प्रभाव फैल रहा था। बूंदी भी उससे न बच सका।" यहाँ के राजा रामसिंह (१८२१-१८८९) कला के अनन्य प्रेमी थे। इन्होंने कितने ही चित्र बनवाये तथा स्वच्छन्द रचना के लिए कलाकारों को प्रोत्साहित किया।[2] इस काल की रचनाओं में नवीनता होते हुए भी पाश्चात्य प्रभाव अवश्य है। इस प्रभाव के कारण अन्य राजस्थानी शैलियों की भाँति बूंदी शैली का भी धीरे-धीरे पतन होने लगा। राजा रामसिंह के समय से ही रंगों में फीकापन, भावों में उथलापन, कल्पना में निर्जीवता और चित्रांकन में दारिद्र्य झलकने लगा था। १९वीं शती के मध्योपरान्त विख्यात बूंदी शैली का इतिहास प्रायः समाप्त हो गया।[3]

विशेषताएँ

प्रारम्भिक बूंदी शैली में नायक-नायिकाओं के अंग-प्रत्यंगों की बनावट और रंगों का सम्मिश्रण मेवाड़ शैली जैसा ही है। १७वीं शती के चित्रों में नारी के चेहरे की बनावट, फूल-पत्तियों की योजनाबद्धता, तारों भरे आकाश आदि का चित्रण दक्षिण शैली से तथा राजसी वैभव और विलास मुगल शैली से प्रभावित होते हुए भी अपनी निजी मौलिकता के कारण विशेष प्रसिद्ध रहा है।

बूंदी शैली की आकृतियाँ साधारणतः लम्बी, शरीर पतले और सस्फूर्ति दिखायी देते हैं। स्त्रियों के अधर अरुण, नासिका साधारण छोटी, मुख गोलाकृति, और चिबुक (पीछे की ओर झुकी) छोटी होती है। ग्रीवा छोटी और अलंकारों से आच्छादित, वक्ष आगे निकला, कंचुकी से कसा हुआ, कटि क्षीण तथा स्फूर्ति से भरी भाव-भंगिमा आदि शैली की अपनी विशेषताएँ हैं। पुरुषों की आकृति में नीचे की ओर झुकी पगड़ियाँ, लम्बे जामे, कमर में दुपट्टा तथा पैरों में चुस्त पाजामा रहता है। अनेक अलंकारों से युक्त नीलवर्ण या गौरवर्ण के पुरुष शैली में द्रष्टव्य हैं।[4]

शैली की दूसरी प्रमुख विशेषता है, प्रकृति का सुरम्य सतरंगा चित्रण। बूंदी

---

१. भोलाशंकर व्यास : मधुमति, अप्रैल-जुलाई, १९६२, पृ० १४८,
२. रामगोपाल विजयवर्गीय : राजस्थानी चित्रकला, पृ० ११
३. प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेंटिंग, पृ० ५
४. वही, फलक सं० ५, ७

का जैसा प्राकृतिक वैभव है उसके अनुकूल ही उसका चित्रण है। रंग-विरंगे बादलों से युक्त नीलाकाश, मयूर, गिलहरी, शुक, बगुला, हरिण, बन्दर, हाथी, सिंह आदि से युक्त प्राकृतिक परिवेश, सघन वन-उपवन में अनेक प्रकार के फल और फूलों से लदे हुए वृक्ष, लता, पौधे, कमलों से आच्छादित सरोवर, जिनमें केलि करते हुए हंस, वकुल और मछलियाँ, संक्षेप में प्रकृति का सौन्दर्य जितना विराट, विविध और रंजित बूंदी शैली में मिलता है वैसा किशनगढ़ शैली को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ है।[1]

शैली की तीसरी विशेषता है स्थापत्य का सुव्यवस्थित अंकन। गोल गुम्बदाकार और घुमावदार राजस्थानी छतरियाँ, आकाश की ओर उन्मुक्त स्वर्ण-कलश, छज्जों के नीचे से झाँकते वातायन, लाल पत्थर की विविध बेल-बूटों में काटी गयी जालियाँ, मणि-कुट्टिम से सुसज्जित दीवारें और प्रांगण, वैभव और विलास का पूर्ण साम्राज्य, रेशमी पर्दे और गद्दे, चिकों के भीतर से झाँकती रीतिकालीन सज्जा आदि बूंदी शैली में कलात्मकता एवं सूक्ष्मता से चित्रित की गयी है।[2]

बूंदी शैली में रंगों का सतरंगा प्रयोग है किन्तु फिर भी श्वेत, गुलाबी, सुनहरी, लाल, हिंगलु, हरा आदि रंगों का वहुलता से प्रयोग हुआ है।[3]

विषय

राग-रागिनी, नायिका-भेद, ऋतु-वर्णन, बारहमासा, कृष्णलीला, दरबार, शिकार, हाथियों की लड़ाई, उत्सव आदि शैली के चित्रण के प्रमुख विषय रहे हैं। वल्लभ कुल की प्रधानता के कारण कृष्णलीला का चित्रण विशेष हुआ है। 'रसिकप्रिया', 'विहारी सतसई', 'रसराज' तथा अन्य कृष्णलीला सम्बन्धी स्फुट पदों का चित्रण शैली में बहुलता से हुआ है। 'कृष्णलीला' की कुछ ऐसी कृतियाँ भी चित्रकारों की तूलिका से निकलीं जो किसी कविता के आधार पर न होकर स्वयं भी कविता का विषय थीं।[4]

कोटा शैली

कोटा शैली सन् १९५२ से प्रकाश में आयी। कर्नल टी० जी० गेयर एण्डर्सन ने अपना निजी संग्रह विक्टोरिया एण्ड अल्बर्ट म्यूजियम, लन्दन, को भेंट किया तो

---

१. देखिए, प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेंटिंग, सं० २, ४, ५, ७ तथा परिशिष्ट, चित्र सं० ८, ९
२. देखिए, एन० एस० मेहता : दि गोल्डन फ्ल्यूट, फलक सं० ५, तथा प्रस्तुत परिशिष्ट, चित्र सं० ८, ९
३. देखिए, रामगोपाल विजयवर्गीय : राजस्थानी चित्रकला, पृ० १२
४. „ वही, पृ० १४

कुछ चित्र बूंदी शैली से भिन्न पाये गये जिनके आधार पर कोटा राज्य में पोषित चित्रशैली का ज्ञान हुआ। चित्रकला के उत्कर्ष की दृष्टि से कोटा शैली बूंदी शैली की ही प्रशाखा मानी जा सकती है, किन्तु अपनी मौलिक एवं उत्कृष्ट दाय के कारण उसका अस्तित्व अलग ही स्वीकार किया जाना चाहिए।

विकास

बूंदी राज्य के शासक राव रतन के द्वितीय पुत्र माधोसिंह हाड़ा से प्रसन्न होकर शाहजहाँ ने कुछ परगने उसे अलग जागीर स्वरूप दिये, जिसके फलस्वरूप सन् १६३१ में कोटा के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना हुई। कोटा शैली का स्वतन्त्र इतिहास भी राज्य की स्थापना के उपरान्त से ही माना जाना चाहिए, किन्तु उपलब्ध सामग्री के आधार पर १७वीं शती के अन्त से इसका उद्भव माना जाता है।[१] इससे पूर्व की चित्रकला और बूंदी के चित्रों में भेद करना कठिन है। कोटा शैली का स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित करने का श्रेय राजा रामसिंह (१६९६-१७०५) को है, जिन्होंने कला को संरक्षण देकर नवीन मार्ग प्रदर्शित किया। उनके समय के अनेक चित्र उपलब्ध हैं,[२] जिन पर बूंदी शैली का प्रभाव होते हुए भी कोटा शैली की प्रमुख छाप है। राजा रामसिंह के उपरान्त महारावल भीमसिंह (१७०५-१७२०) ने कोटा राज्य में कृष्ण-भक्ति (वल्लभ सम्प्रदाय) को विशेष महत्त्व दिया। उन्होंने वाराँ में साँवला जी का मन्दिर बनवाकर अपने महल और राजधानी को भगवान के चरणों में अर्पित कर दिया तथा अपना नाम 'कृष्णदास' धारण किया और कोटा का नाम 'नन्दग्राम' तथा शेरगढ़ का 'बरसाना' रखकर कोटा साम्राज्य को ब्रजभूमि बना दिया।[३] कलाओं पर इसका गहन प्रभाव पड़ा। उनके समय के चित्रों में कृष्ण-चरित्र का अंकन बहुलता से मिलता है। महारावल भीमसिंह के उपरान्त रावल अर्जुनसिंह (१७२०-१७६४) ने भी कृष्ण-चरित्र के चित्रण की परम्परा को सुरक्षित रखा। उनके समय के अनेक चित्र राजकीय संग्रहालय कोटा में देखे जा सकते हैं। सन् १७६० का सचित्र भागवत् जो मेवाड़ शैली का माना जाता है, के बारे में अनेक विद्वानों का मत है कि वह कोटा-बूंदी शैली का सचित्र ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ ११९० पृष्ठों का है और उसमें छोटे-बड़े ४७६० सुन्दर कलात्मक चित्र हैं।[४]

सन् १७७१ से कोटा की चित्रकला में एक विशेष मोड़ आया, जिसका श्रेय

---

१. देखिए, डब्ल्यू० जी० आर्चर : कोटा, मार्ग-११, अंक-२, पृ० ६५
२. ,, नगरपालिका संग्रहालय, इलाहाबाद।
३. ,, फाल्गुन गोस्वामी : राजस्थान में पुष्टिमार्ग, शोध-पत्रिका, भाग-११, अंक-२, पृ० ७८
४. देखिए, कुं० संग्रामसिंह के निजी संग्रह के अनेक चित्र।

वीर, शिकारी एवं कला-प्रेमी राजा उम्मेदसिंह (१७७१-१८२०) को है। वह शिकार का विशेष प्रेमी था। कोटा के गहन जंगलों में शेर, चीता, सूअर, हरिण आदि जंगली पशुओं का बाहुल्य रहा है। उम्मेदसिंह के समय से चित्रकारों ने शिकार के चित्रण में विशेष रुचि दिखलायी जिसके कारण कोटा शैली शिकार सम्बन्धी चित्रों के लिए विशेषतः प्रसिद्ध हो गयी।[1]

पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं कि कोटा पुष्टि सम्प्रदाय का गढ़ रहा है और राधा-कृष्ण की लीलाओं के अंकन को वहाँ के कला-प्रेमी राजाओं ने अधिक प्रश्रय दिया है। राजमहल के दरबार हाल के अधिकांश भित्तिचित्र कृष्ण-लीलाओं पर आधारित हैं तथा बड़े महल में सैकड़ों लघुचित्रों में से अनेक कृष्ण-चरित्र सम्बन्धी हैं। १९वीं शती के प्रारम्भ के दो सचित्र ग्रन्थ पुष्टि सम्प्रदाय के महत्त्व को प्रदर्शित करते हैं। ४५ पृष्ठों का उनमें से एक ३८ सुन्दर चित्रों से सुसज्जित 'वल्लभोत्सव-चन्द्रिका' ग्रन्थ है,[2] जिसमें श्री वल्लभाचार्य, उनके ७ पुत्र, ७ स्वरूप, १२ मास के विभिन्न उत्सवों आदि का कलात्मक चित्रण हुआ है। दूसरा 'गीता-पंचमेल' भी ऐसा ही कलात्मक ग्रन्थ है जिसमें राधाकृष्ण तथा स्वरूप सम्बन्धी ६ चित्र अंकित हैं।

कोटा शैली के चित्रण की यह परम्परा रावल रामसिंह के (१८२२-१८६६) के समय में भी प्रसार पाती रही, किन्तु १८५७ के गदर के उपरान्त अंग्रेजी प्रभाव. ने कोटा शैली के चमत्कार को अन्य शैलियों की भाँति पतनोन्मुख बना दिया।

विशेषताएँ

कोटा शैली में बूंदी शैली की झलक होते हुए भी कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो उसके मौलिक स्वरूप को स्थापित करती हैं। वल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव होने के कारण नर-नारियों के अंग-प्रत्यंगों का अंकन गोस्वामियों और पुजारियों की भाँति पुष्ट है। भारी और गठीला शरीर, दीप्तियुक्त चेहरा, मोटे नेत्र आदि कोटा शैली में विशेष रूप से मिलते हैं। कोटा में गहन जंगल हैं इसलिए शिकार के चित्रों में जंगली वातावरण का विशेष अंकन हुआ है। हरे, लाल और सुनहरी रंगों का प्रयोग कोटा के चित्रों में देखते ही बनता है। इस शैली में चित्रित पशुओं में शेर, चीता, हरिण, शूकर आदि प्रमुख हैं।

मारवाड़ शैली

यह शैली भी मेवाड़ शैली की भाँति अपनी प्राचीनता के लिए प्रसिद्ध है,

---

१. देखिए, राजकीय संग्रहालय, कोटा, सं० १९५०-११३८

२. ,, सरस्वती-भंडार, कोटा, ग्रन्थ सं० १९५-३४५४

किन्तु मारवाड़ शैली पर विशेष शोधकार्य नहीं हुआ। प्राचीन मारवाड़ एवं राठौड़-वंशी जोधा द्वारा स्थापित जोधपुर राज्य और वहाँ के विभिन्न ठिकानों में पल्लवित होनेवाली चित्रकला मारवाड़ या जोधपुर शैली के नाम से जानी जाती है।

विकास

मेवाड़ की भाँति मरुप्रदेश ने भी अजन्ता शैली की परम्परा का निर्वाह किया है। वहाँ भी अजन्ता-परम्परा लगभग उसी समय में पहुँची, जिस समय वह मेवाड़ की ओर प्रस्थित हुई।[१] इसका पूर्वरूप मंडोर के द्वार की कला से आँका जा सकता है।[२] तिब्बती यात्री तारानाथ ने ७वीं शती में मरुप्रदेश में 'श्रृंगधर' नामक चित्रकार का उल्लेख किया है,[३] जिससे ज्ञात होता है कि मारवाड़ में चित्रकला की पूर्व परम्परा रही है। यह परम्परा अनवरत रूप से वृद्धि पाती रही। जैन प्रभाव अत्यधिक होने के कारण १००० ई० से १५०० ई० तक के अनेक ताड-पत्रीय एवं भोजपत्रीय जैन ग्रन्थ इसी परम्परा के इतिहास का बोध कराते हैं।[४]

मारवाड़ की सांस्कृतिक परम्परा एवं कलात्मक परिवेश को नया रूप देने का श्रेय मालवदेव को है। राजा मालवदेव (१५३२-६८) से पूर्व मारवाड़ शैली पर मेवाड़ शैली का पूर्ण प्रभाव रहा था, किन्तु मालवदेव ने अपनी वीरता, विद्वत्ता एवं दूरदर्शिता के द्वारा मारवाड़ का फिर से स्वतन्त्र स्वरूप स्थापित कर कला को विकसित किया। प्रारम्भिक कला की दृष्टि से उसके समय का प्रसिद्ध 'उत्तराध्ययन सूत्र' जो बड़ौदा म्यूजियम में सुरक्षित है, बहुत महत्त्व रखता है। चोखेला महल के भित्तिचित्रों में भी तत्कालीन चित्रण का स्वरूप देखने को मिलता है।

१७वीं शती के प्रारम्भ में मारवाड़ शैली के अनेक चित्र बने, जिनमें मुगल प्रभाव की छाप होते हुए भी मौलिकता उल्लेखनीय है। राजा सूरसिंह के समय (१५९५-१६२०) के अनेक चित्र आर्ट एण्ड पिक्चर गैलेरी बड़ौदा में[५] तथा

---

१. डॉ० गोपीनाथ शर्मा : भारतीय चित्रकला और राजस्थान, ललित-कला अकादमी, वार्षिकी-६३, पृ० २४
२. देखिए, कुमारस्वामी : हिस्ट्री ऑफ इण्डियन आर्ट, पृ० ८६-८७
३. „ ताराचन्द : तारानाथ एण्ड बुद्ध आर्ट, मार्ग-भाग-४, अंक-१, पृ० ६३
४. देखिए, पुस्तक प्रकाश, जोधपुर तथा जैसलमेर के जैन भंडारों में उपलब्ध अनेक कल्पसूत्र एवं अन्य ग्रन्थ।
५. देखिए, ओ०/सी० गांगुली : क्रिटिकल कैटलाग ऑफ मिनियेचर पेंटिंग्स इन दि बड़ौदा म्यूजियम, पृ० ६७-८०

कुँ० संग्रामसिंह के निजी संग्रहालय में उपलब्ध हैं। सूरसिंह कला-प्रेमी राजा था। उनके समय के कलापूर्ण ऐतिहासिक सचित्र ग्रन्थों में 'ढोलामारू' तथा 'भागवत्'[1] का प्रमुख स्थान है। सन् १६१० में चित्रित यह 'भागवत् पुराण' मारवाड़ की अनेक स्थानीय विशेषताओं से युक्त है। १७वीं शती के मध्य में अंकित जोधपुर शैली के सूरसागर के पदों पर आधारित कुछ लघु चित्र बड़ौदा म्यूजियम[2] तथा कुँ० संग्रामसिंह[3] के पास संग्रहीत हैं, जिनमें काव्य के भाव को कलाकारों ने चतुराई से अंकित किया है। रसिकप्रिया का चित्रण[4] भी इसी समय में हुआ, जिसमें रंगों की चटकता और वस्त्राभूषणों का अभिजात्य विशेष उल्लेखनीय है।

राजा जसवन्तसिंह विद्वान एवं कला-प्रेमी थे। उनके समय में मारवाड़ कृष्ण-भक्ति परम्परा का गढ़ रहा, इसलिए कृष्ण-चरित्र को आधार बनाकर बहुलता से चित्र बने। १९वीं शती में मारवाड़ पर नाथ सम्प्रदाय का विशेष प्रभाव रहा। राजा मानसिंह के गुरु अयासजी देवनाथ थे।[5] जिनके अनेक मठों में चित्रकला परिपोषित और सुरक्षित हुई। इसी समय के मतिराम के 'रसराज' पर आधारित ६३ चित्र नाथ सम्प्रदाय के किसी मठ से ही प्राप्त हुए हैं, जो रामगोपाल विजयवर्गीय, कुँ० संग्रामसिंह[6] के निजी संग्रह तथा राजीकय संग्रहालय, जयपुर[7] में उपलब्ध हैं।

१९वीं शती के मध्योपरान्त से अन्य राजस्थानी शैलियों की भाँति मारवाड़ या जोधपुर शैली भी फोटोग्राफी के प्रभाव के कारण पतनोन्मुख होने लगी। १७वीं शती से १९वीं शती तक के काल में मारवाड़ शैली में अनेक चित्र अंकित हुए हैं जो पुस्तक प्रकाश, जोधपुर, महाराजा जोधपुर, कुँ० संग्रामसिंह, पिक्चर एण्ड आर्ट गैलेरी बड़ौदा आदि के संग्रह में उपलब्ध हैं, जिनके आधार पर मारवाड़ शैली का सही मूल्यांकन किया जा सकता है।

विशेषताएँ

मेवाड़ शैली का विशेष प्रभाव होने के बावजूद भी मारवाड़ शैली की अपनी निजी विशेषताएँ हैं, जिनके कारण उसका अलग संविधान प्रकाश में आता है।

---

१. देखिए, पुस्तक प्रकाश, जोधपुर
२. ,, पिक्चर एण्ड आर्ट गैलेरी बड़ौदा, चित्र सं० पी० जी० ५ ए, २१-२२
३. ,, प्रस्तुत ग्रन्थ, चित्र संख्या ४
४. ,, पिक्चर एण्ड आर्ट गैलेरी बड़ौदा, चित्र सं० पी० जी, ५ ए, २८, ४०
५. ,, हरमन ग्वेत्स : मारवाड़, मार्ग-११, अंक-२, पृ० ४६
६. ,, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट, चित्र संख्या १४
७. ,, वही, चित्र संख्या १२-१३

इस शैली के पुरुष गठीले बदन के होते हैं। उनके गुलमुच्छ, ऊँची पगड़ी, राजसी वैभव के वस्त्राभूषण आदि का अंकन विशेष रूप से हुआ है। स्त्रियों के अंग-प्रत्यंगों का अंकन भी गठीला है।[1] उनकी वेशभूषा में ठेठ राजस्थानी लहँगा, ओढ़नी और लाल फूंदने का प्रयोग प्रमुख रूप से हुआ है। स्थानीय प्रभाव के अतिरिक्त मुगल प्रभाव भी शैली में उल्लेखनीय है। लाल और पीले रंगों का प्रयोग, लोक-कला का प्रभाव, सामन्ती जीवन के अतिरिक्त सामान्य जन-जीवन का चित्रण आदि मारवाड़ शैली की कुछ विशेषताएँ हैं। राजा, रानी, सामन्त, राजसी वैभव, सवारी, महल आदि के अतिरिक्त मजदूर, किसान, माली, भिश्ती, ग्वाला आदि का अंकन भी मारवाड़ शैली में हुआ है।

किशनगढ़ शैली

राजस्थानी चित्रकला में किशनगढ़ शैली का विशिष्ट स्थान है। अजमेर के पास अवस्थित भूतपूर्व छोटी-सी स्टेट किशनगढ़ के राजदरबार में पोषित चित्रशैली किशनगढ़ शैली के नाम से प्रख्यात है, जिसको प्रकाश में लाने का श्रेय विद्वान 'ऐरिक डिकिन्सन' और डॉ० फैयाजअली को है।[2]

विकास

किशनगढ़ राज्य की नींव जोधपुर राज्य के राठौरवंशी राजा उदयसिंह के आठवें पुत्र किशनसिंह ने सन् १६०९ में डाली। जोधपुर राज्य तथा मुगल दरबार से सम्बन्धित होने के कारण यहाँ के राजा राजसी वैभव और कलात्मक जीवन से पूर्ण परिचित थे।[3] मारवाड़ शैली की उन्नत शाखा किशनगढ़ शैली ने एक शतक उपरान्त राजा सावन्तसिंह (१६९९-१७६४) के समय में अपने उत्कर्ष पर पहुँचकर राजस्थानी चित्रकला में अपना मौलिक एवं उत्कृष्ट स्थान बना लिया। पीढ़ी के पाँचवें राजा रूपसिंह (१६४३-१६५८) ने सामरिक कठिनाइयों के कारण रूपनगर को अपनी राजधानी बनाया, जो राजा सावन्तसिंह के समय तक रही। राजा रूपसिंह विद्याप्रेमी और भक्त हृदय थे। "उन्होंने अपने पूर्वजों की भाँति वल्लभकुल सम्प्रदाय की दीक्षा ली तथा राधाकृष्ण की

---

१. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट, चित्र संख्या ४

२. „ ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेंटिंग तथा डॉ० फैयाजअली : भक्तवर नागरीदास, (अप्रकाशित शोध-ग्रन्थ, राजस्थान, वि० पुस्तकालय, जयपुर)।

३. राजा किशनसिंह मुगल दरबार में गये जहाँ उन्हें १००० पैदल और ५०० घुड़सवारों का मनसब जहाँगीर द्वारा प्रदान किया गया (ऐरिक डिकिन्सन, किशनगढ़ पेंटिंग, पृ० ५)।

भक्ति को अपने जीवन और मोक्ष का साध्य समझा। सामयिक चित्रकारों ने अपने स्वामी की प्रसन्नता के लिए राधामाधव की लीलाओं को चित्रण द्वारा साकार करना प्रारम्भ किया।"[१] रूपसिंह के उपरान्त राजा मानसिंह (१६५८-१७०६) गद्दी पर बैठे। वे स्वयं कवि और कलामर्मज्ञ थे। प्रसिद्ध कवि वृन्द से इन्होंने कविता का अभ्यास किया। वैष्णव भक्त होने के नाते भक्ति सम्बन्धी विषयों में इनकी विशेष रुचि थी। ये चित्रविद्या में भी रुचि रखते थे। "कृष्णगढ़ कपड़-भण्डार में कुछ चित्र इनके समय के विद्यमान हैं।"[२] यहाँ की चित्रकला के विकास में इसके पुत्र राजसिंह (१७०६-१७४८) का प्रमुख योग रहा। "राजसिंह परमवीर, धर्मपरायण, कला रसिक एवं स्वयं चित्रकार थे। इन्होंने ३३ ग्रन्थ रचे, जिनका प्रभाव समकालीन अन्य कलाओं पर भी पड़ा।"[३] इसी समय से कुँवर पदी पर आरूढ़ राजा सावन्तसिंह (भक्तवर नागरीदास, जन्म १६९९) पर उनके पिता का पूर्ण प्रभाव पड़ा। उनकी शिक्षा-दीक्षा पिता-रुचि के अनुसार कलात्मक वातावरण में हुई। उन्होंने संस्कृत एवं संगीत का भी अभ्यास किया। किशनगढ़ दरवार के निजी संग्रह में उपलव्ध चार रेखाचित्र इस कथ्य के साक्षी हैं।[४]

काव्य के प्रति राजा सावन्तसिंह की रुचि प्रारम्भ से ही थी। सन् १७२३ से १७३१ तक उन्होंने मनोरथ मंजरी, रसिक रत्नावली और विहारी चन्द्रिका की रचना कर कृष्ण-भक्ति काव्य के वैभव में विशेष योगदान दिया।[५] अपने पूर्वजों की भाँति वे भी वल्लभ सम्प्रदाय में अपने गुरु श्री रणछोड़जी द्वारा दीक्षित थे।[६] राज्य वैभव के प्रति उदासीन होकर उन्होंने काव्य, चित्रण और संगीत द्वारा अपने-आपको कृष्ण-भक्ति पर न्योछावर कर दिया। इनके कलात्मक व्यक्तित्व ने किशनगढ़ शैली को एक नवीन मोड़ दिया।

१८वीं शती के मध्य में वने चित्र एक ही शैली में प्राप्त होते हैं, जिनमें राधा-कृष्ण के माधुर्य भाव को नवीन रूप में चित्रित किया गया है। उपर्युक्त शैली को उत्कृष्ट रूप प्रदान करने का श्रेय तीन व्यक्तियों को है—उनमें से प्रथम है कवि, चित्रकार, भक्त और कला-प्रेमी राजा 'सावन्तसिंह' जिनके आश्रय में उपर्युक्त कला उत्कर्ष को प्राप्त हुई, द्वितीय उनकी प्रिया

---

१. रामगोपाल विजयवर्गीय : राजस्थानी चित्रकला, पृ० २
२. डॉ० फैयाज अली : भक्तवर नागरीदास, पृ० ३८
३. वही, पृ० ३९
४. एक रेखाचित्र कुँ० संग्रामसिंह जयपुर के निजी संग्रह में
५. ऐरिक डिकिन्सन, किशनगढ़ पेंटिंग, पृ० ७
६. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ अध्याय—३

पासवान 'वणीठणी'[1] जो अपने अद्वितीय रूप और सौन्दर्य के कारण तत्कालीन राधा के चित्रण की आदर्श (माडल) बनी। कवयित्री और कला-प्रेमिका 'वणीठणी' पर सावन्तसिंह मुग्ध थे। उसके रूप-सौन्दर्य को राधा का प्रतीक मानकर उन्होंने काव्य और चित्रकला के माध्यम से पूजा की। इसी कारण से अचानक १८वीं शती के मध्य में अन्य राजस्थानी शैलियों तथा पूर्ववर्ती किशनगढ़ शैली से भिन्न नारी और पुरुष आकृतियों के चित्रण में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया, जो किशनगढ़ शैली का आदर्श बन गया। तीसरा व्यक्तित्व सावन्तसिंह का दरबारी चित्रकार' मोरध्वज निहालचन्द'[2] जिसके बनाये हुए सैकड़ों चित्र इस शैली के प्राण हैं।[3]

नागरीदास के काव्य को आधार बनाकर 'वणीठणी' के रूप-सौन्दर्य को चित्रित करने का श्रेय निहालचन्द की रंजक एवं सूक्ष्म तूलिका को है। निहालचन्द के पितामह सूरध्वज मूलराज दिल्ली से आकर राजा मानसिंह के दीवान हुए।[4] निहालचन्द द्वारा चित्रित नागरीदास के काव्य का चित्रण सन् १७३५ से १७५७ के बीच का है। नागरीदास के वृन्दावन-वास के उपरान्त भी मुसव्विर निहालचन्द का चित्रांकन राज्य में चलता रहा, किन्तु परवर्ती चित्रण में वह काव्यात्मक जादू प्रायः पतनोन्मुख हो गया।

दीवान सूरध्वज मूलराज के वंशजों ने किशनगढ़ की चित्रकला को महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, जिनमें सीताराम और बदनसिंह का नाम भी उल्लेखनीय है।[5] अमरू और सूरजमल का चित्रण भी सावन्तसिंह के समय का ही है। सावन्तसिंह के भाई बहादुरसिंह के राज्यकाल में नानकराम चितेरे ने भी अनेक चित्र बनाये। राजा बिड़दसिंह (१७८२-१७८८) के समय नानकराम के वंशज रामनाथ तथा जोशी सवाईराम का कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है। राजा कल्याणसिंह के राज्यकाल (१७९८-१८३८) में लाड़लीदास नामक चित्रकार ने किशनगढ़ शैली के विकास में विशेष योगदान दिया। शैली के प्रसिद्ध 'गीत-गोविन्द'[6] का चित्रण भी इसी समय (१८२०) में हुआ। किशनगढ़ शैली की वह

---

१. विशेष जानकारी हेतु देखिए, डॉ० फैयाजअली (नागरीदास और वणीठणी) भक्तवर नागरीदास, पृ० २४३-५४
२. ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेंटिंग, फलक सं० २ और ४
३. अधिकतर चित्र महाराजा किशनगढ़ के निजी संग्रह में ही उपलब्ध हैं। १२ गोपियों का पटचित्र लगभग सन् १७७५ का आर्ट एण्ड पिक्चर गैलेरी बड़ौदा में द्रष्टव्य।
४. ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेंटिंग, पृ० १५
५. इनके चित्र किशनगढ़ दरबार के निजी संग्रह में उपलब्ध हैं।
६. देखिए, किशनगढ़ दरबार के निजी संग्रह में २२ लघु चित्र।

अलौकिकता धीरे-धीरे विलीन होने लगी और उसका विकृत स्वरूप सामने आने लगा जो १९वीं शती में पृथवीसिंह के समय (१८४०-१८८०) के चित्रों में विशेष रूप से दिखायी पड़ता है। इसके उपरान्त किशनगढ़ शैली धीरे-धीरे पतनोन्मुख हो गयी और अपना अमर इतिहास पीछे छोड़ गयी।

विशेषताएँ

किशनगढ़ शैली की कुछेक ऐसी विशेषताएँ हैं जो इसे विभिन्न शैलियों से अलग ही नहीं वरन् उच्च आसन पर आरूढ़ करती हैं। नर-नारियों के अंग-प्रत्यंगों का अलौकिक अंकन, प्रकृति के विराट रंगमंच का रँगीला चित्रण, रंगों का मिश्रित वैभव, राधाकृष्ण सम्बन्धी विषय का अनूठा और काव्यात्मक अंकन आदि विशेपताएँ उपर्युक्त शैली में अपना महत्त्व रखती हैं।

पुरुषाकृति में लम्बा छरहरा नीलछवि युक्त शरीर, जटाजूट की भाँति ऊपर उठी हुई मोती की लड़ियों से युक्त श्वेत या मूँगिया पगड़ी, समुन्नत ललाट, लम्बी नासिका, मधुर स्मित से युक्त हिंगुली पतले अधर, और खंजनाकृत कर्णान्त तक खिंचे हुए विशाल अरुणाभ नयन किशनगढ़ शैली की अपनी निजी विशेषताएँ हैं। सारे मुखमण्डल में नेत्र इतने प्रमुख रहते हैं कि दर्शक की प्रथम दृष्टि वहीं पर मंडराने लगती है। नुकीली चिबुक, लम्बी सुराहीदार गर्दन, आजानु भुजाएँ, गोल और सुकुमार लम्बी अंगुलियाँ, पतली कमर, पैरों तक झूलता पारदर्शक जामा तथा अलंकारों और फूलों से आवेष्टित सारा शरीर किशनगढ़ शैली में अनोखा है।

नारी आकृति में भी प्रायः उपर्युक्त ही नारी सुलभ लावण्य दर्शनीय है। गौरवर्ण, बाँके कज्जल से युक्त वही विशाल मोहक नयन, कपोलों को आच्छादित करती हुई लम्बी अलकें, अर्धविकसित किन्तु उन्नत और खिंचा हुआ वक्षस्थल, लहँगा, कंचुकी और ओढ़नी से लिपटा तथा अलंकारों और फूलों से सुसज्जित शरीर, सुकोमल हाथ में एक दो अर्धमुकुलित कमल की कलियाँ, राधा के बहाने, 'वणीठणी' के रूप-यौवन को उजागर करते हैं। किशनगढ़ शैली में काव्य में कल्पित रूप-यौवन तथा मांसल सौन्दर्य का चित्रांकन जादूभरा है।[1]

किशनगढ़ शहर तथा रूपनगढ़ का प्राकृतिक परिवेश जिस प्रकार झीलों, पहाड़ों, उपवनों और विभिन्न पशु-पक्षियों से युक्त है उसके अनुकूल ही उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण भी शैली में अनोखा हुआ है। दूर-दूर तक फैली हुई झील, झील में केलि करते हंस, बत्तख, जलमुर्गाबी, सारस, वक आदि और तैरती हुई नौकाएँ, नौकाओं में प्रेमालाप करते राधा और कृष्ण का अंकन अनोखा है।

---

१. देखिए, ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेंटिंग, फलक सं० ४

उच्च अट्टालिकाएँ, कुंजों से झाँकती श्वेत मुडेरें, फव्वारे, केले के वृक्षों से घिरे दृश्य (लैण्डस्केप) तथा कमल दलों से ढके जलाशय आदि सब कुल मिलाकर किशनगढ़ शैली को मोहक बना देते हैं। प्रकृति के विस्तृत प्रांगण को चित्रित करने का श्रेय किशनगढ़ शैली को ही है। यही चित्रण बूंदी शैली में सीमित क्षेत्र में हुआ है। चाँदनी रात में राधा-कृष्ण की केलिक्रीड़ा, प्रातःकालीन और सान्ध्य-कालीन वादलों का रँगीला चित्रण शैली में हुआ है।

किशनगढ़ शैली में रंगों का अपना खेल है। राधा-कृष्ण के सुकोमल भावों को चित्रित करने के लिए यहाँ के कलाकारों ने अधिकतर हल्के रंगों का प्रयोग किया है। यहाँ के प्रमुख रंग सफेद और गुलाबी हैं। सलेटी और सिन्दूरी रंगों का प्रयोग भी बहुलता से हुआ है। वैसे सभी रंगों का जादू शैली में द्रष्टव्य है। हाशिये (बोर्डर) में गुलाबी, हरे रंगों के खतों का वाहुल्य है।

विषय

वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने के कारण अधिकतर राजाओं के समय में राधा-कृष्ण की प्रेम-लीलाओं का चित्रण ही अधिक हुआ है। भागवत पुराण, गीत-गोविन्द, रसिकप्रिया, नागरीदास के विभिन्न पद तथा वैभव-विलास और अन्य स्वच्छन्द शृंगारी भाव शैली के चित्रण के आधार रहे हैं। अन्य शैलियों की भाँति शिकार, उत्सव होली, दीपावली, दरबार आदि विषयों पर भी अनेक चित्र निर्मित हुए हैं। 'वणीठणी' के रूप-सौन्दर्य का चित्रांकन शैली का विशेष आकर्षण रहा है। आश्चर्य की बात है कि राग-रागनियों का चित्रण किशनगढ़ शैली में अनुपलब्ध है।

बीकानेर शैली

सुदूर मरुप्रदेश में राव बीकाजी द्वारा स्थापित बीकानेर राज्य अनेक बाल-प्रभावों के उपरान्त भी कलात्मक दाय की दृष्टि से अपना मौलिक स्थान रखता है।[1] सामग्री की अनुपलब्धता के कारण बीकानेर की चित्रकला का प्रारम्भ १७वीं शती के मध्य से माना जाता है। महाराजा अनूपसिंह (१६७५) से इस शैली का निश्चित स्वरूप उपलब्ध होता है।[2] वे अत्यधिक कलामर्मज्ञ तथा रसिकजन थे। उनकी साहित्यिक, सांस्कृतिक और कलात्मक देन बीकानेर की कला के इतिहास में स्वर्णिम पृष्ठ जोड़ती है। चित्रकला के प्रति तो उनकी इतनी

---

१. हरमन ग्वेत्स : दि आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ बीकानेर स्टेट, पृ० १७
२. मोतीचन्द्र खजांची : बीकानेर की चित्रकला, राजस्थान भारती, भाग-५, अंक-१, पृ० ५२

अभिरुचि थी कि दिल्ली, लाहौर आदि स्थानों से उन्होंने अनेक चित्रकारों को बुलाकर अपने दरबार में सम्मान दिया। वे चित्रकार मुगल शैली में पारंगत थे, किन्तु बीकानेर में आकर उन्होंने हिन्दू कथाओं तथा संस्कृत, हिन्दी-काव्यों को आधार बनाकर जो चित्र बनाये वे राजपूती सभ्यता और संस्कृति से मिश्रित होकर बीकानेर शैली के उत्कृष्ट चित्र कहलाये। अनेक चित्रकारों ने उपर्युक्त विकसित बीकानेरी शैली को प्रोत्साहित किया जिनमें उस्ताद रुक्नुद्दीन, नूरुद्दीन, उस्ताद हसन, उस्ताद अहमद, मुराद हसन, रजाक आदि का नाम उल्लेखनीय है।[1] मुगलकला के ह्रास एवं औरंगजेब की कलाओं के प्रति कठोर नीति के कारण मुगल दरबार के प्रसिद्ध कलाकार रियासतों में प्रश्रय पाने लगे। "महान् मुगलों के शासनकाल में जिस नूतन, सम्मिश्रित भारतीय संस्कृति का उद्भव हुआ था, अब इन राजदरबारों में उसी का पुनः समन्वय और विकास होने लगा।"[2] बीकानेर की तत्कालीन (१६८०-१६९५) चित्र शैली पर शाहजहाँ-कालीन मुगलकला का प्रभाव विशेष रूप से झलकता है। इसमें अनूपसिंह के दरबारी मुसव्विर उस्ताद रुक्नुद्दीन का योगदान अविस्मरणीय है।

१८वीं शती में बीकानेर शैली में दूसरा मोड़ आया। अनूपसिंह के समय में मुगल प्रभाव अधिक था तथा इस समय के चित्रों में किशनगढ़ शैली की विशेषताओं का सम्मिश्रण हुआ है। इस काल के चित्रकारों में उस्ताद कायम, कासिम, अबूहमीद और शाहमुहम्मद का नाम बहुत प्रसिद्ध है। रसिकप्रिया, रागरागिनी, बारहमासा, कृष्णलीला आदि से सम्बन्धित चित्रांकन इन्हीं कलाकारों की तूलिका की देन है।[3]

भित्तिचित्रों की राजस्थानी परम्परा को बीकानेर ने आगे बढ़ाया। बीकानेर किले के महल, लालगढ़ पैलेस आदि के भीत्तिचित्रों तथा कलात्मक कपाटों पर राधा-कृष्ण की छवि का अंकन इस कथन का साक्षी है।[4] बीकानेर शैली के बारे में अभी तक विशेष शोध-सामग्री अनुपलब्ध है, अतः इस सम्बन्ध में विस्तार से कुछ कहना कठिन है।

विशेषताएँ

मुगल शैली की सभी विशेषताएँ इन चित्रों में उपलब्ध होने के कारण इसे

---

१. मोतीचन्द्र खजांची : बीकानेर की चित्रकला, राजस्थान भारती, भाग-५, पृ० ५३
२. डॉ० रघुवीरसिंह : पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ० १७६
३. देखिए, महाराजा बीकानेर का निजी संग्रह
४. बीकानेर के महाराजा द्वारा प्रदत्त : एक कपाटजोड़ी राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में द्रष्टव्य।

प्रान्तीय मुगल शैली का उपरूप भी मानते हैं, किन्तु इकहरी तन्वंगी मृगनयनी कोमल ललनाओं का अंकन, नीले, हरे और लाल रंगों का प्रयोग, शाहजहाँ और औरंगजेब शैली की पगड़ियाँ, ऊँट, हिरन, आदि का चित्रण तथा बीकानेरी रहन-सहन और राजपूत संस्कृति की छाप हमें उसे अलग शैली मानने को प्रेरित करती है। किशनगढ़ शैली के समान लम्बी तन्वंगी नायिकाएँ, खंजन पक्षी से तीखे नेत्र, तंग कंचुकी, घेरदार घाघरे, भेड़, बकरी, ऊँट, कुंज, सारस आदि का चित्रण १८वीं शती की बीकानेर चित्रकला में अधिकता से मिलता है। इसके बाद की बीकानेरी शैली के चित्रों में गोलाकार श्वेत बादलों की छटा, बालू के टीबों का अंकन, चीनी और ईरानी चित्रकला के प्रभाव से युक्त मेघमण्डल और पहाड़ों की छटा तथा फूल-पत्तियों का आलेखन उल्लेखनीय है।[1]

जयपुर शैली

जयपुर के राजसी दरबार और सामन्ती वर्ग में परिपोषित हुई चित्रकला जयपुर शैली के नाम से विख्यात है। महाराजा सवाई जयसिंह (१६९९-१७४३) के जयपुर नगर बसाने से पूर्व कछावा वंश की राजधानी आम्बेर थी, इसलिए ऐतिहासिक दृष्टि से जयपुर शैली को 'कछावा शैली'[2] या 'अम्बर शैली'[3] विरासत में मिली।

विकास

अम्बर या कछावा शैली के चित्रण के बहुत कम उदाहरण उपलब्ध हैं और जो हैं उन पर भी मुगल शैली का प्रभाव अधिक है। १६वीं शती के मध्य में राजस्थान के राजा लोग अकबर की अधीनता स्वीकार करने लग गये थे। उसने सन् १५६२ में सबसे पहले राजा भारमल की पुत्री से विवाह करके राजस्थान के राजघरानों से अपने सम्बन्धों की भूमिका प्रारम्भ कर दी।[4] राजा मानसिंह के समय (१५८९-१६१४) मुगल साम्राज्य से कछावा वंश के सम्बन्ध बड़े गहन थे, अतएव कलात्मक आदान-प्रदान बहुत स्वाभाविक था। १६००-१६१४ के आस-पास का आम्बेर की छतरियों का भित्तिचित्रण इस शैली का प्राचीनतम उपलब्ध चित्रण है। बैराठ के बाग तथा राजा मानसिंह के जन्म-स्थान मौजमाबाद के

१. देखिए, रामगोपाल विजयवर्गीय : राजस्थानी चित्रकला, पृ० ३४
२. हरमन ग्वेत्स ने इसे कछावा शैली कहा है।
३. वाचस्पति गैरोला ने अम्बर शैली माना है।
४. देखिए, डॉ० रघुवीर सिंह : पूर्व आधुनिक राजस्थान—पृ० ४१

भित्तिचित्र भी अम्बर शैली के प्राचीन उदाहरण हैं।[१] अकबर-कालीन प्रसिद्ध सचित्र 'रज्मनामा'[२] (१५८४-१५८८) में कछावा शैली के प्रारम्भिक स्वरूप एवं कलात्मक आदान-प्रदान रूप दृष्टिगोचर होता है।

अम्बर शैली का दूसरा चरण मिर्जा राजा जयसिंह (१६२५-१६६७) से प्रारम्भ होता है। बिहारी जैसे रीतिकालीन कवि राजा के दरबारी रत्न थे, जिनकी 'बिहारी सतसई' ने अनेक चित्रकारों और रसिकजनों को प्रभावित किया। खेद है कि तत्कालीन ऐसे चित्र बहुत कम उपलब्ध हुए हैं, जिनमें लोक-कला की विशेषता और मुगल प्रभाव झलकता है। राजा सवाई जयसिंह ने सन् १७२७ में अपने समृद्ध राज्य के अनुरूप नयी राजधानी जयपुर को बसाकर विभिन्न कलाओं के उत्थान में विशेष योगदान दिया।[३] चित्रकला में लोक-कला के स्थान पर सुसंस्कृत कोमल चित्रांकन को महत्त्व मिला तथा संस्कृत ग्रन्थों और हिन्दी ग्रन्थों के आधार पर चित्रण-बाहुल्य पुरःसर हुआ, किन्तु तत्कालीन चित्रकला पर इतना मुगल प्रभाव है कि उसे मुगल शैली से अलग करना कठिन है।[४]

सवाई जयसिंह के पुत्र ईश्वरीसिंह (१७४३-१७५०) तान्त्रिक थे। साहिबराम और लाल चितारा उसके समय में प्रमुख चित्रकार थे, जिन्होंने व्यक्ति-चित्र और पशु-पक्षियों की लड़ाई के अनेक चित्र बनाये। सवाई माधोसिंह (१७५०-१७६७) के समय तक चित्रांकन करते रहे। इन्होंने अलंकारों के चित्रण के स्थान पर मोती, लाल तथा लकड़ी की मणियों को चिपकाकर रीतिकालीन आलंकारिक मणि-कुट्टिम की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया।[५] रामजीदास एवं गोविन्द भी इसी समय के प्रमुख चित्रकार थे। सवाई पृथवीसिंह (१७६७-१७७९) के समय में हीरानन्द और त्रिलोक प्रसिद्ध चित्रकार हुए। उन्होंने राजाओं के व्यक्ति-चित्र ही अधिक बनाये।

सवाई प्रतापसिंह (१७७९-१८०३) ने जयपुर के कलात्मक जीवन में नवीन पृष्ठ जोड़ा। धर्म और काव्य के प्रति ही इनकी विशेष रुचि थी। वे स्वयं 'ब्रजनिधि' के नाम से काव्य रचते थे, और पुष्टिमार्गी उपासक होने के कारण कृष्ण-भक्ति में विशेष अनुराग रखते थे।[६] कवि, चित्रकार और भक्त होने के

१. कुँ० संग्रामसिंह : जयपुर्स यूनिक कन्ट्रीब्यूशन टू राजस्थान : वार्षिकी ६३, पृ० २६
२. देखिए, सिटी पैलेस म्यूजियम, जयपुर
३. डॉ० रघुवीरसिंह : पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ० १५८
४. कुँ० संग्रामसिंह : जयपुर्स यूनिक कन्ट्रीब्यूशन टू राजस्थान, वार्षिकी ६३, पृ० २३
५. देखिए, महाराजा जयपुर संग्रहालय, जयपुर
६. रामगोपाल विजयवर्गीय : राजस्थानी चित्रकला, पृ० २५

कारण अनेक कवि और चित्रकार उनके दरबार की शोभा बने हुए थे। उनके समय में राधा-कृष्ण की लीलाओं, नायिका-भेद, रागरागिनी, ऋतु-वर्णन आदि से सम्बन्धित चित्रांकन विशेषरूप से हुए, जिनमें राजा और रानियों के विशाल आदमकद चित्र तथा भागवत् पुराण, दुर्गा सप्तशती, कृष्ण-लीला आदि के अनेक चित्र उल्लेखनीय हैं।[1] इस समय के प्रसिद्ध चित्रकार साहिबराम के तीन चित्र बहुत प्रसिद्ध हैं।[2] अन्य कलाकारों में जीवन, घासी, सालिगराम, रघुनाथ, रामसेवक, गोपाल, उदय आदि का नाम प्रमुख है। उपर्युक्त कला की मौलिक दाय महाराजा जगतसिंह (१८०३-१८१८) तक चलती रही। उनके दरबार में पद्माकर जैसे प्रसिद्ध कवि ने 'जगद्विनोद' की रचना कर जयपुर घराने को बिहारी सतसई से जोड़ दिया।[3] गोवर्धन-धारण तथा रासमण्डल के चित्र तत्कालीन शैली के प्रमुख उदाहरण हैं।

सवाई जगतसिंह के उपरान्त जयपुर शैली की मौलिकता अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृत के प्रभाव के कारण अधिक नहीं टिक सकी और उससे कम्पनी शैली का प्रभाव प्रविष्ट होने लगा।[4] महाराजा रामसिंह ने कलाओं के प्रचार-प्रसार तथा संरक्षण में महत्त्वपूर्ण योग दिया किन्तु पाश्चात्य प्रभाव से आक्रान्त जयपुर शैली सन् १९०० तक धीरे-धीरे अपनी मौलिकता खो बैठी।

विशेषताएँ

मुगल दरबार से जयपुर के राजघराने का सम्बन्ध प्रारम्भ से ही रहा है, इसलिए जयपुर की कलाओं पर मुगल शैली का प्रभाव अक्षुण्ण है। कछावा शैली ने जितना मुगल चित्रकला को प्रभावित किया है उससे भी अधिक जयपुर शैली पर मुगल कला का प्रभाव रहा है। पारस्परिक सम्बन्धों के कारण दोनों शैलियों के चित्र इस प्रकार मिल-जुल गये हैं कि उनमें भेद करना कठिन है, अतः जयपुर शैली की विशेषता अत्यधिक मुगल प्रभाव है। नर-नारियों की शारीरिक बनावट, वेश-भूषा, वाह्य प्राकृतिक परिवेश आदि मुगल कला से प्रभावित हैं।

ऊँचा ललाट, गोल नाक, गोल चेहरा, सम आकृति, मोटे अधर, मीनाकृत

---

१. कुँ० संग्रामसिंह : जयपुर्स यूनिक कन्ट्रीब्यूशन टू राजस्थान, वार्षिकी ६३ पृ० २९

२. (१) सवाई ..तापसिंह का अर्धचित्र (२) उन्हीं का पूर्ण चित्र और (३) राधा-कृष्ण का नृत्य चित्र (उपर्युक्त चित्र महाराजा जयपुर संग्रहालय में उपलब्ध हैं)।

३. देखिए, पद्माकर का जगद्विनोद (सं० विश्वनाथप्रसाद मित्र), पृ० ७१

४. हरमन ग्वेत्स, दि बिगनिंग ऑफ यूरोपियन इन्फलुएन्स इन राजपूत आर्ट, जनरल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, सं० १७, १९३८, पृ० ३३२-३३४

नेत्र और पगड़ी, घेरदार जामा तथा दुपट्टे से कमर कसे हुए नायकों की छवि तथा गठीले बदन की आभूषणों से लदी बेगमों जैसी राजसी भूषा में चित्रित विभिन्न रानियाँ और नायिकाएँ जयपुर शैली में विशेष अंकित हुई हैं। अंग-प्रत्यंग के उभार में परदाज़ के काम का वाहुल्य है। रेखाओं का आलेखन सुस्पष्ट और साधनामय तथा चित्रों के हाशिये वेलबूटों, फूल-पत्तियों, विभिन्न पशु-पक्षियों की आकृतियों से सुसज्जित हैं। स्वर्ण के रंग का बाहुल्य, मोतियों की जड़ाई, माणिक और पन्नों की सज्जा, आलंकारिक छटा आदि जयपुर शैली की प्रमुख विशेषताएँ हैं। हरे रंग का अधिक प्रयोग तथा चाँदी के रंग की पतली किनार, काले तथा लाल हाशिये जयपुर शैली में देखते ही बनते हैं। इस शैली में रंग अधिक समय तक न उड़ने वाले, चमकदार, चिकने और घने होते हैं।[1]

अलवर शैली

कला-मर्मज्ञ अलवर की चित्रकला को जयपुर की ही उपशैली मानते हैं, किन्तु उपलब्ध सामग्री के आधार पर उसके मौलिक स्वरूप को इन्कार नहीं किया जा सकता। अलवर की चित्रकला का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। अन्य रियासतों की भाँति यहाँ भी ललित-कलाएँ राज्याश्रय में ही उदित हुई हैं। अलवर के लगभग २०० वर्ष के राज्याश्रय में पली चित्रकला को अलवर शैली के नाम से अभिहित करना अधिक उचित है। "जयपुर राज्य के आधार पर सन् १७७४ में अलवर का अलग राज्य स्थापित कर लिया।"[2] उनके राज्यकाल में शिवकुमार और डालूराम दो चित्रकार जयपुर से अलवर आये, जिनके अनेक चित्र इस शैली के प्रमुख उदाहरण हैं।[3] प्रतापसिंह का अधिक समय राज्य की स्थापना में ही बीता, अतः उनके पुत्र बख्तावरसिंह ने (जो स्वयं भक्त और कवि थे)[4] कला को बढ़ावा दिया। कृष्ण उपासक राजा बख्तावरसिंह के समय बलदेव व सालिग-राम दो प्रमुख कलाकार थे। विनयसिंह अलवर के राजाओं में सबसे अधिक कला-प्रेमी व कला-पारखी हुए हैं। अलवर शैली के विकास में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे स्वयं बल्देव से चित्रकारी सीखा करते थे। कला-प्रेमी होने के कारण उन्होंने दिल्ली के अनेक कलाकारों को अपने दरबार में सम्मान दिया, जिनमें

१. देखिए, रामगोपाल विजयवर्गीय : राजस्थानी चित्रकला, पृ० २६
२. डॉ० रघुवीरसिंह : पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ० १९३
३. राजकीय संग्रहालय अलवर में अनेक लघु चित्र उपलब्ध तथा राजगढ़ के किले में भित्तिचित्र विशेष द्रष्टव्य।
४. "राधाकृष्ण उपास है बख्तावर निज नाम" बख्तेश : दानलीला वधू चरित्र, पृ० १ (सं० १८५४ का प्राच्य संस्थान अलवर में उपलब्ध हस्तलिखित ग्रन्थ)

मुसव्विर गुलाम अली और सुलेखक मिर्ज़ा देहल्वी का नाम उल्लेखनीय है। विनयसिंह ने अनेक ग्रन्थों का चित्रण करवाया जिनमें संस्कृत, हिन्दी और फारसी के ग्रन्थों की बहुलता है।[१] इन्हीं के समय में इनके खवासवाल (दासी-पुत्र) भाई बलवन्तसिंह तिजारा के राजा थे जो अत्यधिक कला-प्रेमी थे। दिल्ली साम्राज्य के विश्रृंखल होने पर वहाँ की कलात्मक धरोहर को खरीदकर सजाने तथा अनेक ग्रन्थों को चित्रित करवाने का श्रेय इन्हीं को है।[२] उनकी असामयिक मृत्यु के कारण तिजारा की कलात्मक सामग्री अलवर ही आ गयी। इनके दरबार में सालिगराम, जमनादास, छोटेलाल, बक्साराम, नन्दराम आदि कलाकार प्रमुख थे। निश्चय ही विनयसिंह तथा बलवन्तसिंह ने अलवर शैली को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। कृष्ण उपासक होने के कारण गीता भागवत्, गीतगोविन्द, कृष्णलीला आदि का चित्रण इस समय की प्रमुख विशेषता रही।

महाराजा शिवदानसिंह के समय में पाश्चात्य प्रभाव के कारण फोटोग्राफी का अधिक प्रचलन हो गया और अलवर शैली के काव्यात्मक सौन्दर्य, रंगों की प्रखरता, और रेखाओं की सबलता तथा परदाज़ का अंकन धीरे-धीरे लोपोन्मुख हो गया।

विशेषताएँ

मुगल शैली तथा जयपुर शैली की लगभग सभी विशेषताओं को समाहित करनेवाली अलवर शैली की अपनी निजी मौलिक विशेषताएँ भी हैं जिनके आधार पर उसे स्वतन्त्र स्थान मिलना ही चाहिए। स्त्रियों के कुछ ठिगने कद, उठी हुई वेणियाँ, अत्यधिक परिश्रम से बनाये गये सुन्दर मुख, पटड़ियों पर स्थानीय प्रभाव, ये इस शैली की कुछ मौलिक विशेषताएँ हैं। 'वसलियाँ'[३] और हाशिये वनाने के लिए अलवर शैली अधिक प्रसिद्ध है। सुन्दर बेल-बूटों वाली 'वसलियाँ' और उन पर सोने के पानी का काम इस शैली की निजी विशेषता है। मुगल शैली जैसा बारीक परदाज़ का श्रमसाध्य काम इसमें विशेष रूप से दिखायी देता है। अलवर शैली में मुगल चित्रों जैसी सजधज और सुन्दर हाशिये बनाने की कला अधिक रही है। रंग चिकने, उज्ज्वल और रेखाएँ परिमार्जित हैं। अलवर का राजकीय संग्रहालय सचित्र ग्रन्थों एवं लघु चित्रों के संग्रह की दृष्टि से

---

१. 'गुलिस्ता' का प्रसिद्ध सचित्र ग्रन्थ तथा गीता, भागवत् के लिपटवाँ पटचित्र, राजकीय संग्रहालय में विशेष द्रष्टव्य।
२. राजकीय संग्रहालय अलवर का दुर्गासप्तसती का चित्रण विशेष उल्लेखनीय है।
३. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट, पारिभाषिक शब्दावली।

अत्यधिक समृद्ध है।

राजस्थानी चित्रकला का संविधान

१६वीं शती से १९वीं शती तक विभिन्न शैलियों, उप-शैलियों में विकसित राजस्थानी चित्रकला निश्चय ही भारतीय चित्रकला के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। अनेक समकक्ष शैलियों से प्रभावित होने के उपरान्त भी राजस्थानी चित्रकला के संविधान को भली प्रकार समझा जा सकता है :—

१. **लोक-जीवन का सान्निध्य :** भित्ति-चित्रण की परम्परा में विकसित राजस्थानी चित्रकला का लोकजीवन में विशष सान्निध्य रहा है। प्रारम्भिक चित्रण में सादगी और सरलता तथा रंगों की अल्हड़ता और विषय-वस्तु के चुनाव में लोक-जीवन की भावनाओं का बाहुल्य विशेषता से मिलता है। दरबारी संस्कृति में परिपोषित चित्रकला से भी यह लोकतत्व विलग नहीं हुआ है। धार्मिक और सांस्कृतिक स्थलों में पोषित चित्रकला जन-जीवन की भावनाओं तथा लोकप्रिय विषयों से अधिक सम्बन्धित रही है।

२. **भाव प्रवणता का प्राचुर्य :** राजस्थानी चित्रकला रस प्रधान है। भावनाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रांकन इसमें विशेष रूप से हुआ है। राधाकृष्ण की माधुर्य भावना का विस्तृत और गहनतम चित्रण इस चित्रकला की प्रमुख विशेषता है। भक्ति और शृंगार का सजीव चित्रण राजस्थानी चित्रण में विशेष देखने को मिलता है।

३. **विषय-वैविध्य :** राजस्थानी चित्रकला विषय की दृष्टि से अत्यधिक विस्तृत है। राधाकृष्ण की विभिन्न लीलाओं, राम कथा, महाभारत और भागवत् की विभिन्न कथाएँ, नायक-नायिका भेद, रागरागिनी, बारहमासा, ऋतुवर्णन, दरबारी जीवन, उत्सव, शिकार, राजा-रानियों का चित्रांकन, लोक-कथाएँ आदि अनेक विषय भूमिकाओं पर राजस्थानी चित्रकला का परिपोषण हुआ है। काव्य का चित्रण इस शैली की अपनी निजी विशेषता है।

४. **वर्ण-वैविध्य :** राजस्थानी चित्रकला में रंगों का जादू विशेष उल्लेखनीय है। लाल, पीला, श्वेत, और हरा इस शैली के प्रमुख रंग हैं, जिनके समन्वय से कलाकारों ने चित्रण को रंगीन बना दिया है। चटकीले, चमकदार और दीप्ति-युक्त रंगों का संयोजन शैली में अपना निजी रूप रखता है।

५. **देशकाल की अनुरूपता :** राजपूती सभ्यता और संस्कृति का तथा तत्कालीन परिस्थिति का जीता-जागता चित्रण राजस्थानी चित्रकला में देखने को मिलता है। दुर्ग, प्रसाद, मन्दिर, हवेलियाँ, दरबार आदि का राजपूवी वैभव चित्रकला में बारीकी के साथ चित्रित किया गया है। भक्तिकाल और रीति-काल का सजीव चित्रण तो विशेष रूप से हुआ है।

६. प्रकृति-परिवेश : राजस्थानी चित्रकला में प्रकृति के विराट परिवेश का बहुरंगी चित्रण हुआ है। कमलों से पूरित सरोवर, काले मेघों से आच्छन्न आकाश में सर्पाकार विद्युत रेखाएँ, वन, उपवन, पेड़, पौधे, फूल, पत्तियाँ, पक्षियों से भरे निकुंज, मृग, मयूर, सिंह, हाथी आदि का सुन्दर चित्रांकन राजस्थानी चित्रकला की अपनी विशेषता है।

इतर समकक्ष शैलियों से तुलना

राजस्थानी चित्रकला के समकक्ष तुलनात्मक दृष्टि से दो शैलियाँ आती हैं : १. मुगल और २. पहाड़ी। दोनों से ही तुलनात्मक विश्लेषण करने पर निष्कर्ष निकलता है कि राजस्थानी चित्रकला का इतर समकक्ष शैलियों में पारस्परिक आदान-प्रदान और प्रभाव होने के बावजूद भी मौलिक स्थान रहा है।

राजस्थानी और मुगल शैली

इन दोनों शैलियों का निर्माण एवं विकास प्रायः एक ही समय हुआ। इसलिए राजनीतिक प्रभाव के कारण पारस्परिक कलात्मक आदान-प्रदान स्वाभाविक ही है, किन्तु दोनों शैलियों की अपनी मौलिक भिन्नताएँ हैं। मुगल शैली का आधार ईरानी और राजस्थानी शैली का भारतीय है। विषय की दृष्टि से मुगल शैली राजसी, और सामन्ती प्रभाव से आक्रान्त और राजस्थानी शैली लोक-जीवन की सरलता से प्रभावित है। मुगल शैली यथार्थवादी है तो राजस्थानी शैली अधिक कल्पना प्रचुर। मुगल शैली का उद्भव लघु चित्रों से और राजस्थानी का भित्तिचित्रों से हुआ है। एक दरबारी वैभव से आच्छादित है तो दूसरी धार्मिक, भक्ति और श्रृंगारी भावों से ओत-प्रोत। एक में राज-दरबार, राज-परिवार युद्ध और उत्सवों के अंकन का बाहुल्य है तो दूसरी में ग्रामीण जन-जीवन, कवित्वमय प्रेम कल्पनाओं, धार्मिक भावनाओं तथा राधा-कृष्ण की श्रृंगारपरक लीलाओं का मादक चित्रण है।[1] एक फारसी काव्य और मुगल इतिहास का विवरण प्रस्तुत करनेवाली है तो दूसरी संस्कृत-हिन्दी काव्यों के गूढ़ अर्थों को अभिव्यक्ति देनेवाली। राजस्थानी शैली की रंग-योजना और अलंकरण सज्जा भी मुगल शैली से भिन्न है। एक की रंग-योजना में वैविध्य है तो दूसरी में समरसता। राजस्थानी शैली में आदर्श हिन्दू जीवन की पौराणिक परम्परा और राजपूती वीरता तथा संस्कृति का समावेश है तो मुगल शैली में मुस्लिम संस्कृति का प्राचुर्य। एक में भारतीय प्रतीकों (जैसे कमल, हंस, मोर आदि) का विशेष अंकन है तो दूसरी में सरो के पेड़, बाज, ऊँट आदि का

---

१. देखिए, आनन्दकुमार स्वामी : राजपूत पेंटिंग, पृ० १०

चित्रांकन प्रमुख है।

दोनों शैलियों की तुलनात्मक समीक्षा करने पर भिन्नता के साथ ही उनमें समता का भाव भी लक्षित होता है। १६वीं शती के मध्य से ही मुगलों के प्रभाव और दवाव के कारण राजस्थान में मुस्लिम संस्कृति के बीज फैलने लगे थे और १७वीं शती के प्रारम्भ तक तो पूर्ण राजस्थान मुगल प्रभाव से आक्रान्त हो गया था।[1] समूचे राजस्थान पर मुगल साम्राज्य की सर्वोपरि सत्ता की स्थापना के कारण यहाँ के साहित्य, कला और संस्कृति पर भी विशेष प्रभाव पड़ा है। राजसी वैवाहिक सम्बन्धों के कारण एक-दूसरी कला में जो पारस्परिक आदान-प्रदान हुआ है वह सभी शैलियों में द्रष्टव्य है। राजसी वैभव, शृंगारी भावना, भोग-विलास, वेशभूषा, रेखांकन, रंग-योजना आदि में मुगल प्रभाव दर्शनीय है।

राजस्थानी शैली और पहाड़ी शैली

जम्मू, गढ़वाल, कुल्लू, चम्वा, वसौली, काँगड़ा, गुलेर, मण्डी आदि पहाड़ी प्रान्तों में परिपोषित चित्रकला पहाड़ी शैली के नाम से विख्यात है। १८वीं शती में विकसित पहाड़ी शैली राजस्थानी शैली की ही अमर धरोहर है। मुगलकला के ह्रास के कारण पहाड़ी राजपूत राज्यों में मुगल दरवार से विच्छिन्न कलाकारों ने आश्रय लिया। वहाँ के वातावरण के प्रभाव में जो चित्र बने उनमें पहाड़ी चित्र-कला की विवृति हुई। पहाड़ी चित्रकला ने भावांकन एवं कलांकन की दृष्टि से अपनी पूर्ववर्ती राजस्थानी शैली का अनुगमन किया। राधा-कृष्ण की विभिन्न लीलाओं को आधार वनाकर पहाड़ी शैली में विशेष अंकन हुआ। भागवत पुराण, गीतगोविन्द, सूरसागर, रसिकप्रिया, विहारी सतसई आदि ग्रन्थों एवं नायिकाभेद, रागरागिनी आदि के आधार पर बने चित्र काँगड़ा, वसौली आदि शैलियों की प्रमुख धरोहर हैं। बसौली शैली के चित्रों में मेवाड़ की भाँति रंगों की सूचक अवस्था एवं लोककला की प्रधानता मिलती है।[2] पहाड़ी चित्रकला में भावाभि-व्यंजकता, रंगों और रेखाओं की लयात्मकता तथा विषयवस्तु की विविधता काँगड़ा शैली में अनोखी है।[3] कला के उत्कर्ष की दृष्टि से राजा संसारचन्द्र (१७७५-१८२३) का योगदान उल्लेखनीय है। तूलिका की सुघड़ता, रंगों की संयोजकता, रेखाओं की लयात्मकता, नर-नारियों की आकृतियों की मोहकता, सतरंगा प्रकृति-चित्रण, पशु-पक्षियों की विविधता तथा अनुभावों की अभिव्यंजकता के लिए

१. डॉ० रघुवीरसिंह : पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ० ४०-६५
२. देखिए, एम० एस० रन्धावा : बसौली पेंटिंग
३. ,, वही, काँगड़ा पेंटिंग ऑन लव

काँगड़ा शैली अधिक प्रसिद्ध है। बूंदी शैली और किशनगढ़ शैली का सतरंगापन एवं लावण्य काँगड़ा शैली में विशेष देखने को मिलता है।[1] राजस्थानी और पहाड़ी चित्रकला की यह समता भारतीय चित्रकला की परम्परा की ही दो कड़ियाँ हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि राजस्थानी चित्रकला एवं इतर पूर्ववर्ती एवं परवर्ती अन्य भारतीय चित्रशैलियों पर एक-दूसरे का इतना पारस्परिक प्रभाव रहा है कि उसे विलग कर पाना कठिन है। संस्कृति एवं कला की धारा इसी प्रकार पारस्परिक प्रभाव ग्रहण कर आगे बढ़ती रही है।

निष्कर्ष

भारतीय चित्रकला की सर्वोत्कृष्टदाय अजन्ता शैली की समृद्ध परम्परा को निभानेवाली राजस्थानी चित्रकला के महत्त्व को अब इन्कार नहीं किया जा सकता। भेदपाट में जन्मी एवं उनके पूर्ववर्ती शैलियों से प्रभावित होती हुई तथा अनेक परवर्ती शैलियों को प्रभावित करती हुई राजस्थानी चित्रकला ने विभिन्न राज्यों में पोषित होनेवाली शैलियों और उपशैलियों का रूप धारण कर कला-जगत को विशेष रूप से समृद्ध किया है। मेवाड़ शैली के लोककलात्मक प्रभाव, किशनगढ़ और बूंदी शैली के सतरंगे अभिजात्य पूर्ण अंकन, जयपुर और अलवर शैली के मुगलिया प्रभाव, आदि के कारण राजस्थानी चित्रकला का जो प्रारूप सम्मुख आता है वह कुमार स्वामी के शब्दों में, "भारतीय चित्रकला का उत्कृष्ट स्वरूप है तथा विश्व की महान् शैलियों में स्थान पाने योग्य है।" राधाकृष्ण की विभिन्न लीलाएँ इस चित्रकला के अंकन का आधार रही हैं। संस्कृत, हिन्दी तथा राजस्थानी के काव्यों पर आधारित इस चित्रकला ने मध्यकालीन संस्कृति और सभ्यता तथा हिन्दी कृष्ण-काव्य के भाव-जगत को साकार कर दिया है। राजस्थानी चित्रकला हिन्दू समाज के साहित्य की सजीव प्रतिकृति है। राजस्थानी चित्रकार रंगों के जादूगर थे। उनकी वर्णव्यंजना सचमुच किसी अभूतपूर्व नेत्र-कौमुदी का सुख देती हैं। उनके चित्र रस के अक्षय स्रोत हैं। उनके द्वारा निर्मित सचित्र ग्रन्थों एवं लघुचित्रों के माध्यम से मध्यकालीन साहित्य के भावपक्ष और कलापक्ष का ही अध्ययन नहीं किया जा सकता वरन् समूची तत्कालीन संस्कृति का साक्षात् दर्शन भी किया जा सकता है।

---

१. देखिए, एम० एस० रन्धावा : काँगड़ा पेंटिंग ऑन लव

३

राजस्थान में कृष्णभक्ति आन्दोलन : काव्य एवं चित्रकला का विकास

भक्तिमार्ग अपने विशुद्ध रूप में धर्म-भावना का भावात्मक या रसात्मक विकास है। यह विकास उपास्य ईश्वर के स्वरूप की प्रतिष्ठा के उपरान्त ही होता है। भक्ति परम्परा कितनी प्राचीन है यह तो कह पाना कठिन है, किन्तु इसकी रसधार में निमग्न होकर भारतीय जीवन समय-समय पर रस-विभोर होता रहा है।

कृष्णभक्ति आन्दोलन

कृष्ण-भक्ति के उद्‌भव का निश्चित समय तो ज्ञात नहीं किन्तु इतना निश्चय है कि महाभारत के समय कृष्ण चराचर व्याप्त भगवान के रूप में स्वीकृत हो गये। "ऐसा लगता है कि इस समय भक्ति-आन्दोलन भक्ति को प्रामुख्य देने के लिए एक क्रान्तिकारी रूप में आविर्भूत हुआ था और भक्ति के पक्ष में वेद, तप आदि की उपेक्षा को प्रोत्साहित कर दिया था। आन्दोलन का यह स्वरूप अपने-आपमें बड़ा महत्त्वपूर्ण है।"[१]

भक्ति का दूसरा आन्दोलन छठी-सातवीं शती के आस-पास प्रारम्भ हुआ। इस समय तक राम भी व्यापक देवत्व प्राप्त कर चुके थे, किन्तु कृष्ण को जो प्रामुख्य मिला है वह राम को नहीं मिला। यों तो राम को देवत्व तो महाभारत और शिव पुराण के युग में भी मिल गया था, किन्तु देवत्व की स्पर्धा का संकेत हमें भागवत् से मिल जाता है। फिर भी भागवत् में विष्णु के दोनों अवतारों को समादृत करके कृष्ण-भक्ति और राम-भक्ति में एक समझौते की प्रवृत्ति का

---

१. डॉ० सरनामसिंह शर्मा : भक्ति-दर्शन (परिशिष्ट)

प्रमाण दिया है। राम-कृष्ण दोनों नामों के स्थान पर लक्ष्मीनारायण (विष्णु) को 'सम्प्रदाय देव' का स्थान देकर सम्भवत: रामानुजाचार्य ने भी झगड़े का निवटारा करने का ही प्रयत्न किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि शंकर के मायावाद ने सगुण-भक्ति पर घातक प्रहार किया था, जिसको रामानुज ने 'संजीवनी बूटी' खिलाकर अपने श्रीवैष्णव सम्प्रदाय में पुनः प्रतिष्ठित किया।

मध्यकालीन भारत में धार्मिक आन्दोलन तेरहवीं शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी तक अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुके थे। यह तीन-चार सौ वर्षों का काल धार्मिक आन्दोलनों का काल है।[१] अपनी माधुर्य भावना के कारण विभिन्न धार्मिक आन्दोलनों में कृष्ण-भक्ति आन्दोलन का सर्वोपरि स्थान है। यह अनुमान करना अनर्गल न होगा कि कृष्ण-भक्ति का यह स्वरूप वाममार्ग के प्रति बढ़ते हुए जनाकर्षण के रोकने के लिए भी विकसित हुआ तो आश्चर्य नहीं। इधर सूफियों ने भी माधुर्य भाव को धर्म-क्षेत्र में प्रश्रय दे रखा था। उनका साहित्य उसी ढर्रे पर चल रहा था, अतएव वैष्णव धर्म के सामने कुछ विकट परिस्थितियाँ थीं जो हल चाहती थीं। प्रश्न यह था कि वैष्णव धर्म इन विरोधी परिस्थितियों में कैसे जीवित रहकर विकास करे। अतएव मधुरा-भक्ति की समानान्तर धारा ने वैष्णव भक्ति के उत्स से जन्म लेकर पुष्टिमार्ग की ओर पदार्पण किया, किन्तु यहाँ परिस्थिति सूफियों से कुछ भिन्न थी। सूफियों ने ईश्वर में नायिका भाव को आरोपित किया, जबकि कृष्ण-भक्तों ने राधाकृष्ण या गोपीकृष्ण की लीलाओं में निमग्न होकर श्रृंगाररस का पान किया। माधुर्य की जो धारा सिद्ध-साधना से वह आयी थी और जिसने सूफी साधना से वल प्राप्त किया था वह कृष्ण-भक्ति में प्रेम को वड़े मादक रूप में लेकर प्रविष्ट हुई, किन्तु उस पर भारतीयता का ही अधिकार रहा। सन्त कवियों ने निर्गुण-भक्ति में उसको स्थान देकर कृष्ण-भक्ति का कोई उपकार नहीं किया, हाँ, भक्ति के प्रमुख तत्त्व, जैसे प्रपत्ति, न्यास, अनुग्रह आदि के महत्त्व की रक्षा अवश्य हुई।

कृष्ण-भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तन, प्रचार एवं प्रसार में कुछेक महान् ग्रन्थों तथा ऐसे विशिष्ट व्यक्तित्वों का योगदान रहा है, जिन्होंने अपने-अपने सम्प्रदाय की स्थापना कर भक्ति मार्ग में भगवान् कृष्ण का प्रेममय स्वरूप प्रतिष्ठित किया और उसके आकर्षण द्वारा समाज को सायुज्य-मुक्ति का मार्ग दिखलाया।

ग्रन्थ

कृष्ण के व्यक्तित्व की चर्चा प्राचीन समय से ही मिलती है। उनका

१. देखिए, शम्भुरत्न त्रिपाठी : समाजशास्त्रीय विश्वकोश, पृ० २५

प्राचीनतम उल्लेख 'ऋग्वेद' में मिलता है तथा उन्हें आंगिरस ऋषि कहा गया है।[1] वाद में 'कृष्ण' नाम ने, न जाने, किन व्यक्तियों से सम्बन्ध जोड़कर महाभारत में स्थैर्य प्राप्त किया। महाभारत के आसपास भगवान् का जो उपास्य स्वरूप सामने रहा वह वहुत व्यापक था। "वासुदेव-भक्ति के तात्विक निरूपण का सबसे प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थ 'भगवद्गीता' है, जो महाभारत का एक अंग है।"[2] उसमें कृष्ण का उपास्य स्वरूप लोकरक्षा और लोकमंगल का प्रत्यक्ष साधन करनेवाली धर्म शक्ति का स्वरूप था जिसमें शक्ति, शील, सौन्दर्य, ऐश्वर्य, सबका समन्वय था। 'हरिवंश पुराण' में जो महाभारत का ही परिशिष्ट माना जाता है, कृष्णवंश का विस्तीर्ण वर्णन मिलता है। "कृष्ण के जीवन का पूर्वांश विस्तार से प्रस्तुत करनेवाला यह ग्रन्थ विशेष महत्त्व का है।"[3]

धीरे-धीरे भगवान कृष्ण के भक्तिमार्ग से लोक धर्म पक्ष या कर्म पक्ष हटता गया और उपासन। में उनका लोकरक्षा तथा लोकमंगल वाला यह व्यापक स्वरूप तिरोहित होता गया और केवल ऐसे स्वरूप की प्रतिष्ठा की प्रवृत्ति बढ़ती गयी जो अत्यधिक घनिष्ठ प्रेम का अवलम्वन हो सके। श्रीमद्भागवत् इसी प्रवृत्ति का अत्यन्त मधुर फल है। भगवान के अवतार श्रीकृष्ण के माधुर्यस्वरूप का पूर्ण प्रकाश भागवत् में हुआ है। श्रीमद्भागवत् सवसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है; जिसमें कृष्ण के सम्पूर्ण चरित्र का विस्तार से चित्रण हुआ है। श्रीकृष्ण की वाललीला और प्रेमलीला का वहुत ही स्वाभाविक और चित्ताकर्षक वर्णन उक्त पुराण में पाया जाता है। भागवत पुराण अत्यधिक विस्तृत और सांगोपांग धार्मिक ग्रन्थ है, जिसने कृष्ण के माधुर्य पक्ष को विकीर्ण कर मधुरा-भक्ति का मार्ग खोल दिया। "महाभारत से लेकर पौराणिक युग तक जितना भी कृष्ण का विवेचन हुआ है, वह सव समन्वित रूप में इस ग्रन्थ में मिल जाता है।"[4] इसलिए कृष्ण-भक्ति आन्दोलन के प्रचार एवं प्रसार में इस ग्रन्थ का सर्वोपरि योगदान है। श्रीमद्भागवत् में कृष्ण के जिस व्यापक स्वरूप को लिया है उसे परवर्ती कवियों, भक्तों एवं आचार्यों ने अपने भावाभिव्यंजन एवं सिद्धान्तों के स्थापनार्थ इसे आधारग्रन्थ माना है।[5] संस्कृत में राधा-कृष्ण के माधुर्यभाव को आधार बनाकर सर्वप्रथम १२वीं शती में जयदेव ने 'गीतगोविन्द' की रचना की। १२वीं शती तक शिव-पार्वती ही श्रृंगार के नायक-नायिका थे। वैष्णव-भक्ति के प्रभाव से

---

१. ऋग्वेद, ८ । ८५ । १-७
२. रामचन्द्र शुक्ल : सूरदास, पृ० २४
३. डॉ० सरोजनी कुलश्रेष्ठ : हिन्दी साहित्य में कृष्ण, पृ० ५
४. डॉ० हरवंशलाल : सूर और उनका साहित्य, पृ० १३०
५. डॉ० सरनामसिंह शर्मा : भक्ति-दर्शन (परिशिष्ट)

दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ और जयदेव ने कृष्ण और राधा के रूप में काव्य-जगत् को नवीन नायक-नायिका प्रदान किये। भगवान कृष्ण की भक्ति एवं शृंगार का उदात्त अंकन कर जयदेव ने जिस माधुर्य रूप को प्रतिष्ठित किया वह परवर्ती कवियों, चित्रकारों, भक्तों आदि के लिए आधार वन गया। इसी परम्परा में लोक-भाषा की सरसता को अपनाकर १४वीं १५वीं शती में विद्यापति ने असंख्य पद लिखकर समाज में कृष्ण-भक्ति के स्वरूप को अंकित किया। "कृष्ण-भक्ति आन्दोलन के माधुर्य पक्ष का प्रसार एवं प्रचार करने में 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' और 'गर्ग-संहिता' का योग भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि इन ग्रन्थों ने कृष्ण के साथ राधा को प्रशस्ति देकर जो कार्य किया है वह तत्कालीन ग्रन्थों की तुलना में विशेष महत्त्व का है।" आधुनिक वैष्णव सम्प्रदायों में भागवत् के वाद सवसे महत्त्वपूर्ण पुराण 'ब्रह्मवैवर्त' है। शृंगारी वैष्णवता अपने उन्मुक्त रूप में इसी पुराण में व्यक्त हुई है। राधा की कल्पना ने इस पुराण के प्रसंगों को अधिक माधुर्यपूर्ण वना दिया है।[1] 'ब्रह्मवैवर्त' में राधा-कृष्ण की लीलाओं का विस्तृत उल्लेख है। निश्चय ही कृष्ण-भक्ति आन्दोलन के स्वरूप को दृढ़ वनाने में इन ग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। 'भक्ति-रसामृत-सिन्धु' ने कृष्ण के माधुर्यभाव को शास्त्रीय प्रतिष्ठा देकर आन्दोलन को विशेष दिशा की ओर उन्मुख किया। हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियों ने भक्ति की जो अजस्रधारा बहायी है वह किसी से छिपी नहीं है। अष्टछाप और अन्य भक्त कवियों के महान् ग्रन्थ इस कथन के साक्षी हैं। यद्यपि कृष्ण-चरित्र से सम्वन्धित महाकाव्यों का अभाव हिन्दी में खटकता ही रहा, पर फिर भी छोटे-छोटे खण्ड-काव्यों, पदों एवं मुक्तकों के विस्तृत सृजन ने कृष्ण-भक्ति आन्दोलन की जड़ों को निःसन्देह दृढ़ बनाया है। "भक्तिकाल से भी अधिक कृष्णपरक रचनाएँ रीतिकाल में लिखी गयीं। शृंगार की ही दिशा में रीतिकालीन कृष्ण-काव्य द्विविध रूप में सृजित हुआ था, जिसका एक स्वरूप भक्ति-काव्य और दूसरा नायक-नायिका भेद का था।"[2] संक्षेप में उपर्युक्त ग्रन्थों एवं काव्यधाराओं ने कृष्ण-भक्ति आन्दोलन के प्रचार एवं प्रसार में अविस्मरणीय महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

व्यक्ति एवं सम्प्रदाय

कृष्ण-भक्ति आन्दोलन से सम्वन्धित प्रथम व्यक्ति निम्वार्काचार्य जी हैं, जिन्होंने १२वीं शती में भेदाभेद अर्थात द्वैताद्वैत के सिद्धान्त का पोषण कर कृष्ण के माधुर्य स्वरूप की प्रतिष्ठा द्वारा निम्बार्क सम्प्रदाय की स्थापना

---

१. देखिए, डॉ० मिथिलेश कान्ति : हिन्दी भक्ति शृंगार का स्वरूप, पृ० ४८
२. डॉ० सरनामसिंह शर्मा : साहित्यकण (रीतिकाल की काव्यधारा)

की।[1] उनके मत में श्रीकृष्ण ही परम ब्रह्म हैं, तथा ब्रजकृष्ण जो अपने प्रेम एवं माधुर्य की अधिष्ठात्री शक्ति राधा और अन्य आल्हादकारी गोपी स्वरूपा-शक्तियों से परिवेष्ठित रहते हैं—निम्वार्क सम्प्रदाय के उपास्य देव हैं।[2] निम्वार्काचार्य जी ने कृष्ण के साथ राधा को भी महत्त्व दिया, जिससे ज्ञात होता है कि उनके सम्प्रदाय में भगवान की माधुर्य तथा प्रेमस्वरूपा शक्ति राधा की उपासना पर भी विशेष बल दिया गया है। इस प्रकार कृष्ण-भक्ति ने अपने विकास क्रम में एक नया मोड़ लिया। भागवत में गोपी-कृष्ण प्रेम वास्तव में परकीया प्रेम था जिस पर स्पष्टतः आभीर संस्कृति की छाप है, किन्तु निम्वार्क ने राधा को स्वकीया का पद देकर उस प्रेम को आर्यधर्म-वृत्त में आवद्ध कर लिया। जो हो, निम्वार्क भी परकीया प्रेम का एकान्ततः उच्छेद न कर पाये। 'गोपी-कृष्ण प्रेम' परकीया-प्रेम-वृत्ति धर्म की गोद में पोषित रही। हाँ, परकीया और स्वकीया प्रेम ने यहाँ समझौता अवश्य कर लिया। प्रेम के इन दोनों पक्षों को भक्ति आन्दोलन के साथ ही साहित्य ने भी अपना लिया और नायक-नायिका भेद के रूप में साहित्य शास्त्रियों ने इनका विकास किया। राधा-कृष्ण की असीम भक्ति के साथ ही साधुनिन्दा, झूठ आदि ३२ विरोधी तत्त्वों का विश्लेषण भी निम्वार्क सम्प्रदाय में प्रमुख रूप से हुआ है।[3]

कृष्ण-भक्ति आन्दोलन के प्रचार एवं प्रसार में सर्वप्रमुख व्यक्तित्व श्री वल्लभाचार्य (सं १५३५-१५८७) का है। उत्तर भारत में इन्होंने कृष्ण के पूर्णानन्द स्वरूप को अपनाकर कृष्ण-भक्ति को बड़े वेग और विस्तार से आन्दोलित किया। वल्लभाचार्य जी पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक थे। "पुष्टि का अर्थ है 'अनुग्रह'। यह मार्ग भगवान के अनुग्रह का मार्ग है। इसके अनुयायियों का मुख्य साध्य भगवान की कृपा द्वारा भगवत्-प्रेम प्राप्त करना है।"[4] यह मार्ग निस्साधन भक्तों के लिए उच्चतम मार्ग माना गया है। वल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार, "श्रीकृष्ण ही पूर्णानन्द स्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म हैं।"[5] ऐसे कृष्ण के माधुर्यपक्ष को प्रचारित और प्रसारित करने का श्रेय वल्लभाचार्य जी को ही है। वल्लभाचार्य जी के प्रभाव से कृष्ण-भक्ति में काव्य एवं अन्य ललित-कलाओं के द्वारा एक नवीन आन्दोलन प्रस्फुटित हुआ। अष्टछाप की स्थापना हुई और हिन्दी ब्रजभाषा में सूरदास, नन्ददास, परमानन्ददास आदि आठ भक्त कवियों ने भगवान कृष्ण को

---

१. डॉ० भण्डारकर ने इसका समय ११६२ ई० माना है। भण्डारकर : वैष्णविज्मशविज्म, पृ० ६३
२. निम्बादित्य-दशश्लोकी, श्लोक-१
३. वही, पृ० ३९
४. डॉ० दीनदयाल गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ३९५
५. वल्लभाचार्य : तत्वदीपनिबन्ध-भागवतार्थ प्रकरण

चरित्र-नायक मानकर उनके माधुर्य भाव का गुणगान किया। यद्यपि वल्लभाचार्य ने बाल-कृष्णोपासना को ही प्रमुखता दी थी, किन्तु उनके मतावलम्बी अष्टछापीय भक्त कवियों ने रासबिहारी एवं प्रवासी कृष्ण के भी मधुर एवं भावमय चित्र प्रस्तुत कर कृष्ण-भक्ति को रसान्वित किया। वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग की स्थापना समय की आवश्यकता का अनुभव करके की थी। 'कृष्णाश्रय' नामक प्रकरण ग्रन्थ में उन्होंने उस समय का विशद चित्रण किया है। समस्त देश मलेच्छाक्रान्त था, गंगादि तीर्थ भ्रष्ट हो रहे थे, उनके अधिष्ठाता देवता अन्तर्धान हो गये थे। ऐसे अवसर पर उन्होंने भक्ति का मार्ग राजमार्ग के समान प्रशस्त बनाया और उस पर उन सबको भी चलने के लिए आमन्त्रित किया जो धर्म के अधिकारी नहीं समझे जाते थे। इस प्रकार हिन्दू ही नहीं कुछ मुसलमानों ने भी भक्ति का यह सहज मार्ग ग्रहण किया और कृष्ण-भक्ति के आन्दोलन को व्यापकता प्रदान की।[१] पुष्टिमार्ग की यह नवचेतना निःसन्देह ही बड़ी मोहक थी। इसने वात्सल्य एवं शृंगारमयी भक्ति की धारा को उत्तर भारत में बड़े वेग से प्रवाहित किया।

तीसरा व्यक्तित्व है चैतन्य महाप्रभु का। वल्लभाचार्य के समकालीन चैतन्य महाप्रभु ने 'चैतन्य सम्प्रदाय' या 'गौड़ीय सम्प्रदाय' की स्थापना द्वारा भगवान कृष्ण के माधुर्य भाव को प्रस्फुरित कर समाज में नवीन जागरूकता उत्पन्न की। विरहाकुल अनुभूतियों, तन्मय भावनाओं एवं मधुर कल्पनाओं से ओत-प्रोत चैतन्य सम्प्रदाय में कृष्ण-भक्ति का मधुर और सरस भाव विशेष उल्लेखनीय है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने १६वीं शताब्दी के मध्य में राधा-कृष्ण की मधुरा-भक्ति का प्रचार बंग देश से प्रारम्भ किया और धीरे-धीरे उसका प्रभाव व्रज और राजस्थान आदि स्थानों में भी फैल गया। सदियों से शैव, शाक्त और तान्त्रिक विचारों से जकड़ी हुई बंग-भूमि महाप्रभु चैतन्य के सात्विक जीवन और भक्ति-पूर्ण उपदेशों के कारण राधा-कृष्ण की रागानुगा-भक्ति के रंग में रँग गयी।[२] अतः महाप्रभु ने राधा को प्रमुख स्थान देकर मधुरभाव की रागानुगा-भक्ति का प्रचार किया। उनके मतावलम्बियों ने व्रजमण्डल में अपने केन्द्र स्थापित किये और जनसमाज तथा तत्कालीन कवियों को प्रभावित किया।

इनके अतिरिक्त अष्टछाप कवियों के समकालीन स्वामी हरिदास ने राधा-कृष्ण की युगलछवि की उपासना-सेवा सखी-भाव से कर निम्बार्कमत की अवान्तर-शाखा के रूप में 'सखी सम्प्रदाय' की स्थापना की। हरिदास संगीतज्ञ एवं

---

१. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४५८
२. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी : रीतिकालीन कविता एवं शृंगार रस का विवेचन, पृ० २१२

विद्वान थे, उन्होंने बादशाह अकबर तथा तानसेन जैसे अन्य कलाविदों एवं राजा-महाराजाओं को प्रभावित किया।[1] उन्होंने कृष्ण-भक्ति आन्दोलन के प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। राधा-कृष्ण के आनन्दविहार का अवलोकन सदा सखी-भाव से करनेवाले भक्तों ने 'सखी सम्प्रदाय' या 'हरिदासी सम्प्रदाय' में दीक्षित होकर कृष्ण-भक्ति को प्रसारित किया। "आज भी इनकी गद्दी ब्रज में चली आ रही है।"[2] वृन्दावन में श्री बाँकेबिहारीजी का मन्दिर हरिदासजी के समय का ही बना हुआ है।

अष्टछाप कवियों के समय में स्वामी हितहरिवंश ब्रज में एक और सम्प्रदाय का प्रचार कर रहे थे, जो 'राधावल्लभीय सम्प्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध है। प्रथम ये माध्व सम्प्रदायी थे, पर बाद में वृन्दावन आकर राधावल्लभ की स्थापना कर पूजा-अर्चना करने लगे। इन्होंने कर्माचार और ज्ञान का खण्डन कर प्रेम-भक्ति मार्ग का प्रचार किया तथा राधा और कृष्ण की युगल-छवि की उपासना का उपदेश दिया। इनके मत में युगलछवि की आराधना-पूजा सभी कष्टों का निवारण करनेवाली तथा शीघ्र फलदायिनी है। इनका कथन है शृंगारमयी प्रवृत्तियाँ मानव को गिराती हैं, पर उनसे बचना भी कठिन है, इसलिए लौकिक वासना को राधा-कृष्ण की शृंगारी भावनाओं में तिरोहित कर देना ही अधिक श्रेयस्कर है। इस सम्प्रदाय के अनुयायी भक्तों ने प्रेम को केवल संयोग-लीलाओं का ही अवलम्बन लिया है, वियोग का नहीं। राधा-कृष्ण को कुंजलीला के मनन के आनन्द को इन्होंने 'परम रस माधुरी भाव' कहा है। युगलछवि के अंकन के कारण इस सम्प्रदाय ने कृष्ण-भक्ति के स्वरूप को काव्य और कला के क्षेत्र में अत्यधिक प्रसार दिया।

संक्षेप में उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों तथा विशिष्ट सम्प्रदायों ने ज्ञान तथा योगमार्ग की नीरसता, निर्गुण, सन्तों की भौतिक शृंगारी जीवन के प्रति अनास्था, मुसलमानों के लगातार हो रहे अत्याचारों की विभीषिका आदि के विपरीत कृष्ण के मनोरंजक एक शृंगार स्वरूप की स्थापना कर जनता को प्रभावित किया। वैष्णव-भक्ति सम्प्रदायों में वृन्दावन-बिहारी श्रीकृष्ण ही रसिक किशोर रूप में वर्णित हुए हैं। सम्पूर्ण चराचर जगत इन्हीं रसिक युगल-किशोर

---

१. जुगलनाम सों नेम जपत नित कुंज बिहारी।
अवलोकत रहे केलि सखी सुध को अधिकारी॥
नृपति द्वार ठाढे रहे दरसन आसा जास की।
आसा धीर उथोत कर, रसिक छाप हरिदास की॥
प्रियादास : भक्तमाल, पृ० ६०७

२. डॉ० हरवंशलाल शर्मा : सूर और उनका साहित्य, पृ० १०१

का प्रतिबिम्ब है। श्रीकृष्ण के तीन स्वरूपों अर्थात् वृन्दावन-विहारी कृष्ण, मथुरावासी कृष्ण और द्वारिकावासी कृष्ण में प्रथम का विशेष महत्त्व है। वृन्दावन-विहारी कृष्ण प्रेम-माधुर्य की साक्षात मूर्ति बन गोप-गोपियों के साथ लीलारत रहते हैं। राधावल्लभ के रूप में रसराज शृंगार के सौन्दर्य का विस्तार करते हैं, इसलिए कृष्ण-भक्तों में यह माना गया है कि कृष्ण का जो स्वरूप वृन्दावन में द्रष्टव्य है वह अन्यत्र दुर्लभ है।[1] व्रजमण्डल में प्रत्येक स्थान, श्रीकृष्ण भगवान का क्रीड़ा-स्थल होने के कारण पवित्र तीर्थ-स्थल माना जाता है। भारतीय इतिहास में व्रज के पुनीत क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है।[2] इस क्षेत्र में विकसित संस्कृति की छाप समय-समय पर सर्वत्र फैली है। कृष्ण-भक्ति के स्वरूप को प्रचारित करनेवाले अनेक सम्प्रदायों का विकास व्रज-क्षेत्र में ही हुआ है। यह वात आनुषंगिक थी कि इन सम्प्रदायों को विकसित होने के लिए वह क्षेत्र मिला जो उनके उपास्य देव की जन्मस्थली एवं लीलास्थली भी थी। अस्तु राजनीतिक, धार्मिक, व्यापारिक आदि कारणों से व्रज-मण्डल के सम्पर्क में आनेवाले अन्य प्रदेशों के सामाजिक भी कृष्ण-भक्ति के तत्कालीन स्वरूप से प्रभावित हुए। व्रज-मण्डल की लीलाएँ विस्तार पाने लगीं। मुगल दरबार के सम्पर्क में आनेवाले राजस्थान के राजा-महाराजा मथुरा एवं वृन्दावनवासी आचार्यों से प्रभावित होकर उनका शिष्यत्व ग्रहण करने लगे, तथा परोक्ष एवं प्रत्यक्ष रूप से कृष्ण-भक्ति आन्दोलन को अपने साम्राज्य में प्रश्रय देने लगे। कृष्ण की बाल, किशोर तथा यौवन की विभिन्न लीलाओं ने समाज में जीवन्त आस्थाओं को प्रश्रय दिया। कृष्ण-भक्ति आन्दोलन के प्रसारक आचार्यों की छाप द्वारा भक्त कवियों ने कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का मनोमुग्धकारी अंकन कर काव्य और संगीत की रसधारा वहा दी। कृष्ण के साकार स्वरूप को वल मिला। मूर्तिकार और चित्रकार अपनी छनी और तूलिका लेकर कृष्ण की सरस लीलाओं का चित्रांकन करने में संलग्न हो गये।

राजस्थान में आन्दोलन का सूत्रपात

राजस्थान में कृष्ण-भक्ति आन्दोलन के सूत्रपात का समय अनिश्चित है, किन्तु कृष्ण-चरित्र की मधुरता एवं सहज ग्राह्यता के कारण व्रजमंडल, गुजरात, काठियावाड़ आदि के उपरान्त राजस्थान ही ऐसा प्रान्त है जहाँ उपर्युक्त प्रभाव अधिक रहा है। "शैवधर्म तथा जैनधर्म को आत्मसात् करनेवाले राजस्थान ने

---

१. देखिए, विजयेन्द्र स्नातक द्वारा लिखित भूमिका : हिन्दी साहित्य में कृष्ण, पृ० १५

२. देखिए, श्री कृष्णदत्त : वाजपेयी : व्रज का इतिहास

कृष्ण के सगुण माधुर्यपूर्ण स्वरूप को धर्म, कला, साहित्य आदि के द्वारा जिस खूबी के साथ अपनाया है वह अविस्मरणीय है।"[१] अनेक शिलालेखों एवं मूर्तियों के आधार पर राजस्थान में वैष्णव धर्म की प्राचीनता का परिचय मिलता है,[२] किन्तु आन्दोलन के रूप में जब से वह प्रसारित हुआ; वही विचारणीय है।

१३वीं शताब्दी से १६वीं शताब्दी तक अपनी पराकाष्ठा तक पहुँचनेवाली कृष्ण-भक्ति, जिसको १७वीं शती से धर्म में प्रमुख स्थान दिया जाने लगा था, वह राजस्थान को भी प्रभावित किये विना न रह सकी। इस दृष्टि से मीराबाई का योगदान विशेष उल्लेखनीय है। मीराबाई ने अपने समय (१४९२-१५४६) में कृष्ण-भक्ति के जिस स्वरूप को अपनाया था, वह किसी आन्दोलन विशेष से तो प्रत्यक्ष रूप में सम्बन्धित नहीं है, किन्तु अनेक सम्प्रदायों और मतों का प्रभाव इस बात को स्पष्ट करता है कि राजस्थान में निर्गुण और सगुण धारा का विस्तृत प्रचार होने लगा था।[३]

"इतिहास-सिद्ध मीराबाई का जीवनवृत्त प्रत्यक्ष कर देता है कि प्रतिष्ठित क्षत्रिय-कुल की कन्या होते हुए भी पितृ-कुल में ही उन्हें कृष्ण-भक्ति की दीक्षा मिल चुकी थी। उनके पितामह राव दूदा जी प्रसिद्ध वैष्णव कवि थे। उनकी माता भी वैष्णव भक्तों के कुल से ही आयी थी। उनके कुटुम्ब का वातावरण कृष्ण-भक्ति से ओत-प्रोत था। इसलिए वे अपने शैशव-काल से ही कृष्ण की भक्ति में रँग चुकी थी।[४] मीरा के उपास्यदेव का रूप कृष्ण का लीला-रूप है तथा उनकी साधना भी वैष्णव मत के अन्तर्गत माधुर्य-भक्ति से प्रभावित है। मीरा ने कृष्ण की कल्पना युवारूप में की थी, इसलिए चैतन्य की विरहाकुल अनुभूतियाँ, तन्मयभावना और मधुर कल्पनाओं का योग मीरा की उपासना में सहज ही द्रष्टव्य है। किसी न किसी रूप में अपने प्रियतम कृष्ण को उन्होंने अनेक मतों के परिपार्श्व में देखा है।" गिरिधरनागर के सौन्दर्यपूर्ण रूप में उन्होंने अनेक सम्प्रदायों के प्रभाव से अनेक परिवर्तन और सामंजस्य किये। कहीं उनमें निर्गुण ब्रह्म की शक्ति का आरोप है तो कहीं चढ़ती वयस और बाँके नयनोंवाले जोगी में कृष्ण की कल्पना साकार हो उठी है—सुन्दर रूपवान और लीलाप्रिया युवक कृष्ण उनकी कल्पना के साकार आराध्य हैं, जिन पर अनेक सम्प्रदाय के आराध्यों की गौण छाप है।[५] मीराबाई ने कृष्ण के अनन्य प्रेम में सांसारिक लोकलाज खोकर

---

१. रतनचन्द्र अग्रवाल : राजस्थान में विष्णु पूजा, राजस्थान भारती, भाग-४, पृ० ३६
२. देखिए, एपिग्राफिका इण्डिका, भाग १६, पृ० २७
३. „ डॉ० श्रीकृष्णलाल : मीराबाई, पृ० १४३-५९
४. „ मीरा स्मृति ग्रन्थ, पृ० २१९
५. डॉ० सावित्री सिन्हा : मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, पृ० १२०

राजस्थान में कृष्ण-भक्ति की जो अजस्र धारा वहायी उसके फलस्वरूप बाहर से आनेवाले आचार्यों को कृष्ण-भक्ति-आन्दोलन की जड़ें जमाने के लिए यहाँ भाव-भूमि प्रायः तैयार मिली। मीरावाई का नाम भारत के प्रधान भक्तों में है। काव्य एवं संगीत के द्वारा कृष्ण-भक्ति को उन्होंने राजस्थान के कोने-कोने से लेकर गुजरात तक जिस सरलता एवं सादगी से प्रसारित किया वह अविस्मरणीय है।

प्रसार के कारण

व्रजमंडल के उपरान्त राजस्थान भी ऐसा प्रमुख प्रदेश रहा है जहाँ कृष्ण-भक्ति आन्दोलन ने अपनी जड़ें सुदृढ़ कीं तथा प्रचार एवं प्रसार में सक्रिय भाग लिया। राजस्थान में उसके प्रसारित एवं पीठ स्थापित होने के निम्नलिखित कारण हैं :

अनुकूल वातावरण

प्राचीन समय से ही राजस्थान में वैष्णव-भक्ति का प्रचार रहा है। "नगरी (चित्तौड़गढ़) के समीपस्थ घोसुण्डी नामक स्थान से प्राप्त द्वितीय शती ई० पू० के शिलालेख में संकर्षण वासुदेव की पूजा का वर्णन मिलता है। अतः शुंगकाल में मध्यमिका (नगरी) वैष्णव धर्म का एक प्रमुख केन्द्र वन चुकी थी।"[१] डॉ० भण्डारकर के अनुसार नगरी की नारायण-वाटिका भारतवर्ष भर में अपने ढंग का एक ही अवशेष है। यह प्राचीनतम वैष्णव मन्दिर कहा जा सकता है।[२] जोधपुर के निकट मण्डोर के गुप्तकालीन विशाल शिलाफलक प्राप्त हुए हैं जिन पर गोवर्धन-धारण, दधि-मंथन धेनुकवध, कालियामर्दन आदि लीलाएँ अंकित हैं।[३] राजस्थान की गुप्तकालीन कृष्ण सम्बन्धी मूर्तियों का विस्तृत अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उस समय रूपवास (भरतपुर) रंगमहल (बीकानेर) तथा मण्डोर (जोधपुर) आदि स्थान कृष्ण एवं वैष्णव विचारधारा के प्रमुख केन्द्र अवश्य रहे होंगे।[४] मेवाड़ एवं जोधपुर में वैष्णव धर्म के प्रति पहले से ही आस्था रही है। आन्दोलन के प्रसार एवं प्रचार के लिए राजस्थान में अनुकूल वातावरण था। यहाँ मीरावाई का व्यक्तित्व ऐसा रहा है जिसने कृष्ण-भक्ति की रसधार में

---

१. रत्नचन्द्र अग्रवाल : राजस्थान में विष्णुपूजा, राजस्थान-भारती, भाग-४ अंक ४, पृ० ३
२. शोधपत्रिका, वर्ष-४, अंक-३, पृ० ४१-२
३. आर्किय्लोजीकल सर्वे रिपोर्ट, १९०५-६, पृ० १३५
४. देखिए, रत्नचन्द्र अग्रवाल : राजस्थान में विष्णुपूजा, राजस्थान-भारती, भाग-४, पृ० ३६

राजस्थान को ही नहीं वरन् गुजरात और ब्रजमण्डल को भी रस-निमग्न किया। उन्होंने यहाँ ऐसी अनुकूल भावभूमि तैयार की जिससे भक्ति-आन्दोलन को राजस्थान में जड़ें जमाने में तनिक भी कठिनाई नहीं पड़ी। आचार्य और मठाधीश औरंगजेब की कट्टर नीति से भयभीत होकर अपने-अपने आराध्य-स्वरूपों को लेकर ऐसे स्थान की ओर चल पड़े जहाँ पहले से ही अनुकूल भावभूमि तैयार थी। राजस्थान के राजाओं का शौर्य तथा उनकी धर्म-रक्षण की प्रवृत्ति, कृष्ण-भक्ति के प्रति विशेष लगाव तथा मीराबाई द्वारा अनुकूल वातावरण का निर्माण आदि ऐसे कारण हैं जिनके फलस्वरूप राजस्थान में कृष्ण-भक्ति आन्दोलन की जड़ें दृढ़ हो सकीं।

ब्रजमण्डल का प्रभाव

१३वीं शताब्दी के पश्चात् से ही ब्रजमण्डल कृष्ण-भक्ति का केन्द्र बनने लगा था और १७वीं शती के मध्य तक तो वह उसका सर्वोच्च गढ़ बन गया।[1] कृष्ण-भक्ति का प्रकाश चारों ओर विकीर्ण होने लगा, जिसमें राजस्थान अपनी सांस्कृतिक उर्वरा भाव-भूमि के कारण तथा ब्रजमण्डल की सीमा से लगा होने के कारण अधिक प्रभावित हुआ। राजस्थान का बहुत-सा अंश (जैसे डीग, कामवन, भरतपुर, नगर आदि) प्राचीन समय से ही ब्रज के ८४ कोस के विस्तार में रहा है। सामान्य जनता की धार्मिक प्रवृत्ति, व्यवसाय तथा राजनीतिक सम्पर्कों के कारण राजस्थान का ब्रजमण्डल से धीरे-धीरे सम्पर्क स्थापित होने लगा। १६वीं शताब्दी में अकबर की धार्मिक सहिष्णुता के कारण ब्रज में कृष्ण-भक्ति आन्दोलन के प्रसार में किसी प्रकार व्यवधान नहीं पड़ा, बल्कि उसने विभिन्न प्रवर्तकों का आदर किया और उन्हें जागीरें देकर प्रोत्साहित किया। "श्री विट्ठलनाथ के अनेक शिष्य थे। भारत-सम्राट् अकबर ने उक्त गोस्वामीजी से प्रसन्न होकर उन्हें गोवर्धन और गोकुल की भूमि भेंट दी थी।"[2] हरिदास-जैसे संगीतज्ञ से बादशाह अत्यधिक प्रभावित था। १५६२ ई० से राजा भगवानदास, कुँ० मानसिंह जयपुर तथा जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर आदि राज्यों के राजाओं ने अकबर की आधीनता स्वीकार की और बादशाह को अपनी बहन-बेटियाँ देकर मुगलदरबार से सम्बन्ध स्थापित किया। मुगलदरबार में रहकर शाही मनसबदार बनने एवं साम्राज्य की सेवा करने की जो परम्परा चली, वह आगे भी चलती रही।[3] उसके फलस्वरूप राजस्थान के अधिकतर राजाओं को, शाही दरबार में आगरा जाने

---

१. देखिए, कृष्णदत्त वाजपेयी : ब्रज का इतिहास
२. डॉ० दीनदयाल गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, पृ० १२७
३. देखिए, डॉ० रघुवीरसिंह : पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ० ६३

के कारण, ब्रजमण्डल से सम्पर्क स्थापित करने और विभिन्न आचार्यों का शिष्यत्व ग्रहण करने या उनसे प्रभावित होने का अवकाश मिलता रहा। वे अपने साम्राज्यों में मन्दिर बनवाकर तथा गोस्वामियों को जागीरें देकर कृष्ण-भक्ति की परम्परा को राजस्थान में प्रसारित करने में योग देने लगे। राजस्थान पर मुगल साम्राज्य की सर्वोपरि सत्ता की स्थापना तथा राजाओं और धार्मिकों के ब्रजमण्डल के विशेष सम्पर्क के कारण यहाँ के सारे ही विभिन्न राज्यों की राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विचारधाराओं पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ने लगा, जिससे राजस्थान में पुनः नवजीवन के अंकुर फूटने लगे तथा नवीन सम्मिलित राजस्थानी संस्कृति का उद्भव हुआ।[१] धार्मिक स्थलों में कृष्ण-भक्ति और सामन्ती जीवन में कृष्ण की शृंगारपरकता का विशेषतया प्रसार होने लगा, जिसका श्रेय ब्रजमण्डल के प्रभाव और मुगलदरबार के सम्पर्क को दिया जा सकता है।

मूर्तियों का संरक्षण

औरंगजेब की धार्मिक असहिष्णुता तथा हिन्दूविरोधी कट्टर नीति के कारण सुप्त धार्मिक प्रवृत्ति फिर से जाग उठी। औरंगजेब ने समूचे मुगल साम्राज्य के हिन्दू तीर्थों में समय-समय पर लगनेवाले धार्मिक मेलों को पूर्णतया बन्द कर दिया तथा नवीन मन्दिर बनाने पर रोक लगा दी। "१६६९ ई० की एक सर्वव्यापी आज्ञा द्वारा इस्लामेतर धर्मावलम्बियों के सारे मन्दिर, पूजा-घरों और पाठशालाओं को ध्वस्त कर देने तथा धर्म-ग्रन्थों के पठन-पाठन या पूजा-पाठ और धार्मिक कृत्यों के सार्वजनिक रूप से किये जाने को पूर्णतया दबा देने का आदेश दिया गया।"[२] जिसके फलस्वरूप राजपूत-मुगल-सम्बन्ध टूटने लगे तथा ब्रज के मन्दिरों की तोड़-फोड़ होने लगी। ऐसी परिस्थिति में "ब्रज के आचार्य और मन्दिरों के अन्य अधिकारीगणों ने उन विशाल भव्य-सुन्दर मन्दिरों का मोह छोड़ दिया, और वहाँ की पूज्य मूर्तियों को विनाश से बचाने का वे आयोजन करने लगे।"[३] राजस्थान ही ऐसा प्रमुख प्रदेश था जहाँ उन्हें शरण मिल सकती थी। अतः आराध्यदेव की मूर्तियाँ लेकर वे परिचित राजाओं के यहाँ शरण लेने के लिए चल पड़े। ब्रजमण्डल का गढ़ टूट गया। वहाँ की कृष्ण-भक्ति परम्परा ने राजस्थान में प्रश्रय प्राप्त किया। मीरा द्वारा तैयार की गयी भावभूमि पर विभिन्न राजाओं द्वारा प्रज्ज्वलित कृष्ण-भक्ति आन्दोलन तीव्र वेग से प्रतिष्ठित होकर प्रसार पाने लगा।

---

१. देखिए, डॉ० रघुवीरसिंह : पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ० ६५
२. ,, वही, पृ० १२९
३. ,, वही, पृ० १३०

शृंगारपरक सामन्ती जीवन

"१७वीं शताब्दी विक्रमी में मुगल वैभव अपनी चरमसीमा पर था—उस समय के स्थापत्य, साहित्य एवं चित्रकला पर तत्कालीन अपार वैभव और अतुल ऐश्वर्य की गहरी छाप पड़ी है।"[1] मुगलप्रभाव एवं शान्ति-समृद्धि के कारण रीतिकाल में राजस्थान के राजदरवारों में वैभव-विलास का जीवन प्रज्ज्वलित हो उठा। औरंगजेव की कट्टर नीति और कलाओं के प्रति उदासीनता के कारण अनेक कलाकार छोटे-छोटे राजदरवारों में आश्रय पाने लगे।[2] आश्रयदाताओं की भोग-विलास की प्रवृत्ति के कारण उनकी रुचि शृंगार की ओर विशेष थी। उनका रहन-सहन, खान-पान, हास-विलास तथा कलात्मक परिवेश शृंगारी भावनाओं से ओतप्रोत था। ऐसी स्थिति में राजस्थान में पल रही सामन्ती शृंगारपरक संस्कृति को राधा-कृष्ण के माधुर्यभाव ने और भी भभका दिया। राधा-कृष्ण का प्रेममय स्वरूप भौतिक शृंगारी प्रवृत्तियों के वहाने नायक-नायिकारूप में प्रस्तुत किया जाने लगा, जो विलासी राजाओं, सामन्तों, जागीरदारों एवं कलाकारों की दमित वासनाओं की परितृप्ति का हेतु बना। इस प्रकार राधा-कृष्ण का भक्तिमय स्वरूप नायक-नायिकाभेद में परिवर्तित होकर कलाओं के माध्यम से प्रसार पाने लगा, जिसमें राजस्थान के शृंगारपरक सामन्ती जीवन का विशेष योगदान है।

संक्षेप में अकवर की धार्मिक सहिष्णुता के कारण मुगल-राजपूत-सम्वन्ध वढ़े, राजस्थान का व्रजमण्डल से और अधिक सम्पर्क स्थापित होने लगा तथा औरंगजेव की कट्टर नीति के कारण सम्वन्ध-विच्छेद होने लगा जिसके फलस्वरूप व्रजमण्डल का धार्मिक गढ़ टूटकर राजस्थान में धार्मिक प्रवृत्ति को प्रसार देने लगा। राजा स्वतन्त्र होकर अपने यहाँ दरबारी जीवन भोगने लगे और राधा-कृष्ण की रंगरेलियों के बहाने शृंगारी भावों को कलाओं के माध्यम से प्रचारित करने लगे।

प्रवर्तक और प्रश्रयदाता

'राजस्थान में कृष्ण-भक्ति आन्दोलन को प्रसारित करने का श्रेय पुष्टिमार्गी आचार्यों को अधिक रहा है। पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक श्री वल्लभाचार्यजी तथा उनके वंशजों से राजस्थान के विभिन्न राजा और सामन्त दीक्षित होते रहे हैं तथा अपने-अपने साम्राज्य में कृष्ण-भक्ति आन्दोलन को प्रश्रय देते रहे हैं।

मेवाड़ में मीरावाई ने कृष्ण-भक्ति की जो परम्परा स्थापित की थी, वह जन-

---

१. डॉ० वच्चनसिंह : रीतिकालीन कवियों की प्रेम-व्यंजना, पृ० ९

२. देखिए, डॉ० रघुवीरसिंह : पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ० १३५

समाज में आदर पा चुकी थी। मीरा के विरोधी होने पर भी मेवाड़ के राणा पुष्टि-सम्प्रदाय के विस्तृत प्रभाव को इन्कार नहीं कर सके। "मेवाड़ में पुष्टि-सम्प्रदाय को प्रश्रय महाराणा जगतसिंह (१६२८-१६५२ ई०) के राज्यकाल में ही मिल गया था, इन्होंने गोकुल में गोस्वामी गिरधारीलाल से सत्संग किया तथा उन्हें आसोटिया ग्राम भेंट किया था।"[१] मेवाड़ में कृष्णभक्ति-आन्दोलन का प्रत्यक्ष प्रभाव नाथद्वारा में श्रीनाथजी के स्वरूप के स्थापन से ही मानना चाहिए। सिंहासनारूढ़ होने के कुछ वर्ष उपरान्त से ही औरंगजेब अपनी अनुदार नीति वरतने लगा। १६६९ ई० की एक सर्वव्यापी आज्ञा द्वारा उसने इस्लामेतर अन्य धर्मावलम्बियों के सारे मन्दिर, पूजाघरों और पाठशालाओं को ध्वस्त कर देने तथा धर्म-ग्रन्थों के पठन-पाठन और धार्मिक कृत्यों के सार्वजनिक रूप से किये जाने को पूर्णतया दबा देने का आदेश दिया।"[२] मन्दिरों की तोड़-फोड़ की इस आज्ञा के मिलते ही समाज में तहलका मच गया। "ब्रजप्रदेश के कुछ मन्दिरों के पुजारियों तथा उनके भक्तों ने उन विशाल भव्य-सुन्दर मन्दिरों का मोह छोड़ दिया और वहाँ की पूज्य मूर्तियों को विनाश से बचाने का वे आयोजन करने लगे। गोवर्धन पर्वत पर स्थित वल्लभ-सम्प्रदायवालों के गिरिराज के प्रमुख मन्दिर के श्रीनाथजी के विग्रह को लेकर वहाँ के गोस्वामी (श्री दामोदरजी तथा उनके चाचा गोविन्दजी) सितम्बर ३०, १६६९ ई० को गोवर्धन से निकले। छिपते-छिपते वे बूँदी, कोटा, पुष्कर, किशनगढ़ तथा जोधपुर भी गये, परन्तु औरंगजेब के भय से उस मूर्ति को अपने राज्य में रखना किसी ने स्वीकार नहीं किया। अन्त में राणा राजसिंह ने श्रीनाथजी की इस मूर्ति का मेवाड़ में सहर्ष स्वागत किया और १० फरवरी, १६७२ ई० के दिन सीहाड़ गाँव में मूर्ति की स्थापना की गयी जो तब से ही नाथद्वारा कहलाने लगी। इसी प्रकार गोवर्धनवाले द्वारकाधीश की मूर्ति को भी मेवाड़ ले जाकर कांकरौली में उसकी प्रतिष्ठा की गयी।"[३]

इस प्रकार शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के आचार्य तथा वैष्णव भक्तों के परम आराध्य-स्वरूप 'श्रीनाथजी' के विग्रह के स्थापन से मेवाड़ वैष्णव धर्म का केन्द्र बन गया,[४] जिसका प्रकाश राजस्थान में चारों ओर प्रकीर्ण होने लगा। श्री वल्लभाचार्य, श्री विट्ठलनाथ तथा अष्टछाप कवियों के समय से ही वल्लभ-सम्प्रदाय में आठ स्वरूपों की विशेष सेवा-पूजा होती आयी है। उसमें परम सेव्य-स्वरूप श्रीनाथजी

---

१. फाल्गुन गोस्वामी : राजस्थान में पुष्टिमार्ग, शोधपत्रिका, भाग-११, अंक-२, पृ० ७४
२. डॉ० रघुवीरसिंह : पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ० १२९
३. वही, पृ० १३०
४. सं० डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, षष्ट भाग, पृ० ८

का है। श्री विट्ठलनाथ ने अपने अन्त समय में उनकी सेवा अलग-अलग अपने सात पुत्रों को सौंप दी। बाद में औरंगजेब के अत्याचार से वल्लभ वैष्णव इन्हें जगह-जगह देशी रियासतों में ले गये। ये आठ स्वरूप इस प्रकार हैं[1]:

स्वरूप	सेवा का वर्तमान स्थान	
१. श्री नाथजी	नाथद्वारा	(राजस्थान)
२. श्री मथुरेशजी	कोटा[2]	(,,)
३. श्री विट्ठलनाथजी	नाथद्वारा	(,,)
४. श्री द्वारकेशजी	कांकरौली	(,,)
५. श्री गोकुलनाथजी	गोकुल	(उ० प्र०)
६. श्री गोकुल चन्द्रमाजी	कामवन	(राजस्थान)
७. श्री मदनमोहनजी	,,	(,,)
८. श्री बालकृष्णजी	सूरत	(गुजरात)

उपर्युक्त विभाजन से ज्ञात होता है कि १७वीं शती के मध्योपरान्त आठ स्वरूपों में से ६ राजस्थान में ही स्थापित किये गये, जिससे आचार्यों के राजस्थान के राजाओं से पूर्वपरिचय का सहज ही ज्ञान होता है। उपर्युक्त पीठों के माध्यम से कृष्ण-भक्ति की परम्परा राजस्थान में तीव्रता से विकीर्ण हुई, जिसमें भी मेवाड़ का इतिहास वीरता, स्वतन्त्रता की रक्षा, कलाओं और धर्म के संरक्षण हेतु सदा अग्रणी रहा है।

उपर्युक्त पीठों के अतिरिक्त श्री महाप्रभुजी, गोस्वामी आदि की बैठकें तथा गोस्वामी-कुल द्वारा पुष्ट किये गये राजा-महाराजाओं तथा धनी-मानी नागरिकों द्वारा निर्मित देवालयों द्वारा सम्प्रदाय की समय-समय पर वृद्धि होती रही, जिससे राजस्थान के जनमानस में कृष्ण-भक्ति की परम्परा पूर्णतः जम गयी।[3]

मेवाड़ के उपरान्त किशनगढ़ में वल्लभ-सम्प्रदाय का पूर्ण प्रभाव रहा है। राज्य के संस्थापक राजा किशनसिंह (१६०९) वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित थे।[4] वे नृत्यगोपाल की पूजा किया करते थे। राजा रूपसिंह (१६४३-५८) वल्लभ-सम्प्रदाय के गुरु के प्रपौत्र श्री गोपीनाथ के शिष्य थे। उन्होंने साम्राज्य में 'कल्याणराय' की पूजा की स्थापना कर समाज में वैष्णव धर्म को प्रसारित किया।[5]

---

१. डॉ० दीनदयाल गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, पृ० ५१४
२. १९५७ ई० में पुजारी विग्रह लेकर जतीपुरा चले गये, पर न्यायालय की आज्ञा से विग्रह फिर कोटा लाया जा रहा है।
३. देखिए, फाल्गुन गोस्वामी : राजस्थान में पुष्टिमार्ग, शोध पत्रिका, भाग-११, अंक २, पृ० ७
४. ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेंण्टिग, पृ० ७
५. वही, पृ० ८

किशनगढ़ में पुष्टिमार्ग का इतना प्रभाव था कि "बादशाह शाहजहाँ ने राजा रूपसिंह को वल्लभाचार्यजी का अकबरकालीन चित्र भेंट किया।"[१] वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित होने की परम्परा राज्य में आगे तक चलती रही। राजा सावन्तसिंह अर्थात् कवि नागरीदासजी ने गोपीनाथजी के प्रपौत्र 'रणछोड़जी' द्वारा दीक्षा ग्रहण की और अन्त में राजकाज का सारा कार्य त्यागकर वृन्दावन वास किया।[२]

किशनगढ़ के राजा ही नहीं, वरन् रानियों, पासवानों, राजकुमारियों आदि ने भी पुष्टिमार्गीय कृष्ण-भक्ति आन्दोलन को बढ़ावा दिया। "नागरीदास की माता कामवन ने श्रीमद्भागवत का छन्दोबद्ध अनुवाद किया।"[३] उनकी बहन सुन्दरकुँवरि तथा प्रेयसी 'बणीठणी' ने कृष्ण-भक्तिपरक रचनाएँ कर तथा पूजा-पाठ, मन्दिर निर्माण द्वारा उक्त आन्दोलन को प्रसारित किया।

जयपुर में राजा मानसिंह के समय से ही वल्लभ-सम्प्रदाय का प्रभाव रहा है। "विट्ठलदास का परिचय भारत-सम्राट अकबर, बीरबल, राजा मानसिंह आदि से था।"[४] वृन्दावन में राजा द्वारा निर्मित गोविन्ददेवजी का मन्दिर उनकी कृष्ण-भक्ति का परिचायक है। बाद में औरंगजेब की कट्टर नीति के कारण मन्दिर की मूर्ति आम्बेर लायी गयी, जो आज भी गोविन्ददेवजी के मन्दिर में पूजा हेतु प्रतिष्ठित है। जयपुर में वल्लभ-सम्प्रदाय का पूर्ण प्रभाव राजा प्रतापसिंह के समय (१७७९-१८०३) में रहा। "वे कृष्ण-भक्त और पुष्टिमार्गी उपासना के अनुयायी थे।"[५] उनके समय में श्री गोकुलनाथजी (चतुर्थ स्वरूप) जयपुर में ही विराजते थे।[६] उपर्युक्त तीनों स्वरूप जयपुर कब पधारे, यह अनिश्चित है, पर लगभग, १०० वर्ष तक ये स्वरूप यहाँ रहे जिससे कृष्ण-भक्ति की रसधार जन-समाज को परिप्लावित करती रही।[७] समय-समय पर राजाओं तथा रानियों द्वारा मन्दिरों का निर्माण होता रहा जो उनकी धार्मिक प्रवृत्ति तथा कृष्ण-भक्ति

---

१. दीनदयाल गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ७५ (किशनगढ़ दरबार के संग्रहालय में द्रष्टव्य)
२. देखिए, फैयाजअली : भक्तवर नागरीदास (अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध), पृ० ७४
३. डॉ० सावित्री सिन्हा : मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, पृ० १७०
४. दीनदयाल गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० २४१
५. रामगोपाल विजयवर्गीय : राजस्थानी चित्रकला, पृ० २५
६. देखिए, गुजराती मासिक पत्र 'शुद्धाद्वैत भक्ति मार्तण्ड', वर्ष ५, अंक ७, पृ० ७९
७. देखिए, फाल्गुन गोस्वामी : राजस्थान में पुष्टिमार्ग, शोध-पत्रिका, भाग ११, अंक २, पृ० ८०

आन्दोलन का परिचायक है।

बीकानेर में कृष्ण-भक्ति की परम्परा प्रारम्भ से ही रही है। वार्ता-साहित्य से ज्ञात होता है कि बीकानेर के राजा पृथ्वीसिंह,[१] आशुकरण[२] तथा रानी दुर्गावती[३] आदि विट्ठलनाथ के शिष्य हो गये थे। वहाँ के बने अनेक मन्दिर कृष्ण-भक्ति परम्परा के साक्षी हैं। जयपुर के महाराजा रामसिंह महन्तों के प्रभाव में आकर पुष्टिमार्गी आचार्यों से अनवन कर वैठे, जिसके फलस्वरूप पंचम तथा सप्तम स्वरूप जयपुर छोड़कर सं० १९२३ में वीकानेर पधार गये जहाँ महाराजा सरदार सिंहजी ने उनकी आवभगत कर राजरत्न विहारीजी के कलात्मक मन्दिर में प्रतिष्ठित कर दिया।[४] इस प्रकार वीकानेर भी कृष्ण-भक्ति परम्परा के प्रचार में अग्रणी रहा है।

कोटा का राजवंश महारावल भीमसिंह (१७०५-१७२०) के समय में वल्लभ सम्प्रदायानुयायी हो गया था। "इन्होंने सं० १७६५ में बांरा में साँवलाजी का मन्दिर स्थापित किया था, तथा अपने महल, राजधानी आदि भगवान को अर्पित कर अपने-आप 'कृष्ण-दास' नाम धारण कर लिया और कोटा का 'नन्दग्राम' तथा शेरगढ़ का नाम 'बरसाना' रख दिया था।"[५] कोटा के निजी महलों में श्री व्रजनाथजी का पुष्टिमार्गीय मन्दिर परम्परा से स्थापित है। पुष्टि-मार्गीय सात पीठों में से प्रथम पीठ श्री मथुरेशजी की है जो कोटा में सैकड़ों वर्षों से कृष्ण-भक्ति परम्परा को आन्दोलित करती रही है। कोटा और बूंदी के राज-महलों में वने कृष्ण-लीला सम्वन्धी भित्तिचित्र तथा दुर्जनलालजी के समय में कोटा शैली में चित्रित एवं लिखित 'वल्लभोत्सव चन्द्रिका'[६] नामक सचित्र ग्रन्थ पुष्टिमार्गी प्रभाव के साक्षी हैं। इन्हीं कारणों से कोटा भी कृष्ण-भक्ति परम्परा का एक तीर्थ गिना जाता है।

कृष्ण-भक्ति आन्दोलन के प्रसार में जोधपुर का भी महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। राजा जसवन्तसिंह अर्थात् 'व्रजराज' ने उसे व्रज-भूमि ही बना दिया। श्री बाल-कृष्ण, श्री मदनमोहन, श्याम मनोहर आदि के मन्दिर जोधपुर की जनता को

---

१. २५२ वैष्णव की वार्ता, पृ० ४८२
२. वही, पृ० १९१
३. वही, पृ० ४८४
४. देखिए, फाल्गुन गोस्वामी : राजस्थान में पुष्टिमार्ग, शोध-पत्रिका, भाग ११, अंक-२, पृ० ८०
५. वही, पृ० ७८
६. दुर्जनलाल की आज्ञा से सं० १८६१ में चित्रित एवं लिखित यह ४५ पृष्ठों का ग्रन्थ अनोखा है। इसमें ३८ कलात्मक चित्र हैं जिनमें विभिन्न स्वरूपों के चित्र, उत्सवों के चित्र तथा आचार्यजी का चित्र उल्लेखनीय है।

भक्तिरस की धार में रस-मग्न करते रहे हैं।

अलवर व्रजभूमि के पास होने के कारण कृष्ण-भक्ति से अत्यधिक प्रभावित रहा है। अलवर राज्य के संस्थापक राजा प्रतापसिंह गोविन्ददेवजी के उपासक थे।[१] राजा बख्तावरसिंह स्वयं कृष्णोपासक भक्त कवि थे।[२] राजा विनयसिंह भक्त एवं कलाप्रेमी राजा थे। उन्होंने अनेक मन्दिरों का निर्माण तथा काव्य-ग्रन्थों का चित्रण करवाकर कृष्ण-भक्ति परम्परा का निर्वाह किया।

संक्षेप में, उदयपुर, कोटा, भरतपुर, किशनगढ़ आदि स्थान कृष्ण-भक्ति परम्परा के प्रमुख केन्द्र रहे हैं तथा जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, अलवर, बूँदी आदि स्थानों में आचार्यों, गोस्वामियों, पुजारियों आदि का पूर्ण सम्मान रहा है। स्थान-स्थान पर बने मन्दिर और उनकी जागीरें इस कथन की साक्षी हैं।

इतर प्रसारक

कृष्ण-भक्ति के प्रसार में साम्प्रदायिक आचार्यों एवं प्रश्रयदाता राजाओं और रानियों के अतिरिक्त अन्य प्रसारकों का भी योगदान महत्त्वपूर्ण है, जिनकी देन के आधार पर ही उसका स्वरूप आज दृष्टिगोचर होता है। इनमें कवि, चित्रकार एवं वास्तुकारों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। वास्तव में तो धर्माचार्यों के भावों को तथा राजा-रानियों की कल्पना को साकार स्वरूप प्रदान करनेवाले उपर्युक्त कलाकार ही थे।

राजस्थान में कृष्ण-भक्ति जिन कलात्मक माध्यमों के द्वारा प्रसारित हुई है, उनमें बाहर के कृष्ण-भक्त कवियों के काव्य का प्रभाव विशेष रहा है। 'श्रीमद्-भागवत्', 'गीतगोविन्द', 'विद्यापति पदावली', 'सूरसागर', 'रसिकप्रिया' आदि काव्यों ने राजस्थान की विभिन्न धार्मिक पीठों एवं राजदरबारों में पलनेवाली राधा-कृष्ण सम्बन्धी भक्ति तथा शृंगारिकता को अत्यधिक रूप से प्रभावित किया है। सच बात तो यह है कि राजस्थानी चित्रकला ने अधिकतर आधार ही उपर्युक्त ग्रन्थों को बनाया है। राजस्थान के कवियों तथा अन्य सन्त भक्तों के काव्य पर भी उपर्युक्त काव्यों का प्रभाव विशेष द्रष्टव्य है।

राजस्थान में कृष्ण-भक्ति की भावधारा को प्रसारित करने में मीराबाई का महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिनका विवेचन पीछे हो चुका है। भक्तिकाल से भी अधिक कृष्णपरक रचनाएँ रीतिकाल में रची गयीं। "कहने की आवश्यकता नहीं कि शृंगार की ही दिशा में रीतिकालीन कृष्ण-काव्य द्विविध रूप में सृजित हुआ। उसका एक स्वरूप भक्ति का था और दूसरा नायक-नायिकाभेद

---

१. राजगढ़ में गोविन्ददेवजी के मन्दिर का निर्माण कथन का साक्षी है
२. राधा-कृष्ण उपास है, बख्तावर निज नाम, बख्तेश : 'दानलीला वधूचरित'

का।"[1] मीराबाई के अतिरिक्त राजस्थान के अन्य प्रमुख कृष्ण-भक्त कवियों ने कृष्ण के रीतिकालीन शृंगारपरक नायक-नायिकाभेद को ही अधिक अपनाया। राजस्थान के राजदरबारों में आश्रय पानेवाले कवियों में बिहारी, मतिराम तथा पद्माकर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।[2] कुछेक राजा भी ऐसे हुए हैं जो स्वयं कृष्ण-भक्त और उच्चकोटि के कवि थे। इनमें किशनगढ़ के नागरीदास, जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह, जयपुर के ब्रजनिधि (प्रतापसिंह), अलवर के बख्तेश (बख्तावरसिंह) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। उपर्युक्त कवियों ने भक्तिपरक एवं शृंगारपरक रचनाएँ कर कृष्ण-भक्ति को राजस्थान में प्रसारित किया।

कवियों ने शब्दों के माध्यम से कृष्ण-काव्य की रचना कर कृष्ण-भक्ति को प्रसारित किया, और धार्मिक पीठों एवं राजदरबारों में कृष्ण-चरित्र तथा कृष्ण-काव्य को आधार बनाकर चित्रण करनेवाले असंख्य चित्रकारों ने रंग और रेखाओं के माध्यम से राधा-कृष्ण की लीलाओं का विस्तार किया। नाथद्वारा जैसे धार्मिक-स्थलों में श्रीनाथजी के प्राकट्य और उनके शृंगार सम्बन्धी विविध रूपों के असंख्य चित्र बनने लगे। "कलाकारों ने निष्ठापूर्वक श्रीनाथजी के विभिन्न उत्सवों के अनुकूल पिछवाइयाँ और भित्तिचित्र बनाना प्रारम्भ किया। दानलीला, मानलीला, रासलीला आदि की दृश्यावलियाँ कपड़े और कागज पर बनने लगीं। मन्दिर की यह सांस्कृतिक धारा हाटों और गलियों में बह चली।"[3] राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, काठियावाड़ आदि स्थानों से धार्मिक प्रवृत्ति के भक्तजन श्रीनाथजी के दर्शनार्थ आते थे और उनके विग्रह के चित्र और पिछवाइयाँ खरीदकर ले जाते थे। "इस प्रकार मथुरा से आये हुए भक्त चितेरों के साथ मेवाड़ की धार्मिक आस्था से परिपूर्ण गौड़ और जांगिड़ ब्राह्मणों ने भी इस पावन काम में अपना योग-दान दिया।"[4] आज भी जबकि नाथद्वारा की कला अत्यधिक हल्की और निम्नकोटि की हो गयी है, फिर भी बीस-पच्चीस कुटुम्ब इस कार्य में संलग्न हैं। जीविकोपार्जन के साथ ही कृष्ण-भक्ति की धारा को प्रचारित और प्रसारित करने में इन कलाकारों का विशेष योगदान रहा है।

दूसरी ओर अकबरकालीन समन्वयवादी भावना, जहाँगीर की विलास-प्रियता और शाहजहाँ की अलंकृत वैभवपूर्ण कलाप्रियता और विलासिता आदि ने भारतीय कला, साहित्य और संस्कृति को एक नवीन मोड़ दिया। राजस्थान के राजा, जिन्होंने मुगलदरबार से भोग-विलास, ऐश-आराम, कलाप्रियता आदि

---

१. डॉ० सरनामसिंह शर्मा : साहित्यकण (रीतिकाल की काव्यधारा)
२. विस्तार से देखें, प्रस्तुत ग्रन्थ, अध्याय-४
३. गोवर्धनलाल जोशी : नाथद्वारा की चित्रकला, वार्षिक १९६३, पृ० ३६
४. वही, १९६३, पृ० ३५

का पाठ पढ़ा था, वे ही औरंगजेब की कट्टर नीति के कारण मुगलदरबार से विमुख होकर अपने-अपने राज्यों में दरबार सजाने लगे। औरंगजेब के समय में 'मुगल-दरबार' के संरक्षण के अभाव में अनेक कलाविदों ने विभिन्न सामन्तों एवं नरेशों की शरण ली, क्योंकि उनके दरबार में कलावन्तों तथा कवियों की उपस्थिति उनके गौरव की प्रतीक थी। राजस्थान के नरेशों तथा सामन्तों की छत्रछाया में हिन्दी कविता का दरबारी रूप पनपा। ओरछा, कोटा, बूंदी, जयपुर, जोधपुर आदि राजदरबारों में भी वही प्रदर्शनप्रधान और शृंगारपरकजीवन दर्शन की अभिव्यक्ति कलाओं में होती रही।"[1] उनके दरबार में कवियों, मुसव्विरों और कलावन्तों का जमघट रहने लगा। गुणीजनखाने के उपर्युक्त कलाकार अपने आश्रयदाताओं के मनोनुकूल भावों की अभिव्यक्ति करने लगे, जिसमें राधा-कृष्ण की शृंगारपरक भावनाओं को ही प्रमुखतया आधार बनाया गया। रीतिकाल तक पहुँचते-पहुँचते तो राधा-कृष्ण का प्रेममय भक्तिस्वरूप भौतिक-शृंगारी प्रवृत्तियों के बहाने नायक-नायिका के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा, जो विलासी राजाओं, सामन्तों, जागीरदारों एवं कलाकारों की दमित वासनाओं की परितृप्ति के लिए काव्य एवं चित्रकला के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ। आश्रयदाताओं को प्रसन्न कर धन प्राप्त करने के लिए कवियों और चित्रकारों ने नायक-नायिकाभेद-सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे और चित्र बनाये। सूर के राधा-कृष्ण का स्वच्छन्द प्रेम महलों, अट्टालिकाओं, उपवनों और सरोवरों के दरबारी वातावरण में सिमटकर रह गया। नायिका के सीमित शारीरिक सौन्दर्य और सामन्ती संस्कृति के सीमित वातावरण में कृष्ण-भक्ति की सरलता और स्वच्छन्दता आलंकारिक और चमत्कारी चित्रांकनों में उलझकर रह गयी। राजस्थानी चित्रकला में कृष्ण का शृंगारपरक चित्रण इस कथन का साक्षी है। अतः कृष्ण-भक्ति की शृंगारपरक भावधारा को रीतिकालीन प्रभाव देने और चित्रांकन करने में राजस्थान के अनेक चित्रकारों का योगदान रहा है। उनमें से आज बहुत कम के नाम उपलब्ध हैं। इस प्रसंग में किशनगढ़ के मोरध्वज निहालचन्द, बीकानेर के रुक्नुद्दीन, नूरुद्दीन, उदयपुर के शाहबुद्दीन, जयपुर के साहिबराम आदि अविस्मरणीय हैं। वास्तुकारों ने भी राजस्थान के विभिन्न शहरों, धर्मपीठों एवं ठिकानों आदि में अनेक राधा-कृष्ण-सम्बन्धी मन्दिरों और मूर्तियों का निर्माण कर कृष्ण-भक्ति परम्परा के प्रचार एवं प्रसार में जो योग दिया है, वह भुलाया नहीं जा सकता।

विभिन्न प्रसारकों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध

कृष्ण-भक्ति के प्रचार एवं प्रसार में उपर्युक्त प्रश्रयदाताओं, धर्माचार्यों एवं

---

१. सं० डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, पृ० ८

कलाकारों का जो महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, उसमें उनके अन्योन्याश्रित सम्वन्ध का सहज ही परिचय मिलता है। धार्मिक प्रतिष्ठान एवं राजदरबार दो ऐसे स्थल थे जहाँ कलाप्रेमियों और कलाकारों का विशेष सम्वन्ध रहा। आश्रयदाताओं का कलाप्रेम और कलाकारों का जीविकोपार्जन दो ऐसे कारण थे, जिससे दोनों में सम्बन्ध स्थापित हुआ। दोनों स्थलों में कला भी वहाँ के वातावरण के अनुकूल दो धाराओं में वह चली। एक में जनमानस-सम्वन्धी लोकतत्त्व का अधिक प्रभाव था तो दूसरे में राजसी वैभव की चमक-दमक का अधिक प्रदर्शन। प्रश्रयदाता राजा और उनकी रानियाँ, पासवान, सामन्त, जागीर-दार आदि धर्म एवं कलाओं के पोषण हेतु, अपने दरवार की शोभा के लिए तथा मनोरंजन हेतु कवियों, मुसव्विरों, कलावन्तों आदि को समय-समय पर प्रश्रय देते रहे हैं। गुणीजनखाने के उपर्युक्त कलाकार अपने आश्रयदाताओं के मनोवांछित भावों को अपनी कला द्वारा अभिव्यक्त करते थे। अतः धर्माचार्य कृष्ण-भक्त राजवर्ग को कृष्ण-चरित्रसम्वन्धी भावों से प्रभावित करते थे एवं कलाकार उनकी रुचि और मनोवांछित भावधाराओं को काव्य, चित्रकला आदि के माध्यम से अभिव्यक्त कर जीवनयापन करते थे। कलाकार स्वयं भी भक्त एवं कृष्ण-चरित्र के अनुरागी होते थे, इसलिए एक-दूसरे की कलाओं से प्रभावित होकर भावों का या विषय-वस्तु का आपसी आदान-प्रदान किया करते थे। काव्य को आधार वनाकर अंकित किये गये चित्र, चित्रों को आधार वनाकर रचे गये काव्य और पदों का गायन आदि कलाकारों के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध के परि-चायक हैं।

संक्षेप में, एक ही परिवेश में रहनेवाले कलाकार अपने आश्रयदाताओं की अभिव्यक्ति के माध्यम थे, जिनके परिश्रम का फल आज काव्य और चित्रकला के रूप में दृष्टिगोचर होता है। विभिन्न प्रसारकों में अन्योन्याश्रित सम्वन्ध स्थापित करने का श्रेय कथ्य की एकता को है। यह कथ्य की एकता कृष्ण-चरित्र की विभिन्न लीलाओं एवं उनकी शृंगारपरक ऐन्द्रियजन्य भावधाराओं से अधिक सम्वन्धित थी।

काव्य एवं चित्रकला के विकास में योग

उपर्युक्त प्रसारकों के अन्योन्याश्रित सम्वन्ध के कारण काव्य एवं चित्रकला के विकास एवं प्रसार में विशेष योगदान रहा है। बहुत-से राजा तथा रानियाँ स्वयं काव्यकार और चित्रकार थे (जिनका विवेचन हो चुका है) तथा राजदरबार में स्थित गुणीजनखाने के माध्यम से काव्य एवं चित्रकला की रसधार अनवरत बहती ही रहती थी। राधा-कृष्ण की विभिन्न लीलाओं तथा उनके बहाने नायक-नायिका-भेद सम्बन्धी काव्य की सृष्टि और कृष्ण-काव्य सम्बन्धी ग्रन्थों पर

आधारित चित्रण राजस्थान के विभिन्न राजदरबारों की पारम्परिक विशिष्टता थी। इस प्रकार सामन्ती समाज और धार्मिक प्रतिष्ठानों के माध्यम से कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी काव्य और चित्रकला की जो रसधार बही, वह विशेष उल्लेखनीय है।

काव्य एवं चित्रकला के विकास एवं प्रसार में साम्प्रदायिक आचार्यों एवं अन्य भक्तों का योग भी कम महत्त्व का नहीं है। उन्होंने कृष्ण के रतिभाव के त्रयी स्वरूप, भगवद्विषयकरति, वात्सल्यरति, दाम्पत्यरति के जो इन्द्रधनुषी स्वरूप प्रस्तुत किये, वे ही आगत पीढ़ी के कवियों एवं चित्रकारों के चित्रण के आधार रहे हैं। आचार्य स्वयं कवि होते थे एवं साकार को प्रसारित करने के लिए चित्रकला को उपयुक्त माध्यम समझते थे। "श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पुष्टि मार्ग की भक्ति के प्रचार एवं प्रसार में ललितकलाओं के योग को बहुत प्रोत्साहन दिया। स्वयं महाप्रभु ने भारत के तत्कालीन चित्रकार 'होनहार' को अपना चित्र अंकित करने की अनुमति दी। यही पुष्टिमार्ग में चित्रकला को विशिष्ट स्थान दिये जाने का प्रमुख कारण हुआ। श्री वल्लभाचार्य के सुपुत्र श्री विट्ठलनाथ स्वयं चित्रकला में परम निपुण थे, उनका बनाया हुआ बालकृष्ण का चित्र आज तक विद्यमान है।" संक्षेप में, काव्य और चित्रकला के विकास में कृष्ण-भक्ति के स्वरूप का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, जिससे हिन्दी कृष्ण-काव्य और राजस्थानी चित्रकला विशेषतया प्रभावित हुई है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के निष्कर्षस्वरूप कहा जा सकता है कि कृष्ण-भक्ति की परम्परा ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति को नवीन चेतना प्रदान की। १२वीं, १३वीं शताब्दी से १६वीं शती तक कृष्णभक्ति आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर १७वीं शती से धर्म का केन्द्रबिन्दु बन गया। १७वीं शती के मध्य तक लीलाबिहारी कृष्ण की भक्ति का गढ़ ब्रजमण्डल रहा, पर औरंगजेब की धर्मविरोधी प्रवृत्ति के कारण यहाँ का गढ विश्रृंखल हो गया। राजस्थान सौभाग्यशाली प्रान्त था जो अपनी वीरता, धर्मसंरक्षणता तथा सामन्ती श्रृंगार-परकता के कारण कृष्ण-भक्ति आन्दोलन का प्रमुख गढ़ बन गया। माधुर्यपूर्ण कृष्ण की लीलाएँ राजस्थान के कोने-कोने में विस्तार पाने लगीं। धर्माचार्यों ने पीठ स्थापित कर, गोस्वामियों एवं अन्य पुजारियों ने मन्दिर बनवाकर, राजाओं, रानियों, सामन्तों, जागीरदारों आदि ने कृष्ण-भक्ति को पोषित कर तथा कवि, मुसव्विर, कलावन्त, राज आदि ने कृष्ण के माधुर्य स्वरूप को अंकित कर कृष्ण-भक्ति की जो अजस्र धार बहायी है, वह अविस्मरणीय है। मध्यकालीन भारत कृष्ण-भक्ति के मधुर रंग में रँगा हुआ है। कथ्य की एकता तथा कला के प्रश्रय-

दाताओं एवं कलाकारों के आपसी सम्बन्धों के कारण कृष्ण-चरित्र का स्वरूप कविता, चित्रकला, संगीत, वास्तुकला आदि में उभरकर आया है जिसका तुलनात्मक विवेचन इतिहास, साहित्य एवं कला-जगत के ज्ञान में निश्चय ही नयी दिशा प्रदान करता है।

४

राजस्थानी चित्रकला में चित्रित हिन्दी कृष्ण-काव्य

कृष्ण-काव्य की परम्परा अत्यधिक प्राचीन रही है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में कृष्ण-चरित्र सम्बन्धी जितना काव्य उपलब्ध है, उसके गवेषणात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि "संस्कृत के माध्यम से समस्त भारत में कृष्णाख्यान का प्रचार तथा प्रसार हुआ, प्राकृत भाषा ने उसे सर्वजन-सुलभ बना दिया और अपभ्रंश भाषा ने कृष्ण-कथा को अपनी प्रादेशिक विशेषताओं से ओत-प्रोत कर दिया।"[1]

हिन्दी कृष्ण-काव्य

हिन्दी का कृष्ण-काव्य उपर्युक्त काव्य-परम्परा का एक अंग है जिसमें 'गाथा-सप्तशती', 'श्रीमद्भागवत', अनेक पुराण, 'गीतगोविन्द' आदि ग्रन्थों का महत्त्व-पूर्ण योगदान है। हिन्दी में कृष्ण-काव्य की सर्वप्रथम रचना विद्यापति-पदावली मानी जाती है। हिन्दी में कृष्ण और राधा को नायक और नायिका के रूप में लानेवाले मैथिलकोकिल विद्यापति (१५वीं शती-पूर्वार्ध) ही हैं, जिन पर जयदेव के 'गीतगोविन्द' का पूर्ण प्रभाव है।[2] विद्यापति के अधिकतर पद श्रृंगार के हैं। कृष्णभक्ति-परम्परा में न होते हुए भी विद्यापति ने राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रसंग को लेकर वयःसन्धि, दूती, मान, मानभंग, अभिसार, मिलन, विरह, नखशिख आदि नायिकाभेद और श्रृंगार की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन किया है।

उसमें भाषा के नायिकाभेद का बीजांकुर स्पष्टतः दीखने लगा था। संगीत

---

१. सरोजनी कुलश्रेष्ठ : हिन्दी साहित्य में कृष्ण, पृ० ६५-६६
२. देखिए, रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५९

की खराद पर उतरी हुई यह मुक्तक-पदरचना कृष्ण के ललित व्यक्तित्व के अनुरूप ही है। इसके अतिरिक्त जो राधा 'गीतगोविन्द' में 'माधुर्य' का आश्रय होकर आयी और जिसको धार्मिक सम्प्रदायों की भी मान्यता मिली, विद्यापति ने उसी को कृष्ण की परमप्रिया के रूप में स्वीकार करके भाषा में राधा-कृष्ण-प्रेम-परम्परा का द्वार भी खोल दिया। उनकी पदावली में आदि से अन्त तक स्थायी भाव रति है और नायक-नायिका राधा-कृष्ण हैं।

राधा-कृष्ण की शृंगार-परम्परा की कड़ी के रूप में हमें राजस्थान में मीराबाई की पदावली दिखायी देती है। किन्तु मीरा की पदावली में राधा-कृष्ण का उल्लेख बहुत कम हुआ है। मीरा स्वयं माधुर्यभाव का आश्रय बन गयी है, शृंगार की वही परम्परा होते हुए भी मीरा के प्रेम में वैयक्तिक सम्बन्ध की मुद्रा दृष्टिगोचर होती है। निश्चित रूप से यह सन्त-परम्परा का ही स्वरूप है। मीराबाई ने अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण की भावना प्रियतम अथवा पति रूप में की थी। उनके काव्य में माधुर्यभाव की प्रधानता है। "मीरा का प्रेम नारी-हृदय का प्रेम है, जो कृष्ण के समान अपार्थिव आलम्बन के आश्रय में निखर-कर नैसर्गिक हो गया है।"[1] हिन्दी कृष्णकाव्य की परम्परा को विकसित करने में मीराबाई का विशेष योगदान है।

विद्यापति और मीराबाई के अतिरिक्त भक्तिकाल (सं० १३७५-१७००) में कृष्ण-सम्बन्धी साहित्य का विपुलता से सृजन हुआ। कृष्णकाव्य की एक अखण्ड परम्परा ही चल पड़ी, जिसमें अनेक कृष्णभक्ति सम्प्रदायों का योग है।[2] चैतन्य महाप्रभु, श्री वल्लभाचार्य, हरिदास आदि महान् विभूतियों ने कृष्ण-भक्ति-आन्दोलन को प्रसारित कर कितने ही कवियों और कलाकारों को कृष्ण-काव्य की रचना के लिए प्रेरित किया। भक्तिकाल के अन्तर्गत कृष्णकाव्य के रचयिताओं में अष्टछाप के कवियों का विशेष महत्त्व है। इनके नाम इस प्रकार हैं—सूरदास, कृष्णदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास, नन्ददास, चतुर्भुज-दास, छीतस्वामी और गोविन्दस्वामी। इनमें प्रथम चार श्री वल्लभाचार्य के और अन्तिम चार उनके पुत्र तथा उत्तराधिकारी गुँसाई विट्ठलनाथ के सेवक थे।[3] अष्टछाप के कवियों के काव्य का मुख्य विषय श्रीकृष्ण की लीलाओं का भावात्मक और भक्तिपरक चित्रण है। "सूरदास ने भागवत के बारहों स्कन्धों के आधार से कृष्णचरित्र के साथ अन्य अवतारों और पौराणिक राजाओं का भी

---

१ डॉ० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी : रीतिकालीन कविता एवं शृंगाररस का विवेचन, पृ० २१७
२. देखिए, अध्याय-३
३. „ डॉ० दीनदयाल गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, पृ० १

वर्णन किया है। नन्ददास ने कृष्णकथा के कुछ चुने हुए प्रसंग ही लिये हैं। शेष छः कवियों की उपलब्ध रचनाओं का विषय कृष्णचरित्र की भावात्मक व्रजलीला ही है।"[१] अष्टछाप के कवियों ने कृष्णचरित्र के केवल उन भावात्मक स्थलों को ही चुना है जिनमें उनका मन विशेष रमा है, इसलिए कृष्ण के सौन्दर्यपक्ष के उन्होंने जी भरके चित्र अंकित किये हैं। राधा-कृष्ण का शृंगारवर्णन इन भक्त कवियों की भक्ति का एक मार्ग है। "सम्पूर्ण अष्टछाप के कवियो के काव्य के सूक्ष्म अध्ययन से ये निष्कर्ष निकलते हैं कि प्रथम तो इस काव्य में सार्वजनिक प्रेमानुभूतियों का सजीव, स्वाभाविक और रसपूर्ण चित्रण है। दूसरे, इसमें अलौकिक नायक कृष्ण के संसर्ग से लोक की वृत्तियों को समेटकर ईश्वरोन्मुख होनेवाली इन कवियों की आध्यात्मिक अनुभूति की व्यंजना है, जिसकी सिद्धि ही इन भक्तों का परम लक्ष्य था।"[२] इसके अतिरिक्त श्री आचार्यजी के शिष्यों (जिनमें २५२ मुख्य थे) के भी अनेक पद कृष्णचरित्र-सम्वन्धी हैं, जिनका वृत्तान्त '८४ वैष्णवन की वार्ता' तथा '२५२ वैष्णवन की वार्ता' में दिया हुआ है। उपर्युक्त असंख्य भक्त कवियों ने कृष्णकाव्य की परम्परा को आगे बढ़ाया। हितहरिवंश, गदाधर भट्ट, स्वामी हरिदास, श्रीभट्ट, व्यास, रसखान आदि ने इस धारा को आधार बनाकर जो काव्य रचा है, वह हिन्दी कृष्णकाव्य की अमर धरोहर है।

भक्तिकाल से भी अधिक कृष्णपरक रचनाएँ रीतिकाल में लिखी गयीं। शृंगार की ही दिशा में रीतिकालीन कृष्णकाव्य द्विविधरूप में सृजित हुआ था, जिसका एक स्वरूप भक्तिकाव्य और दूसरा नायक-नायिका भेद का था। भक्तिकाल को भी कृष्ण का शृंगारी स्वरूप विरासत में मिला था। 'श्रीमद्-भागवत', 'गीतगोविन्द,' 'व्रह्मवैवर्तपुराण' आदि ग्रन्थों की शृंगारिक प्रवृत्ति की पूर्वपीठिका पर भक्तिकालीन कृष्णकाव्य निःसंकोच होकर खड़ा हुआ। "हिन्दी भक्तिशृंगार की इस पीठिका के आधार पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि धर्म, साहित्य तथा लोकतत्त्वों में शृंगार का उन्मुक्त वर्णन उस समय स्वीकार हो चुका था। इसका फल यह हुआ कि भक्तों में इष्टदेव के शृंगारवर्णन में होनेवाली स्वाभाविक हिचक नहीं थी, अतः निश्शंक होकर वे शृंगारिक रचना में संलग्न हो सके।"[३] भक्तिकालीन कृष्णकाव्य में जो घोर शृंगारी सम्भोग-चित्रण मिलता है, उसकी रीतिकाल में आते-आते तो पराकाष्ठा ही हो गयी। राधा-कृष्ण को गली-गली का नायक-नायिका बनाकर आश्रयदाताओं की वासनाजन्य प्रवृत्ति की तृप्ति के लिए कवि रीति-ग्रन्थ लिखने लगे। इस प्रकार

१. देखिए, डॉ० दीनदयाल गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, पृ० ६९४
२. " वही, पृ० ६९६
३. डॉ० मिथिलेश कान्ति : हिन्दी भक्ति-शृंगार का स्वरूप, पृ० ५५

के नायक-नायिका भेदपरक काव्य, जिनमें राधा-कृष्ण के नामों का उल्लेख हुआ है, भी कृष्णकाव्य की परम्परा में ही माने जाने चाहिए। केशव की 'रसिकप्रिया' इस दृष्टि से प्रथम महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसने संस्कृत की नायक-नायिका-भेद-परम्परा को हिन्दी साहित्य में पुनर्जीवित किया। मुक्तक-परम्परा में बिहारी ने 'बिहारी-सतसई' लिखकर कृष्णकाव्य की कड़ी को जोड़ा। दोनों महान् कवियों की परम्परा को रीतिकाल में इतना बढ़ावा और प्रसार मिला कि रीतिकालीन काव्य का अधिकांश कृष्ण के पर्यायी नामों (जैसे, मोहन, लाल, बृजराज, ठाकुर, गोपाल, श्यामबिहारी आदि) से भरा पड़ा है। "यह ठीक है कि रीतिकालीन कवियों का आग्रह भक्ति की ओर कम था, पर कृष्ण का स्मरण तो सभी कवियों ने मुक्तकण्ठ से अनेक रूपों में किया है। जो कवि काव्यगुण में अपनी कविता को हेय समझते रहे होंगे, उन्होंने भी 'राधा-कृष्ण के सुमिरन के बहाने' कृष्ण को अपनी कविता में स्थान दिया। वस्तुतः यह युग कृष्णकाव्य का युग था, अतः शास्त्र निरूपण के सन्दर्भ में कृष्ण-स्तवन अनिवार्य था।" भारतीय चित्रकारों ने मतिराम, देव, जनराज, गोविन्द, ग्वाल, पद्माकर आदि अनेक कवियों के काव्य को भी चित्रण का आधार बनाकर कृष्णचरित्र को उद्घाटित किया। कृष्णकाव्य की परम्परा आधुनिक काल में भी प्रसार पाती रही है। 'भारतेन्दु', 'रत्नाकर', 'हरिऔध' आदि के महत्त्वपूर्ण और प्रसिद्ध काव्य इस कथन के साक्षी हैं। संक्षेप में, कृष्ण के चरित्र और नाम को आधार बनाकर हिन्दी साहित्य में विपुल रचनाएँ हुई हैं, जिनमें से अत्यधिक प्रसिद्ध और चित्रोपयोगी रचनाओं को ही राजस्थानी चित्रकारों ने आधार बनाकर चित्रित किया है।

कृष्णचरित्र

विष्णु के विभिन्न अवतारों में कृष्णचरित्र समाज में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण, प्रचलित एवं परिवर्तनशील रहा है। "महाभारत के कृष्ण का उल्लेख लोक-रक्षा और लोकमंगल का प्रत्यक्ष साधन करनेवाली कर्मशक्ति का स्वरूप था, जिसमें शक्ति, शील, सौन्दर्य और ऐश्वर्य का समन्वय था।"[१] भगवद्गीता में कृष्ण का कर्मयोगी, वीर और वेदान्ती स्वरूप प्रस्तुत किया गया है, जिसने कृष्ण के व्यक्तित्व को प्रसारित किया। धीरे-धीरे सामयिक प्रवृत्तियों के कारण लोक-रक्षक और गीतोपदेशी कर्मयोगी कृष्ण का स्वरूप तिरोहित होने लगा और कृष्ण का माधुर्यपूर्ण प्रेममय चरित्र समाज में अधिक लोकप्रिय होने लगा। भागवत-धर्म की स्थापना के साथ ही 'भागवतपुराण' ने विस्तृत और सांगोपांग होने के कारण कृष्ण के माधुर्यपक्ष को अधिक उभारा। राधा-कृष्ण की प्रेममयी लीलाओं

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : सूरदास, पृ० २४

का चित्रण कर जयदेव एवं विद्यापति ने कृष्ण का जो शृंगारी स्वरूप प्रस्तुत किया, वह मध्यकालीन कवियों और चित्रकारों के चित्रांकन का आधार बन गया। उपर्युक्त विवेचित हिन्दी कृष्णकाव्य में कृष्णचरित्र का माधुर्यपक्ष ही अधिक उभरकर सामने आया है। उसमें कृष्ण के प्रेममय सौन्दर्यपक्ष से सम्वन्धित आलम्वन, उद्दीपन और अनुभावों के विभिन्न चित्र अंकित हुए हैं। इन कवियों का मन जितना बालकृष्ण, गोपालकृष्ण, और रासविहारी कृष्ण में रमा है, उतना अन्य किसी विषय में नहीं। कृष्ण के विविध स्वरूपों का चित्रांकन मार्मिकता, गम्भीरता और कलात्मकता की दृष्टि से हिन्दी काव्य और राजस्थानी चित्रकला के क्षेत्र में वेजोड़ है।

बालकृष्ण

वल्लभाचार्य ने 'भागवतपुराण' के वालकृष्ण को ही प्रमुख रूप से अपना आराध्य स्वीकार करके पुष्टि-सम्प्रदाय में प्रतिष्ठित किया और श्रीकृष्ण की वाललीलाओं की ओर समाज को विशेष रूप से आकर्षित किया। अष्टछाप के कवियों ने, और उनमें भी प्रमुखतया सूरदास ने, नन्दनन्दन वालकृष्ण के विभिन्न रूप प्रस्तुत किये, जिनमें मनोविज्ञान की दृष्टि से अनेक पहलू दिखायी देते हैं। सूरदास के उपरान्त बालकृष्ण को मान्यता देनेवाले कवियों और चित्रकारों ने 'सूरसागर' को ही आधार-ग्रन्थ मान लिया। चरित्रांकन की दृष्टि से वालकृष्ण के स्वरूप को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है[1] :—१. रूप-सौन्दर्य का अंकन, २. विभिन्न संस्कारों, उत्सवों आदि का अंकन, ३. क्रीड़ाओं और चेष्टाओं का अंकन, ४. अलौकिक लीलाओं का अंकन।

श्री वल्लभाचार्य ने बालकृष्ण की लीलाओं को अधिक महत्त्व दिया है। वालक के भोले और निष्कपट पवित्र रूप पर माता यशोदा तथा व्रज के सभी नर-नारी मोहित हैं। वात्सल्यभाव की भक्ति करनेवाले कृष्णभक्तों ने अपने को यशोदा की स्थिति में अधिक रखा है, क्योंकि माता का हृदय ही बालक की विभिन्न चेष्टाओं, लीलाओं आदि को भली प्रकार समझ सकता है। बालकृष्ण के रूपसौन्दर्य का अंकन, उनकी वालसुलभ विभिन्न क्रीड़ाओं और चेष्टाओं का चित्रण, संस्कार, उत्सव आदि का विवरण तथा अलौकिक लीलाओं का चित्रण माता यशोदा के माध्यम से ही अधिक हुआ है। बालकृष्ण की लीलाओं की क्रीड़ास्थली माता यशोदा का घर-आंगन ही अधिक रहा है। कृष्णभक्त कवियों तथा विभिन्न चित्रकारों ने वालकृष्ण की विभिन्न लीलाओं के जो अनेक चित्र अंकित किये हैं, वे कलाओं के पारस्परिक अध्ययन के लिए विशेष उपयोगी हैं।

---

१. देखिए, डॉ० हरवंशलाल शर्मा : सूर और उसका साहित्य, पृ० १६४

गोपालकृष्ण

कृष्णचरित्र का दूसरा प्रमुख स्वरूप है गोपालकृष्ण। जैसे ही कृष्ण बड़े होते हैं कि माता यशोदा का घर-आँगन छोड़कर अपने साथी बालगोपालों के साथ वन में धेनु चराने जाते हैं। प्रकृति के सुरम्य एवं स्वच्छन्द वातावरण में बाल-गोपालों के साथ वयसुलभ खेल खेलते हैं। गोचारण, वंशीवादन, जलक्रीड़ा, सामूहिक भोजन, भाग-दौड़, अनेक अलौकिक लीलाएँ आदि कृष्णचरित्र के विशेष उपकरण हैं, जिनमें गोपालकृष्ण का रूप प्रस्फुटित हुआ है। अध्ययन की सुविधा के लिए इसको निम्नांकित प्रकार से विभाजित कर सकते हैं :—

(क) गोपाल, वंशीधर कृष्ण—घर से जाते और लौटते हुए कृष्ण के कार्य-कलापों का चित्रण तथा वन में गायों के बीच वंशी बजाते हुए कृष्ण की विभिन्न मुद्राओं एवं कार्यकलापों का चित्रण।

(ख) क्रीड़क कृष्ण—प्रकृति के सुरम्य और स्वच्छन्द वातावरण में कृष्ण के विभिन्न खेलों का विशेष चित्रण हुआ है। वन, उपवन, यमुनातट, वंशीवट, करील-कुंज आदि में अपने साथियों के संग वयसुलभ खेलों का विशेष चित्रण; जैसे: जलक्रीड़ा, गिल्ली-डण्डा, आँख-मिचौनी, सामूहिक भोज, लड़ाई-झगड़ा आदि कृष्णकाव्य की विशेष देन हैं।

(ग) लीलाधर कृष्ण—खेल-ही-खेल में अनेक दुष्टों का दलन, कृष्ण के अलौकिक चरित्र को प्रस्तुत करता है। वकासुर, अघासुर, वत्सासुर, कालिया नाग आदि का मर्दन कृष्ण के अलौकिक स्वरूप को प्रस्फुटित करता है। चामत्कारिक, वर्णनात्मक और चित्रोपयोगी होने के कारण अलौकिक लीलाधर कृष्ण का चरित्र विशेष उल्लेखनीय है। भले ही हिन्दी के कृष्णभक्त कवियां का मन कृष्ण के उपर्युक्त चरित्र में नहीं रमा हो, पर चित्रकारों ने कृष्ण के उस चरित्र को विशेष-तया चित्रित किया है।

प्रिय एवं प्रेमी कृष्ण

कृष्ण के प्रेमी स्वरूप का चित्रांकन सबसे अधिक और विस्तार से हुआ है। लड़कपन का बालसुलभ प्रेम यौवनावस्था में रतिभाव में परिवर्तित हो जाता है और ऐसीस्थिति में व्यष्टिरूप में राधा और समष्टिरूप में गोपियों का कृष्ण के प्रति अनुराग धीरे-धीरे स्वाभाविक रूप से विकसित होता है। कृष्ण की साकार माधुरी-मूर्ति को देखकर तथा वंशी की मधुर रसमयी तान को सुनकर राधा और गोपियाँ आत्मविभोर हो उठी हैं। हिन्दी के मध्यकाल में उपर्युक्त दाम्पत्यरति के दोनों पक्षों अर्थात् संयोग और वियोग का अनुभूतिजन्य एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण विस्तार से हुआ है। भक्तिकालीन काव्य में राधा-कृष्ण एवं गोपियों के प्रेम का

स्वरूप अलौकिकता एवं भक्तिरस की स्थापना के उपरान्त भी अधिक स्वच्छन्द और मनोवैज्ञानिक वन पड़ा है। रीतिकालीन कलाकारों ने उसी प्रेमी स्वरूप को, राधा-कृष्ण का बहाना देकर, लौकिक नायक-नायिकाभेद के शास्त्रीय वन्धन में बाँधकर रसिकों को रसान्वित किया। अतः रीतिकाल में कृष्ण का शृंगारी स्वरूप भक्तिकाल से भिन्न दिखायी देता है, जिसका अध्ययन तत्कालीन चित्रकला के माध्यम से भलीभाँति किया जा सकता है। कृष्ण, राधा, गोपियों आदि के प्रेमी स्वरूप तथा उनके पारस्परिक आकर्षण के चित्रण को निम्नांकित प्रकार से रख सकते हैं :—

(क) संयोगशृंगार का चित्रण—१. लीलापरक अर्थात् दानलीला, मान-लीला, चीरहरणलीला, रासलीला आदि के आधार पर। २. नायक-नायिका-भेदपरक।

(ख) वियोगशृंगार का चित्रण—१. स्वच्छन्द रूप से। २. नायक-नायिकाभेदपरक।

कृष्णचरित्र की चित्रोपयोगिता

कृष्णचरित्र सम्बन्धी उपर्युक्त अंकन के संक्षिप्त निरूपण से यह वात स्पष्ट हो जाती है कि कृष्ण का चरित्र चित्रोपयोगी अधिक है। कलाकारों ने कृष्ण के जिस सीमित किन्तु गहन क्षेत्र को अपनी भक्ति एवं कला का माध्यम बनाया है, वह सगुण और मनोहारी होने के फलस्वरूप समाज को अधिक आकर्षित करने-वाला है। उपर्युक्त कृष्णचरित्र में कृष्ण, राधा, गोपियाँ, नन्द, यशोदा आदि सीमित आलम्बन एवं यमुनातट, वंशीवट, निकुंज, वृन्दावन की कुंजगली आदि सीमित उद्दीपक वातावरण हैं। कृष्ण के चरित्र में हाव-भाव, मुद्राएँ आदि अनु-भावों की जितनी बहुलता है, उतनी अन्य किसी चरित्र में नहीं। कृष्णचरित्र अनुभावों और दृश्यात्मकता की बहुलता के कारण चित्रकला के लिए अधिक उप-योगी सिद्ध हुआ है। चित्रण की अपनी सीमारेखाएँ हैं। अनुभावों के चित्र जितनी स्पष्टता से वन सकते हैं, उतनी स्पष्टता से अन्य किसी के नहीं। चित्रकार आल-म्वन के अनुभावों को दृश्यात्मकता देकर भावाभिव्यक्ति करने में समर्थ होता है। यही कारण है जिससे कृष्ण का चरित्र अधिक चित्रोपयोगी रहा है। कृष्णचरित्र में कृष्णभक्त कवियों एवं चित्रकारों को आलम्वन तथा अनुभाव चित्रण के लिए अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र प्राप्त हुआ। "यही कारण है कि कृष्ण के रूप तथा उनकी लीलाओं की माधुर्ययुक्त सौन्दर्यानुभूति बड़े कोमल, सात्त्विक और सजीव चित्रों के रूप में साकार हुई है। वास्तव में तो इन कृष्णभक्त कवियों की रचनाओं में ही तत्कालीन और परवर्ती चित्रकारों को आधारभूमि प्राप्त हुई। चित्रणशैली में भी उन्होंने कृष्ण के उसी स्वरूप की प्रधानता मानी है जो उस समय की कविता में स्वीकृत

था।"[1]

सगुण भक्ति की सरलता तथा माधुर्यभावना ने भी चित्रकला को अधिक प्रोत्साहित किया। धर्माचार्य स्वयं निर्गुण की नीरसता के स्थान पर सगुण की स्थापना हेतु मूर्तिपूजा एवं चित्रांकन को अधिक महत्त्व देते थे।[2] कृष्णचरित्र की मधुरता, सरलता एवं जनप्रियता ने मध्यकालीन चित्रकला को अधिक प्रभावित किया। यही कारण है कि राजस्थानी चित्रकला कृष्णचरित्र की विभिन्न झाँकियों से भरी पड़ी है।

सचित्र पुस्तकों की परम्परा में कृष्णचरित्रांकन

भारत में सचित्र पुस्तकों की परम्परा प्राचीन है, जिसका विवेचन पीछे किया जा चुका है। भोजपत्र, ताडपत्र और पट के अतिरिक्त कागज पर जब से लेखन एवं चित्रण होने लगा है, तभी से सचित्र पुस्तकें अधिक बनने लगी हैं। कृष्णचरित्र समाज में सगुण स्वरूप की स्थापना, अनुभावों की बहुलता एवं माधुर्यभाव के आकर्षक स्वरूप आदि के कारण अत्यधिक चित्रोपयोगी सिद्ध हुआ, किन्तु ब्रज के इतिहास में १५०० ई० से पूर्व चित्रकला के उदाहरणों के न मिलने पर आश्चर्य प्रकट किया गया है।[3] सचित्र पुस्तकों की परम्परा में कृष्णकाव्य का चित्रांकन कब से प्रारम्भ हुआ, यह बता पाना कठिन है। अब तक की उपलब्ध जानकारी के अनुसार श्री आर्चर ने लगभग १४५० ई० में पश्चिमी भारत में चित्रित 'गीतगोविन्द' और 'बालगोपाल-स्तुति' के प्राप्त क्रमशः एक और दो पन्नों को कृष्णचरित्र का प्रथम अंकन माना है।[4] स्वर्गीय एन० सी० मेहता ने अहमदाबाद में लिखित एवं चित्रित १४५१ ई० के लिपटवाँ पटचित्र 'वसंत-विलास' को प्रेम के अंकन का उपलब्ध प्रथम चित्रण माना है।[5]

जयदेव बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के दरबारी कवि थे। १२वीं शती में रचित उनका 'गीतगोविन्द' राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं के कारण चित्रण का विशेष आधार-ग्रन्थ रहा है। भारत की विभिन्न शैलियों में 'गीतगोविन्द' की चित्रित प्रतियाँ अनेक संग्रहालयों और संग्रहकर्ताओं के पास उपलब्ध हैं। राजस्थानी चित्रकला की तो लगभग सभी प्रमुख शैलियों में 'गीतगोविन्द' का

---

१. डॉ० सावित्री सिन्हा : कृष्णभक्त कवियों में अभिव्यंजना-शिल्प, पृ० १९६
२. देखिए, अध्याय-३
३. ,, जगन्नाथ आदिवासी : ब्रज का इतिहास, पृ० ९६
४. ,, डब्लू. जी. आर्चर : दि लव्ज ऑफ कृष्णा, पृ० ९४
५. ,, एन० सी० मेहता : स्टडीज इन इण्डियन पेंटिंग, पृ० १६, तथा फ्रियर आर्ट गैलेरी (वाशिंगटन) में द्रष्टव्य।

चित्रण हुआ है। मेवाड़शैली का १६५० ई० का चित्रित 'गीतगोविन्द' कला की दृष्टि से उत्कृष्ट है, जिसके कुछ पन्ने प्रिंस ऑफ वेल्स म्युजियम (बम्बई) में द्रष्टव्य हैं। मेवाड़शैली के ही दो ग्रन्थ क्रमशः २०२ और १७२ पृष्ठों के, सरस्वती भण्डार, उदयपुर में उपलब्ध हैं, जिनमें से दूसरे का समय १७१४ ई० है और कलाकार भक्त रूपराज्य ने जिसे चित्रित किया है। सिटी पैलेस म्युजियम, जयपुर में तीन सचित्र 'गीतगोविन्द' हैं जिनमें से एक जयपुरशैली का सुन्दर उदाहरण है।[1] १८वीं शती का ७७ पृष्ठों का ३५ चित्रों से सुसज्जित अलवरशैली का ग्रन्थ भी महत्त्वपूर्ण है।[2] किशनगढ़ दरबार के निजी संग्रह में 'गीतगोविन्द' के कुछेक पन्ने किशनगढ़शैली में चित्रित उपलब्ध हैं, जो १८२० ई० में चित्रित किये गये। उपर्युक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि 'गीतगोविन्द' चित्रकला के लिए महत्त्वपूर्ण आधार-ग्रन्थ रहा है।

'गीतगोविन्द' के उपरान्त 'श्रीमद्भागवत' ही ऐसा संस्कृत का ग्रन्थ है, जिसका चित्रण बहुलता से हुआ है। भक्तिकालीन हिन्दी कृष्णकाव्य का स्रोत भागवत है। कृष्णचरित्र के चित्रण की दृष्टि से भी उसे स्रोत-ग्रन्थ माना जाता है, क्योंकि वह कृष्णचरित्र की विभिन्न लीलाओं का अनोखा भण्डार है। बालकृष्ण, गोपीकृष्ण और रसिकविहारी कृष्ण का चित्रण विस्तार से हुआ है। मध्यकालीन कवियों एवं कलाकारों को भागवत के दशम-स्कन्ध ने अत्यधिक प्रभावित किया है। अब तक की उपलब्ध सामग्री के आधार पर 'भागवतपुराण' के दो प्रारम्भिक सचित्र ग्रन्थ क्रमशः १५६८ ई० और १६१० ई० के उपलब्ध हैं।[3] १७वीं शताब्दी के मध्य से तो भागवत के चित्रण की परम्परा ही चल पड़ी। राजा जगतसिंह (१६२८-१६५२ ई०) के समय उदयपुर, चित्तौड़ आदि स्थानों में भागवत की अनेक प्रतियाँ मेवाड़शैली में चित्रित हुईं। उनके समय के प्रसिद्ध चित्रकार 'शाहबदी' द्वारा १६४८ ई० में चित्रित 'भागवतपुराण' के ४ स्कन्ध[4] (८, ९, ११, १२) कला की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। ३३४ पृष्ठों में १२९ सुन्दर चित्रों से सुसज्जित यह ग्रन्थ 'भागवतपुराण' की सर्वोच्च चित्रित प्रति है।[5] लाल, पीले, हरे और नीले रंगों से युक्त इसके चित्र मेवाड़शैली के उत्तम उदाहरण हैं, जिनमें गजेन्द्रमोक्ष-सम्बन्धी चित्र इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। खेद है कि कृष्णचरित्र-

१. सिटी पैलेस म्युजियम, जयपुर, सं० १९-२१६५
२. राजकीय संग्रहालय, अलवर, सं० २२१९
३. एम० एस० रन्धावा : कांगड़ा पेण्टिंग ऑफ भागवतपुराण, पृ० ३२
४. भण्डारकर इन्स्टीट्यूट, पूना में उपलब्ध, सं० ६१
५. देखिए, पी० के० गौड़े : एन इलस्ट्रेटेड मैनुस्क्रिप्ट ऑफ भागवतपुराण, न्यू-इण्डिया एण्टीक्वायरी, १।४, जु० १९३८

सम्बन्धी १०वाँ स्कन्ध वहाँ उपलब्ध नहीं है। इसी समय के मेवाड़शैली के अन्य सचित्र ग्रन्थ महाराजा जोधपुर तथा कोटा लाइब्रेरी में और अनेक खुले पन्ने राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली में उपलब्ध हैं। सरस्वती भण्डार, कोटा (कोटा लायब्रेरी) का ११९० पृष्ठों का भागवत सुन्दर सचित्र ग्रन्थ है, जिसमें छोटे आकार के ४७६० चित्र हैं। महाराणा राजसिंह (१६५२-१६८० ई०) और उनके उपरान्त भी मेवाड़ में 'भागवतपुराण' के चित्रण की परम्परा चलती रही, जिसके अनेक उदाहरण यत्र-तत्र संग्रहालयों में बिखरे पड़े हैं।[1] १८वीं शती में महाराजा विनयसिंह ने अलवर में अनेक ग्रन्थों को चित्रित करवाया, उनमें से ८७ फुट लम्बा और ४।। इंच चौड़ा लिपटवाँ भागवत विशेष उल्लेखनीय है।[2] दूसरा लिपटवाँ (स्क्रोल) भागवत भी, जो बीच-बीच में १८५ चित्रों से सुसज्जित है, १८वीं शती के अन्त में अलवरशैली में ही चित्रित किया गया है।[3] 'भागवतपुराण' के आधार पर कृष्णलीलाओं के अनेक स्फुट लघुचित्र बनाने की भी परम्परा रही है। जहाँगीरकालीन मेवाड़शैली के ४० पन्ने[4] तथा भारत कला भवन, बनारस, गोपीकृष्ण कानोड़िया, कलकत्ता, प्रिंस ऑफ वेल्स म्युजियम, बम्बई, सिटी पैलेस म्युजियम, जयपुर आदि में संगृहीत अनेक सचित्र पन्ने कृष्णचरित्र के चित्रांकन के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं। भित्तिचित्रण में भी कृष्णलीलाओं का जहाँ विस्तार से चित्रण हुआ है, वहाँ परोक्ष रूप से भागवत की कथाओं को ही आधार बनाया गया है। छत्रसालमहल (बूंदी) और राजमहल (कोटा) के भित्तिचित्र इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त ग्रन्थों की भाँति 'महाभारत' के चित्रण की परम्परा भी उल्लेखनीय है, क्योंकि कृष्ण के लोकरक्षक एवं लोकमंगलकारी स्वरूप का चित्रण इसी के सम्बन्ध से उपलब्ध होता है। अकबर के समय से चित्रित 'रज्मनामा'[5] महाभारत का अनुवाद है, जिसके बारे में संस्कृत के विद्वान अब्दुल कादिर बदायूनी ने लिखा है कि "१५८२ ई० में बादशाह ने भारत की प्रधान पुस्तक 'महाभारत' के सचित्र अनुवाद की आज्ञा दी।"[6] आगे चलकर राजस्थान की कुछेक शैलियों में 'महाभारत' का एवं उसके अंशों का चित्रण उपलब्ध होता है। १७०७ ई० में नकीबखाँ द्वारा फारसी में अनूदित एवं अलवरशैली में चित्रित ग्रन्थ महत्त्व का

१. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-क
२. ,, राजकीय संग्रहालय, अलवर, सं० ४७६३
३. वही, सं० ६७६१
४. देखिए, राजकीय संग्रहालय, कोटा
५. सिटी पैलेस म्युजियम, जयपुर में द्रष्टव्य
६. रायकृष्णदास : अकबरकालीन चित्रित ग्रन्थ और उनके चित्रकार, कलानिधि, अंक ३, पृ० २९

है।[1] ६६२ पृष्ठों के इस ग्रन्थ में ४४ रंगीन चित्र हैं, जिन पर मुगलशैली का पूर्ण प्रभाव है। १८वीं शती के अन्त का २५७ फुट लम्बा, ५ इंच चौड़ा और ५४ रंगीन चित्रों और सुनहरी अलंकरणों से युक्त 'महाभारत' अलवरशैली का अनोखा ही लिपटवाँ ग्रन्थ है।[2] अन्य शैलियों में स्फुट सचित्र पन्ने यत्र-तत्र संग्रहालयों और निजी संग्रहकर्त्ताओं के यहाँ उपलब्ध हैं।

'महाभारत' से सम्बद्ध प्रसिद्ध कृति 'गीता' का महत्त्व भी अनुपेक्षणीय है। यह एक विचारपूर्ण ग्रन्थ है जिसमें विभाव और अनुभावों के लिए विशेष स्थान न होने के कारण चित्रण की कम गुंजाइश है। उसमें कृष्ण का उपदेश देना और अर्जुन का शस्त्र पटककर रथ के पास खड़ा होना ही अधिक चित्रित मिलता है। राजस्थानी चित्रकला के समय (१६००-१९०० ई०) में गीतोपदेशी वीर एवं वेदान्ती कृष्ण का चरित्र समाज में अधिक मान्य नहीं था, अत: 'गीता' का चित्रण केवल सचित्र पुस्तकों की परम्परा के लिए ही हुआ है। अलवर का संग्रहालय एक ऐसा अपवाद है जहाँ 'गीता' की दस प्रतियाँ उपलब्ध हैं,[3] जिनमें से ५ लिपटवाँ और पाँच सचित्र ग्रन्थों के रूप में हैं। १ से लेकर १०७ तक चित्रों से सुसज्जित उपर्युक्त ग्रन्थ 'गीता'-जैसे ग्रन्थ के लिए अपवाद ही हैं। अलवर के राजा विनयसिंह और तिजारा के राजा वलवन्तसिंह का 'गीता' के प्रति विशेष मोह इसके चित्रण का प्रमुख कारण माना जा सकता है। कला तथा लेखन की दृष्टि से इन ग्रन्थों में अनेक प्रयोग किये गये हैं। सोने और चाँदी की स्याही से लिखित तथा सुनहरी अलंकरण से सुसज्जित अनेक ग्रन्थ तत्कालीन अलवरशैली के सुन्दर उदाहरण हैं।

उपर्युक्त सचित्र ग्रन्थों के अवलोकन और अध्ययन से ज्ञात होता है कि इन ग्रन्थों का कृष्ण के चरित्रांकन में विशेष योगदान रहा है। कृष्ण के रूपसौन्दर्य की कल्पना संस्कृत के इन ग्रन्थों में जैसी रही है, उसी परम्परा को राजस्थानी चित्रकला ने अपने वातावरण और सांस्कृतिक परिवेश का पुट देकर कलात्मक ढंग से चित्रित किया है। हिन्दी के ग्रन्थों ने कृष्ण के चरित्र की उपर्युक्त परम्परा को अपनाया, इसलिए हिन्दी के कृष्णचरित्र-सम्बन्धी ग्रन्थों को आधार बनाकर जो राजस्थानी चित्रण हुआ है, वह संस्कृत ग्रन्थों के चित्रण से भिन्न नहीं है।

चित्रण के आधार हिन्दी-ग्रन्थ

हिन्दी में कृष्णकाव्य का विस्तार मध्यकाल से है। कृष्णभक्ति-शाखा के

---

१. देखिए, राजकीय संग्रहालय, अलवर, सं० ६७७
२. वही, सं० ४७५६
३. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-क

प्रसारक श्रीवल्लभाचार्य तथा अन्य आचार्यों ने कृष्ण के जिस स्वरूप को प्रतिष्ठित किया, उसी स्वरूप को भक्त कवियों और कलाकारों ने कल्पना का पुट देकर काव्य और कला-जगत में स्थापित किया। अष्टछाप के कवि तथा अन्य भक्त-कवियों ने बालकृष्ण, गोपालकृष्ण और रसिकबिहारी-लीलाधर कृष्ण के अलौकिक स्वरूप को अंकित कर समाज को सायुज्य भक्ति का मार्ग दिखलाया। दूसरी ओर उत्तर मध्यकाल (१७००-१९०० ई०) में विलासमय जीवन की धारा में निमग्न शृंगारी कवियों ने कृष्ण और राधा के स्वरूप को अलौकिकता से उतारकर नायक-नायिकारूप में लौकिक धरातल पर ला पटका। अतः हिन्दी साहित्य में कृष्णचरित्र प्रमुखतया दो रूपों में मिलता है: १. अलौकिक रूप में (भक्ति-स्वरूप), २. लौकिक रूप में (नायक-नायिका-स्वरूप)।

कृष्णलीला का भक्ति-स्वरूप भक्तिकाल में विस्तार से मिलता है, किन्तु रीतिकाल में भी वह यत्र-तत्र उपलब्ध है,[1] तथा नायक-नायिकाभेद का स्वरूप, जो रीतिकाल का प्रमुख स्वर है, संस्कृत और भक्तिकाल की परम्परा में ही है। अस्तु, कृष्णचरित्र के चित्रण के आधार-ग्रन्थ भी उपर्युक्त दोनों रूपों में मिलते हैं। सचित्र-ग्रन्थों की यह विशेषता रही है कि चित्रकारों या आश्रयदाताओं ने केवल उन्हीं ग्रन्थों को आधार बनाया है जो तत्कालीन समाज में अधिक प्रचलित हो चुके थे या विशेष आश्रयदाता से सम्बन्धित थे। ग्रन्थ को चित्रित करने में अत्यधिक श्रम तथा धन लगता है, अतः विशिष्ट ग्रन्थों और मनभावन विषयों को ही चित्रण का आधार बनाया गया। चित्रित ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि हिन्दी के तथाकथित ग्रन्थ कितने लोकप्रसिद्ध थे। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इस प्रकार का तुलनात्मक अध्ययन अर्थबोध की दृष्टि से विशेष आयाम खोलता है तथा सचित्र ग्रन्थों की महत्ता और तत्कालीन प्रसिद्धि का परिचय देता है।

अब, संक्षेप में, उन काव्यों पर विचार करना उचित होगा, जिनकी कृष्ण-चरित्र-सम्बन्धी रचनाओं को आश्रयदाताओं और चित्रकारों ने अधिक प्रश्रय दिया। चित्रण की दृष्टि से इस प्रकार के मध्यकालीन हिन्दी कृष्णकाव्य को हम तीन प्रकार की रचनाओं के रूप में पाते हैं:

१. बहुचित्रित रचनाएँ—सूरसागर, रसिकप्रिया, बिहारी-सतसई आदि।

२. ईषत्चित्रित रचनाएँ—नागर-समुच्चय, रसराज, युगलशतक आदि।

३. स्फुट चित्ररचनाएँ—गीत-संगीत (रागरागिनी), बारहमासा, ऋतुवर्णन आदि।

---

१. मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परै स्यामु हरित-दुति होइ॥१॥

सूरसागर

'सूरसागर' भक्त कवि सूरदास की ब्रजभाषा में रचित महत्त्वपूर्ण रचना है। श्री वल्लभाचार्य भागवत के जिन प्रकरणों की व्याख्या अपने कथा-प्रसंगों में किया करते थे, उन्हीं भावों में अपनी मौलिकता का समावेश कर सूरदास पद-रचना कर भगवान श्रीनाथजी के सम्मुख उनका गायन करते थे। "सूरसागर भागवत का अविकल अनुवाद न होते हुए उस पर आधारित अवश्य है।"[1] भागवत के समान ही 'सूरसागर' में द्वादश स्कन्ध हैं, किन्तु दशम् स्कन्ध में ही भक्तवर सूरदास का मन विशेष रमा है, शेष स्कन्धों का कलेवर छोटा है। भक्ति के आवेश में भावविह्वल होकर सूरदास ने जो पद गाये, वे ही 'सूरसागर' के नाम से हिन्दी साहित्य में विख्यात हैं। 'सूरसागर' की हस्तलिखित प्राचीन प्रतियाँ सर्वत्र उपलब्ध होती हैं, जिनके प्रमुखतया दो रूप मिलते हैं: १. द्वादश स्कन्धात्मक और २. संग्रहात्मक। सवा लाख पदों की कल्पना का अभी तक कोई प्रमाण नहीं है। सभी प्रतियों के अध्ययन और विश्लेषण के आधार पर लगभग पाँच-साढ़े पाँच हजार पदों से अधिक संख्या उपलब्ध नहीं होती है।

सूर का वर्ण्य विषय कृष्ण का प्रिय एवं प्रेमी रूप रहा है, इसलिए कृष्ण के शील, शक्ति और सौन्दर्य गुणों में से उनका मन लीलाविहारी कृष्ण के सौन्दर्य-पक्ष में ही अधिक रमा है। माधुर्यभाव की विभिन्न लीलाओं को आधार वनाकर सूरदास ने वात्सल्य एवं दाम्पत्य रति के असंख्य चित्र प्रस्तुत किये हैं। भगवान श्रीकृष्ण की अलौकिक लीलाओं, वालचेष्टाओं तथा राधा और गोपियों के संयोग-वियोगपक्ष के विशद निरूपण से 'सूरसागर' ओतप्रोत है। इनको आधार वनाकर राजस्थानी और उत्तर भारतीय विभिन्न शैलियों के चित्रकारों ने अनेक चित्र वनाये हैं, जो 'सूरसागर' के गहन अध्ययन की दृष्टि से विशेष उपयोगी हैं।

दशम् स्कन्ध 'सूरसागर' का प्राण है। इस स्कन्ध के पूर्वार्ध में कृष्णजन्म से लेकर, जन्मोत्सव, पूतना-वध, कागासुरवध, नामकरण, अन्नप्राशन, वर्षगाँठ, वालछवि वर्णन, क्रीड़न, माखनचोरी, गोदोहन, गोचारण, कालीदह-जलपान, दावानलपान, चीरहरणलीला, गोवर्धनलीला, रासलीला, दानलीला तथा राधा-कृष्ण की अन्य प्रेमलीलाओं और कृष्ण के मथुरागमन के उपरान्त माता यशोदा, गोपियों आदि के विरह का विस्तार से वर्णन हुआ है। स्कन्ध के उत्तरार्ध में कृष्ण-सम्बन्धी अन्य कलाओं का चित्रण हुआ है। काव्य एवं चित्रांकन की दृष्टि से दशम् स्कन्ध का पूर्वार्ध ही अधिक महत्त्वपूर्ण है। सूर द्वारा वर्णित अनेक लीलाओं के चित्र राजस्थानी चित्रकला में बने हैं जो न केवल धार्मिक और

---

१. डॉ० हरवंशलाल शर्मा: सूरदास और उनका साहित्य, पृ० १४३

सामाजिक दृष्टि से ही मूल्यवान हैं वरन् चित्रकला की दृष्टि से भी बड़े अर्घ्य और आकर्षक हैं। इनकी पीठिका में मनोविज्ञान की दृष्टि से बड़ी सुन्दर झाँकियाँ मिल सकती हैं।

सूरसागर का चित्रण

कृष्णचरित्र अनुभावों और दृश्यात्मकता की बहुलता के कारण विशेष चित्रोपयोगी रहा है। 'सूरसागर' उपर्युक्त चित्रोपयोगी उपकरणों का भण्डार है। राजस्थानी चित्रकला में भागवत की परम्परा में इस सम्पूर्ण ग्रन्थ का चित्रण तो किसी भी शैली में उपलब्ध नहीं है, पर निश्चित विशिष्ट पदों और प्रसंगों को आधार बनाकर चित्र बहुलता से बने हैं जो लघुचित्रों के रूप में देश-विदेशों में बिखरे पड़े हैं।

"राजस्थान में सर्वप्रथम वास्तविक चित्रशाला महाराणा जगतसिंह (१६२८-१६५२ ई०) के राज्यकाल में उदयपुर में प्रारम्भ हुई, जिसे 'चितारों की ओवरी' के नाम से जाना जाता है।"[१] सन् १६५०-५१ ई० में चित्रित यहाँ का 'सूरसागर' कला और काव्य के अध्ययन के लिए विशेष महत्त्व का है जिसके अनेक पदांकित सचित्र पन्ने गोपीकृष्ण कानोड़िया, कलकत्ता के निजी संग्रह में उपलब्ध हैं।[२] मेवाड़शैली के ये चित्र अत्यन्त उत्कृष्ट और कलात्मक हैं। इसी समय के कुछ लघुचित्र कुं० संग्रामसिंह तथा रामगोपाल विजयवर्गीय के निजी संग्रह में भी द्रष्टव्य हैं। 'सूरसागर' को चित्रित करने में मेवाड़शैली की प्रमुख देन रही है। भ्रमरगीत के प्रसंग पर आधारित मेवाडशैली में १६५९ ई० में चित्रित अनेक पन्ने राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में सुरक्षित हैं।[३] विदेशों में 'सूरसागर' के अनेक लघुचित्र बिखरे पड़े हैं,[४] जिनका कला और साहित्य की दृष्टि से अध्ययन अत्यावश्यक है। १८वीं शती के मध्य में मेवाड़शैली में चित्रित गोवर्धनधारण-प्रसंग के लगभग एक दर्जन चित्र बड़ौदा म्युजियम में उपलब्ध हैं,[५] जिनमें पत्रों के चारों ओर पद लिखे हैं तथा बीच में पदों के भाव के आधार पर चित्र बने हैं।[६] 'सूरसागर'-सम्बन्धी अनेक चित्र ऐसे हैं, जिन पर केवल कृष्ण के लीला-सम्बन्धी

---

१. भँवरलाल शर्मा : राजस्थान के भित्तिचित्र, संस्कृति, वर्ष ७, अंक १.२, पृ० ३९
२. देखिए, डॉ० मोतीचन्द्र : मेवाड़ पेण्टिग, पृ० ३
३. राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली, क्रमसंख्या—५९-१-८४
४. देखिए, परिशिष्ट-क
५. ,, (विशेष विवरण) ओ० सी० गांगोली : क्रिटिकल कैटलॉग ऑफ मिनियेचर पेण्टिंग्स इन दि बड़ौदा म्युजियम
६. ,, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या-३

शीर्षक ही अंकित हैं। ऐसे चित्रों का आधार भागवत भी हो सकता है, किन्तु उन चित्रों के आधार पर निश्चय ही 'सूरसागर' के तत्सम्बन्धी पदों का अध्ययन भली प्रकार से किया जा सकता है। अधिकतर ऐसे चित्र अलौकिक लीला और शृंगारपरक लीला-सम्बन्धी हैं। ऐसे चित्रों की संख्या देशी-विदेशी संग्रहालयों और व्यक्तिगत संग्रहकर्त्ताओं के पास सर्वाधिक है।[१] कृष्णलीला-सम्बन्धी मेवाड़-शैली के जहाँगीरकालीन ४० लघुचित्र राजकीय संग्रहालय कोटा में उपलब्ध हैं, जो कला और भाषाभिव्यंजन की दृष्टि से बेजोड़ हैं। इनमें केवल घटना या भाव-सम्बन्धी शीर्षक अंकित हैं। सरस्वती-भण्डार, उदयपुर के ३२९ लघुचित्र भी मेवाड़शैली के इसी प्रकार के हैं।[२] भारत कलाभवन, वनारस और राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में भी ऐसे लघुचित्र विशेष उपलब्ध हैं। शीर्षकयुक्त और शीर्षकमुक्त ऐसे कृष्णलीलापरक चित्रों का कला-वीथियों में बाहुल्य है। संक्षेप में, प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से 'सूरसागर' राजस्थानी चित्रकला का प्रमुख आधार-ग्रन्थ रहा है।

रसिकप्रिया

आचार्य केशवदास का यह ग्रन्थ समय की प्रथानुसार रसनिर्णय पर लिखा गया उत्तम ग्रन्थ है। केशवदास सौभाग्यशाली कवि थे, जिन्हें इन्द्रजीत-जैसा रसज्ञ और गुणी आश्रयदाता मिला।[३] उनके दरबार में साहित्य और संगीत का अखाड़ा लगता था। रसज्ञ आश्रयदाता के दरबार की शोभा केशव-जैसे महान् कवि एवं प्रवीणराय-सी महान् संगीतज्ञा सुन्दरी से थी। प्रवीणराय ही वह आधार है, जिसने केशव के काव्य को मुखर कर दिया। उसके गुणगान में उन्होंने अनेक पद कहे हैं।[४] वस्तुतः, केशव की शिष्यता में काव्यशिक्षा ग्रहण करनेवाली प्रवीणराय का केशव से घनिष्ठ सम्बन्ध था। सं० १६४८ में तीसवर्षीय युवक कवि का मन राधा-कृष्ण के संयोग-वियोग के अनेक चित्रों में प्रवीणराय की अनुकम्पा से उलझा रहा, और रसिक इन्द्रजीत का आग्रह कवि की 'रसिकप्रिया' में फलीभूत हो उठा।[५] राजा इन्द्रजीत के अखाड़े की विलासप्रियता, प्रवीणराय की उद्दाम कलात्मक सुन्दरता तथा रीतिकालीन शृंगारप्रियता के कारण 'रसिक-

---

१. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-क
२. „ सरस्वती भण्डार, उदयपुर, क्रमसंख्या-९५०
३. „ विश्वनाथ प्रसाद : केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० २
४. „ वही, पृ० ९७-९८
५. इन्द्रजीत ताको अनुज, सकल धर्म को धाम ॥८॥
तिन कवि केशवदास सो, कीन्हो कर्म सनेहु।
सब सुख दे करि यों कह्यो, रसिकप्रिया करि देहु ॥१०॥

प्रिया' की रचना हुई। 'रसिकप्रिया' में प्रिय और प्रिया की लीला के अतिरिक्त अन्य किसी बात को स्थान नहीं दिया गया। रसिकजनों को नवरस का आनन्द देने के लिए राधा-कृष्ण की रतिक्रीड़ा में ही नवरसों का विधान कराने का ध्येय 'रसिकप्रिया' के कलाकार का है। रसनिर्णय पर रचित यह ग्रन्थ काव्य की दृष्टि से केशव की उत्कृष्ट रचना है। इस ग्रन्थ में उन्होंने शृंगार को रसराज मानकर अन्य रसों की भी स्थिति शृंगार के अन्तर्गत ही मान ली है तथा राधा-कृष्ण के बहाने नायक-नायिकाभेद के दो रूप दिये हैं अर्थात् प्रच्छन्न और प्रकाश, जो कवि केशव की ही मौलिक सूझ-बूझ है।

रसिकप्रिया का वर्ण्य

'रसिकप्रिया' रसिक सामाजिकों के लिए नायक-नायिकाभेद-सम्बन्धी रसनिर्णय पर रचित ग्रन्थ है। अलंकारवादी होने पर भी केशव ने रस की महिमा को स्वीकारा है। इतना अवश्य है कि वे रस के शास्त्रीय अध्ययन में नहीं फँसे हैं और शृंगार के रसराजत्व का सीधा विधान करने का प्रयत्न उन्होंने 'रसिकप्रिया' में किया है। "रसिकप्रिया के वर्ण्य में रस का प्रतिपादन रसज्ञों के लिए नहीं रसिकजनों के लिए हुआ है। आचार्य केशव का यह प्रयास किसी आचार्य का प्रयास नहीं, किन्तु किसी अध्यापक का परिचय है।"[१] इसमें नवरस के विवेचनार्थ प्रिया के सोलह शृंगार के आधार पर कुल १६ 'प्रकाश' का, पहले लक्षण और बाद में उदाहरण देते हुए, विवरण दिया गया है। राधा-कृष्ण को नायक-नायिका के रूप में प्रमुखतया परिपाटीनुसार कवि ने उदाहरण का आधार बनाया है। "उदाहरणों की दृष्टि से इस ग्रन्थ की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि ये सभी राधा-कृष्ण को आलम्बन मानकर रचे गये हैं, यहाँ तक कि शृंगारेतर रसों में भी यही युग्म आलम्बनरूप में गृहीत है। इस प्रकार केशव ने रूपगोस्वामी आदि भक्त आचार्यों का अनुमोदन करते हुए राधा-कृष्ण के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है।"[२] केशव के सामने कृष्णचरित्र की दो परम्पराएँ मौजूद थीं[३]—प्रथम जयदेव और विद्यापति की परम्परा, जिसमें नायक और नायिका के रूप में कृष्ण और राधा का उल्लेख कर दिया जाता था और द्वितीय सूरदास, नन्ददास आदि भक्त कवियों की परम्परा, जिसमें कृष्ण की विशिष्ट जीवनलीलाओं को उदाहरणस्वरूप चित्रित किया गया है।

---

१. चन्द्रबली पाण्डे : केशवदास, पृ० ४६
२. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास : सं० डॉ० नगेन्द्र, भाग पृ० ३०४
३. देखिए, डा० रामसागर त्रिपाठी : मुक्तक काव्य-परम्परा और बिहारी, पृ० ४३४

नायक-नायिकाभेद-सम्बन्धी लक्षण-ग्रन्थ होने के कारण 'रसिकप्रिया' में प्रथम परम्परा का निर्वाह ही अधिक हुआ है। रीतिकालीन वैभवपूर्ण सामन्ती विलासमय दरबारी जीवन का कवि ने राधा-कृष्ण के बहाने खुलकर चित्रण किया है, जिसका विस्तृत, गहन और स्पष्ट अध्ययन राजस्थानी चित्रकला की तुलना द्वारा भली प्रकार से किया जा सकता है।

रसिकप्रिया का चित्रण

मध्यकालीन भारतीय चित्रकला में जयदेव के 'गीतगोविन्द' के उपरान्त केशवदास (१५५५-१६१७ ई०) की 'रसिकप्रिया' सर्वप्रमुख एवं बहुचित्रित काव्याधार रही है। विदेशों में कला-मर्मज्ञ, सूर और तुलसी से अधिक, केशव की 'रसिकप्रिया' से अधिक परिचित हैं, जिसका प्रमुख कारण इसका बहुचित्रण ही है। काव्य का प्रेत माना जानेवाला कवि सामन्ती कलात्मक परिवेश के लिए कितना रसिक एवं प्रिय रहा है, यह बात उनकी 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' नामक रीतिग्रन्थों के तत्कालीन प्रभाव से ही ज्ञात होती है। राजस्थानीशैली, पहाड़ीशैली, मुगलशैली आदि में 'रसिकप्रिया' के न जाने कितने ही चित्र बने हैं, जो विश्व-भर के संग्रहालयों में बिखरे पड़े हैं। 'रसिकप्रिया' का सर्वप्रथम चित्रण कब और किस शैली में हुआ, यह जान पाना कठिन है। हो सकता है, राजा इन्द्रजीत के अखाड़े में रहनेवाले चित्रकारों ने सर्वप्रथम 'रसिकप्रिया' की नायिकाओं को प्रवीणराय की आकृति में ढाला हो। "मुगलशैली में चित्रित अब तक के प्राचीनतम उपलब्ध 'रसिकप्रिया' के ४४ चित्र ऐतिहासिक दृष्टि से विशष महत्त्वपूर्ण हैं। ये चित्र निश्चय ही १५९१ ई० से बाद के और १६१०-१६१५ ई० के पूर्व के हैं। आनन्द कुमारस्वामी की राय में बीरबल को भेंट करने के लिए शायद ये चित्र बने।"[1] अकबर के दरबार में प्रवीणराय का आना, और अकबर का केशव के काव्य से प्रभावित होना तथा ग्रन्थचित्रण में विशेष रुचि रखना, इस तथ्य की विशेष पुष्टि करता है। सचित्र काव्य के निर्माण की दरबारी परम्परा में आचार्य केशव की 'प्रियाओं' ने अपनी दरबारी संश्लिष्ट प्रसिद्धि के कारण अवश्य ही स्थान पाया होगा। "अकबरकालीन मुगलशैली-विभूषित 'रसिकप्रिया' की एक प्रति के ४४ चित्र पाये गये हैं, जिनमें से ३२ बोस्टन संग्रहालय में तथा अन्य लन्दन और अमरीका के निजी संग्रहालयों में बिखरे पड़े हैं।"[2] १७वीं शती के मध्य से तो 'रसिकप्रिया' राजस्थानी शैलियों का प्रमुख विषय बन गयी। मेवाड़, बूंदी, बीकानेर, मारवाड़ आदि की शैलियों में चित्रित 'रसिकप्रिया' कला की

---

१. डॉ० बेसिल ग्रे : इण्डियन पेण्टिंग, पृ० १०८, फलक ३७
२. रायकृष्णदास : भारत की चित्रकला, पृ० ७८

दृष्टि से उत्कृष्ट है। १७वीं शती के मध्य का मेवाड़शैली में चित्रित 'रसिकप्रिया'[१] कलामर्मज्ञों की चर्चा का विषय रहा है। डॉ० हरमन ग्वेत्स ने प्रारम्भ में इसे अम्बरशैली का (१५९७ ई० के लगभग चित्रित) माना था, किन्तु शोध करने पर यह १७वीं शती के मध्य में चित्रित मेवाड़शैली का ठहरता है।[२] मेवाड़-शैली के ही उसी समय के अनेक चित्र विभिन्न संग्रहालयों और संग्रहकर्त्ताओं के पास विखरे पड़े हैं, जिनमें मोतीचन्द्र खजांची, कुं० संग्रामसिंह, रामगोपाल विजयवर्गीय तथा सरस्वती-भण्डार, उदयपुर, आर्ट गैलेरी, वड़ौदा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।[३]

'रसिकप्रिया' का चित्रण बूंदीशैली में विशेष उपलब्ध है। भौगोलिक दृष्टि से बूंदी ओरछा के अधिक समीप रहा है तथा बूंदी के कलात्मक परिवेश और काव्यात्मक वातावरण ने केशव के प्रभाव को अधिक ग्रहण किया है। १८वीं शती में चित्रित बूंदीशैली के 'रसिकप्रिया' के अनेक चित्र विभिन्न संग्रहालयों में उपलब्ध हैं, जिनका विवरण परिशिष्ट में दिया गया है। राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली में कोटा के किसी ठिकानेदार से खरीदी गयी ४८ पन्नों की अपूर्ण 'रसिक-प्रिया' कला की उत्कृष्ट धरोहर है।[४] प्रत्येक चित्र के ऊपरी भाग में 'रसिकप्रिया' का छन्द कलात्मक ढंग से शुद्ध लिखा है। सभी चित्र गहरे लाल हाशिये से परि-वेष्ठित हैं, उनमें अधिकतर सुनहरा, लाल, हरा, नीला, गुलावी आदि रंगों का प्रयोग किया गया है। १८वीं शती के मध्य के ये चित्र राधा-कृष्ण की लीलाओं के परिवेश के अध्ययन की दृष्टि से तीन भागों में विभाजित किये जा सकते हैं[५]:

१. महलों का परिवेश जिसमें केशव की विलासपूर्ण अभिव्यक्ति के अनुकूल विशाल वारहदरियाँ, रंगबिरंगा प्रांगण, परकोटा तथा वड़े-वड़े कमरे, मुगलशैली मिश्रित गोल और घुमावदार राजपूत छतरियाँ और धवल भवन चित्रित हैं। अट्टालिकाओं के परिवेश में राधा-कृष्ण की रंगरेलियाँ अंकित हैं। वैभव का वाता-वरण, रंग-विरंगा फर्श, चित्रित स्तम्भ, सुनहरी कामदार पर्यंक, पर्दे और चिकें आदि राजसी ठाठवाट से सुशोभित सारा वातावरण बड़े मनोयोग से चित्रित किया गया है।[६]

---

१. वीकानेर दरवार के निजी संग्रह में द्रष्टव्य
२. देखिए, डॉ० मोतीचन्द्र : मेवाड़ पेण्टिग, पृ० ३
३. प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्र सं० ६
४. आदर्श वनर्जी : इलस्ट्रशन्स टू दि रसिकप्रिया फ्रॉम बूंदी कोटा, ललितकला, अंक ३-४, पृ० ६७
५. देखिए, वही
६. देखिए, ललितकला, अंक ३-४, फलक सं० २३-२६

२. कुंज और वनों का परिवेश—कुछ चित्रों का आधार कुंज और वन हैं, जहाँ राधा-कृष्ण की लीलाओं का चित्रण किया गया है। लता-गुल्मों से आच्छादित उपवन, कमलों से सुशोभित सरोवर, अनेक फूलों, पेड़-पौधों की पृष्ठभूमि में राधा-कृष्ण की नायक-नायिकाभेदपरक रंगरेलियों का सुन्दर चित्रण किया गया है।[1]

३. खुला परिवेश—कुछ चित्रों में राधा-कृष्ण की शृंगारलीलाओं का क्षेत्र गलियाँ या खुला हुआ परिवेश चुना गया है।

उपर्युक्त सभी चित्र, कला के तथा राजसी ठाठबाट के अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्त्व के हैं। एन० सी० मेहता आर्ट गैलरी, अहमदाबाद में १७वीं शती के अन्त के कुछ चित्र कला की दृष्टि से बेजोड़ हैं, जिनमें बूँदीशैली का वैभव और 'रसिकप्रिया' की कल्पना साकार हो उठी है। श्री मोतीचन्द्र खजांची के निजी संग्रह में बूंदी के कुछ महत्त्वपूर्ण सचित्र पन्ने हैं, जिनका समय १८वीं शती का प्रारम्भ माना जाता है।[2]

संक्षेप में, राजस्थानी चित्रण की विभिन्न शैलियों में 'रसिकप्रिया' का चित्रण उपलब्ध होता है, जिसके आधार पर रीतिकाल तथा 'रसिकप्रिया' और उसके अनुवर्ती नायक-नायिकाभेदपरक काव्यों का अध्ययन विस्तार से किया जा सकता है।

बिहारी-सतसई

राजस्थानी चित्रकला के कृष्णचरित्र-सम्बन्धी बहुचित्रित आधार-ग्रन्थों में बिहारीलाल (सं० १६५२-१७२०) द्वारा रचित 'बिहारी-सतसई' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। 'गाथा-सप्तशती', 'अमरुक शतक' 'आर्या-सप्तशती' आदि की परम्परा में बिहारी ने अपनी सतसई की रचना कर हिन्दी में शृंगारपरक सतसइयों का प्रारम्भ किया। उपर्युक्त मूलग्रन्थ के उपलब्ध अनेक पाठभेदों में श्री जगन्नाथ प्रसाद 'रत्नाकर' द्वारा ७१३ दोहों का सम्पादित 'बिहारी-रत्नाकर' अधिक शोधपूर्ण एवं प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है।

बिहारी रीतिकालीन दरबारी कवि थे, इसलिए उनकी सतसई में सामन्ती जीवन का यथार्थ एवं चमत्कारपूर्ण चित्रण देखने को मिलता है। ओरछा के दरबार के उपरान्त शाहजहाँ के वैभवपूर्ण मुगल दरबार को बिहारी ने निकट से देखा

---

१. देखिए, ललितकला, परिशिष्ट ३-४, फलक सं० २५
२. „ कार्ल खण्डालवाला : मिनियेचर पेंटिंग फ्रॉम मोतीचन्द्र खजांची, पृ० ३९

था।[1] उनकी काव्य-कला से प्रभावित होकर राजस्थान के अनेक राजाओं ने उनकी वार्षिक वृत्ति बाँध दी थी। एक बार वे आम्बेर के मिर्जा राजा जयसिंह (१६२५-१६६७ ई०) के पास अपनी वृत्ति लेने गये थे, तब से अपने काव्य द्वारा राजा तथा अन्य सामन्तवर्ग को प्रभावित करने के कारण वहाँ के राजकवि बन-कर नियमित दोहों की रचना कर पुरस्कृत होने लगे।[2] 'बिहारी-सतसई' की रचना के लिए उन्होंने मिर्जा राजा जयसिंह को निमित्त माना है।[3] आम्बेर दरबार के अतिरिक्त बूंदी और जोधपुर के राज्यों से भी उनका सम्पर्क रहा था, जिससे निश्चय ही राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियों को बिहारी ने प्रभावित किया है।

७१३ दोहों का शृंगारपरक मुक्तक-काव्य-परम्परा का यह ग्रन्थ काव्य एवं चित्रकला के विस्तार के लिए आधार-ग्रन्थ के रूप में विशेष महत्त्व का रहा है। रीति-परम्परा की शृंगारी प्रवृत्ति को बढ़ावा देने, विभिन्न टीकाएँ एवं सचित्र-ग्रन्थ निर्माण करवाने में 'बिहारी-सतसई' का योगदान उल्लेखनीय है। "शृंगारी कवियों में बिहारी का स्थान बहुत ऊँचा है। नीति, भक्ति, वैराग्य आदि के दोहे भी उन्होंने अवश्य लिखे हैं, किन्तु सतसई में प्रधानता शृंगाररस ही की है।[4] शृंगार के संयोग एवं वियोगपक्ष के आधार पर नायक-नायिकाओं के हाव, भाव, अनुभावों का सूक्ष्म, भावपूर्ण, चित्रात्मक एवं चमत्कारपूर्ण अंकन 'बिहारी-सतसई' में गागर में सागर भरने की उक्ति को चरितार्थ करता है। निश्चय ही अपनी वाक्पटुता, विस्तृत ज्ञान, समाहार-शक्ति आदि द्वारा कम-से-कम शब्दों में गहन, गूढ़ और विस्तृत संश्लिष्ट सतरंगा चित्रण उनकी सतसई में हुआ है। रीतिकालीन सामन्ती विलासपूर्ण जीवन की सजीव झाँकी 'बिहारी-सतसई' में सजीव एवं चित्रमय हो उठी है।

बिहारीलाल श्री स्वामी हरिदास के सम्प्रदाय के महन्त श्री नरहरिदासजी के शिष्य थे।[5] रसपूर्ण सखीभाव की भक्ति में उनकी विशेष आस्था थी। मंगलाचरण में ही उन्होंने शृंगार के मुख्य आधार राधा-कृष्ण की युगल छवि का चित्रण कर

---

१. देखिए, सं० डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ, पृ० ५१८-२३
२. देखिए, जगन्नाथ प्रसाद 'रत्नाकर' : कवि बिहारीलाल
३. हुकुम पाई जय साहि कौ, हरि-राधिका-प्रसाद
करी बिहारी सतसई भरी अनेक सवाद ।।७१३।।
४. जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' : बिहारी-रत्नाकर, पृ०११
५. जम-करि मुँह-तरहरि पर्‌यौ, इहिं धरहरि चितलाउ।
विषय-तृष्णा परिहरि अजौं नरहरि के गुण गाउ ।।२१।।

राधिकाजी की उपासना के महत्त्व को प्रस्थापित किया है।[1] 'बिहारी-सतसई' में अनेक दोहे ऐसे हैं, जिनका सम्बन्ध किसी-न-किसी प्रकार राधा-कृष्ण से है। "शृंगार वर्णन की प्रचलित परिपाटी के अनुसार बिहारीलाल ने नायक-नायिका के लिए कृष्ण और राधिका का प्रयोग किया है। उनके राधा-कृष्ण केवल वृन्दावन में ही रास रचनेवाले नहीं थे। वे आगरा और जयपुर की गलियों एवं रंगमहलों में परस्पर छेड़छाड़ करते तथा भाँति-भाँति के खेल खेला करते थे। नायक-नायिकाओं का वर्णन करते समय उन्होंने कृष्ण तथा उनके पर्यायी शब्दों (जैसे : मोहन, बनमाली, नन्दकिशोर, गोपाल, घनश्याम आदि तथा राधा, गोपी, ग्वालिन आदि) का निःसंकोच प्रयोग किया है।"[2] पूर्वप्रचलित कृष्णकाव्य की दोनों ही परम्पराओं[3] को बिहारी ने अपनाया है। अध्ययन की दृष्टि से 'बिहारी-सतसई' में उपलब्ध कृष्ण-सम्बन्धी दोहों को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं[4] :

१. स्तुतिपरक—जिनमें कवि अपनी दीनता, विनय, मुमुक्ष, मानमर्षता का विश्लेषण करता है।[5]

२. जीवनलीलापरक—जिनमें कृष्ण की अनेक लीलाओं को आधार बनाकर संक्षिप्त रूप में विस्तृत भावों को अभिव्यक्त किया है। लीलापरक दोहों को भी तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं : (क) बाललीला-सम्बन्धी, (ख) प्रेम-लीला-सम्बन्धी—चीरहरण, रासलीला आदि, (ग) अलौकिक लीला-सम्बन्धी—पूतनावध, गोवर्धनधारण, रुक्मिणीहरण, अघासुरवध, दावानलपान आदि।[6]

३. नायक-नायिका भेदपरक—जिन दोहों में राधा-कृष्ण के बहाने नायक-नायिका भेदपरक शृंगारिकता का चित्रण किया गया है, यथा[7]—(क) दर्शन तथा आकर्षण, (ख) उत्कण्ठा की तीव्रता, (ग) संकेत तथा अभिसार, (घ) हास्य-विनोद, (च) भावगोपन, (छ) दूती-सम्प्रयोग, (ज) खण्डितावर्णन, (झ) वियोग-वर्णन।

उपर्युक्त विभाजन में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से लगभग ५० दोहे राधा-कृष्ण-सम्बन्धी हैं। सचित्र बिहारी-सतसइयों में प्रत्येक दोहे के नायक-नायिका

---

१. मेरी भवबाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
   जा तन की झाँई परै स्यामु हरित-दुति होइ ॥१॥
२. राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी : रीतिकालीन कविता एवं शृंगाररस-विवेचन, पृ० ३६६-६७
३. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, अध्याय ३
४. डॉ० रामसागर त्रिपाठी : मुक्तक-काव्य-परम्परा और बिहारी
५. देखिए, बिहारी-रत्नाकर, दोहा सं० १, ६८, ७१, ६१, २२१, ३०१ आदि
६. बिहारी-रत्नाकर, दोहा सं० ५२१, ५४१, ३१२ आदि
७. वही, दोहा सं० ७२, ८४, १५५, १६२, २१६, २६२, ४७२ आदि

राधा-कृष्ण के रूप में ही चित्रित हैं, किन्तु कृष्ण की जीवनलीला तथा नाम से जुड़े हुए लगभग ५० दोहे ही यहाँ विशेष अध्ययन के आधार हैं।

विहारी सतसई का चित्रण

चित्रोपयोगिता के कारण 'विहारी-सतसई' बहुचित्रित आधार-ग्रन्थों में प्रमुख रहा है। रीतिकालीन सामन्ती विलासपूर्ण जीवन की झाँकी 'विहारी-सतसई' में सजीव एवं चित्रमय हो उठी है। मुगलदरवार एवं आम्वेरदरवार में रहकर उन्होंने मुगल तथा राजपूती वैभव को समीप से देखा था। उसका सजीव एवं सतरंगा चित्रण उनके दोहों में साकार हो उठा है। सतसई का एक-एक दोहा अत्यधिक चित्रोपयोगी है। चित्र खड़ा करने के लिए ही मानो विहारी ने दोहों की रचना की हो। सतसई का कवि एक उत्कृष्ट कोटि का चित्रकार भी है जो सजीव मानसचित्रों के निर्माण में सिद्धहस्त है। यही कारण है कि सतसई को आधार बनाकर मुगलशैली, राजस्थानीशैली, और पहाड़ीशैली में असंख्य चित्र वने हैं, जो शोध एवं अध्ययन की बाट जोह रहे हैं।

'विहारी-सतसई' का प्रथम चित्रण कव और कहाँ हुआ, विना जानकारी के कह पाना कठिन है। किन्तु आम्वेर के दरवार में ऐसी परम्परा रही है, जिसने कला को प्रोत्साहन दिया है।[1] निश्चय ही अम्वरशैली में 'विहारी-सतसई' के आधार पर चित्र वने होंगे, पर विना आधार के कुछ कहा नहीं जा सकता। "मिर्जा राजा जयसिंह (१६२५-६७ ई०) के समय के कुछेक ही चित्र उपलब्ध होते हैं, जिनमें लोककला एवं मुगलशैली का पूर्ण प्रभाव है।"[2] बीकानेर के श्री मानधातासिंह के निजी संग्रह में १६४७-४६ ई० का चित्रित 'विहारी-सतसई'[3] एक महत्त्वपूर्ण संग्रह है, जिसके बारे में कहा जाता है कि वह अम्वरशैली का मुगलप्रभाव से युक्त एक अनोखा सचित्र ग्रन्थ है।[4] संग्रामसिंह द्वितीय के समय में १७२२ ई० में जगन्नाथ कविराय द्वारा चित्रित 'विहारी-सतसई' मेवाड़शैली की कलात्मक देन है।[5] अन्तिम पन्ने का लेख इस प्रकार है:
"सत्रह से जुछहत्रा चैतमास ऋतुराज, कृष्णपक्ष गुरू पंचमी लिख्यौ जू चित्र समाज। महाराज संग्रामसिंह केसर सकुल हलकाज, कीनी चित्रित सतसई जगन्नाथ कविराज।।" सम्पूर्ण सतसई में से केवल २३६ लघुचित्र वाकी हैं, शेष चोरी चले

---

१. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, अध्याय १
२. संग्रामसिंह : जयपुर्स युनिक कन्ट्रीब्यूशन टू राजस्थान, वार्षिकी १९६३, पृ० २७
३. जो स्वर्गीय श्री मानधातासिंह, बीकानेर के नाम से विशेष चर्चित है
४. देखिए, हरमन ग्वेत्स : जयपुर, भाग ११-२
५. सरस्वती-भण्डार, उदयपुर, सं० ६४१ हि० में द्रष्टव्य

गये या इधर-उधर बिखर गये।[1] चारों ओर लाल हाशिये से आवेष्ठित तथा ऊपरी पीले भाग में दोहा तथा नीचे दोहे के भाव पर अंकित चित्र ग्रन्थ की विशेषता है। अधिकतर चित्र दो से अधिक भावों को अभिव्यक्त करते हैं। मेवाड़शैली के ही अनेक लघुचित्र १८वीं शती के मध्य के यत्र-तत्र उपलब्ध हैं।[2] १७५० ई० के चित्रित बूंदीशैली के अनेक लघुचित्र व्यापारिक प्रवृत्ति के कारण यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं। श्री रामगोपाल विजयवर्गीय के पास सैकड़ों चित्र थे, जिनमें से कुछ ही उनके पास शेष हैं। इसी सैट के १६ सुन्दर लघुचित्र श्री आर० डी० खन्ना जयपुर के निजी संग्रह में विशेष उल्लेखनीय हैं। अन्य राजस्थानी चित्रशैलियों में 'बिहारी-सतसई' पर आधारित अनेक चित्र देशी-विदेशी संग्रहालयों एवं निजी संग्रहालयों के पास उपलब्ध हैं,[3] जिनको आधार बनाकर 'बिहारी-सतसई' के अध्ययन की समस्याओं को सुलझाया जा सकता है।

हिन्दी के कुछेक ऐसे काव्य हैं, जिनका किसी एक शैली-विशेष में ही, और वह भी कुछ निश्चित विशिष्ट पदों का ही, चित्रण उपलब्ध है। ऐसे सचित्र काव्यों को हमने ईषत्चित्रित काव्य की श्रेणी में रखा है, जिनमें से प्रमुख 'नागर-समुच्चय', 'रसराज', 'युगल-शतक' आदि हैं।

नागर-समुच्चय

भक्तवर नागरीदास अर्थात किशनगढ़ के राजा सावन्तसिंह (१६९९-१७६४ ई०) के विभिन्न छोटे-छोटे ६९ ग्रन्थों की अविकल सम्पादित रचनाएँ 'नागर-समुच्चय' के नाम से मुद्रित हैं।[4] इसका वर्ण्य विषय प्रमुखतया राधा-कृष्ण की विभिन्न लीलाएँ हैं। छोटे-छोटे २२-२३ ग्रन्थों में तो कृष्ण की लीलाओं का ही विशेष चित्रण हुआ है, जैसे[5]: १. रसिकरत्नावली, २१ पद, २. व्रजलीला, २१ पद, ३. गोपी-प्रेम प्रकाश, ६१ पद, ४. व्रज-वैकुण्ठ तुला, ५४ पद, ५. विहार-चन्द्रिका, ८५ पद, ६. मोर-लीला, २७ पद, ७. गोधन-आगम, ११ पद, ८. जुगलरस-माधुरी, १२ पद, ९. पावस-पच्चीसी, २५ पद, १०. गोपी-चैन-विलास, ४७ पद, ११. रासरसलता, २७ पद, १२. होरी की माँझ, ५ पद, १३. ठाकुर का जन्मोत्सव कवित्त, ४ पद, १४. ठकुराइन के जन्मोत्सव कवित्त, १७ पद, १५. साँझी के

---

१. ६४ लघुचित्र मुनि कान्तिसागर के पास हैं
२. कुं० संग्रामसिंह, रामगोपाल विजयवर्गीय आदि के पास द्रष्टव्य
३. देखिए, प्रस्तुत-ग्रन्थ, परिशिष्ट-क
४. महाराजा शार्दूलसिंहजी, किशनगढ़ की आज्ञा से मुम्बई में पं० श्रीधर शिवलाल ने १८९८ ई० में मुद्रित की
५. देखिए, फैयाजअली खाँ : भक्तवर नागरीदास, पृ० १९ (अप्रकाशित शोध-ग्रन्थ)

कवित्त, ४ पद, १६. रास के कवित्त, ४ पद, १७. चाँदनी के कवित्त, ५ पद, १८. गोवर्धनधारण के कवित्त, ६ पद, १९. होली के कवित्त, २२ पद, २०. हिंडोरा के कवित्त, ७ पद, २१. वन-विनोद, ८ पद, २२. बाल-विनोद, ६ पद।

उपर्युक्त ग्रन्थों की तालिका से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि 'नागर-समुच्चय' में राधा-कृष्ण की श्रृंगारपरक भावनाओं का चित्रण अधिक है। उत्सवों, विहारों, दैनिक-कार्यक्रमों आदि के माध्यम से नागरीदास ने राधा-कृष्ण का जो अंकन किया है, वह किशनगढ़ की चित्रशैली के लिए विशेष आधार रहा है। वणी-ठणी के संसर्ग से उन्होंने राधा-कृष्ण के युगल-स्वरूप के अनेक चित्र प्रस्तुत किये हैं। "उनका काव्य चित्रमय है, जिसका कारण उनका चित्रकार एवं चित्रकला-प्रेमी होना है। चित्रकार नागरीदास जानते थे कि शब्दचित्र किस प्रकार के होने पर तूलिका से खींचे जाने योग्य हो सकते हैं।"[1]

'नागर-समुच्चय' पर आधारित चित्र एकमात्र किशनगढ़शैली में अंकित हुए हैं और किशनगढ़दरबार के निजी संग्रह में ही विशेष द्रष्टव्य हैं। कपड़े तथा कागज पर बने ये चित्र राजस्थानी चित्रकला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।[2]

रसराज

मतिराम का कीर्तिस्तम्भ और सहृदयों का कण्ठहार 'रसराज' नायक-नायिक भेद से सम्बन्धित ग्रन्थ है। प्रस्तुत ग्रन्थ में श्रृंगार के आलम्बन नायक-नायिका के भेदोपभेद, उनके हाव-भाव, अनुभाव, दर्शनभेद आदि के वर्णन में भानुदत्त की 'रसमंजरी' का पूरा आधार ग्रहण किया गया है।[3] मतिराम के नायक और नायिका भी परम्परागृहीत कृष्ण और राधा हैं। उनकी विभिन्न श्रृंगारपरक लीलाओं, रंगरेलियों का चित्रण मतिराम ने सहज और भावानुकूल भाषा में किया है। "वे भाषा की नाड़ी पहचानते हैं।"[4] भावसौन्दर्य में कई कवि उनके समान भले ही हों, पर उनसे बढ़कर नहीं। भाषा की सरलता एवं सहज ग्राह्यता के कारण ही मतिराम राधा-कृष्ण की नायक-नायिकापरक विशेषता का सुन्दर अंकन करने में समर्थ हो पाये हैं। बूँदी में भावसिंह के दरबार में रहकर कवि ने दरबारी जीवन का ऐश्वर्य समीप से देखा, तथा वहाँ के शालीन और प्राकृतिक सौन्दर्य से भी वे प्रभावित हुए। उदाहरणों की सुन्दरता और काव्यात्मक उत्कृष्टता के साथ-ही-साथ यह कहते ही बनता है कि मतिराम के 'रसराज' में आचार्यत्व से अधिक

---

१. फैयाज अली : भक्तवर नागरीदास, पृ० १९२
२. देखिए, ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेण्टिंग, फलक सं० ४, ६, ७, ९, ११
३. „ रामजी मिश्र : रसराज, पृ० ५०
४. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० ३१३

चितेरे कवि का रूप अधिक उभरकर आया है।[१] "लोकप्रियता की दृष्टि से पद्माकर के 'जगद्विनोद' के उपरान्त मध्ययुगीन नायिकाभेद-ग्रन्थों में मतिराम के 'रसराज' का ही नाम लिया जा रहा है,"[२] किन्तु आश्चर्य की बात है कि 'जगद्-विनोद' और 'रसराज' दोनों ही विशेष चित्रोपयोगी ग्रन्थ होते हुए भी चित्रकला में 'रसिकप्रिया' की भाँति बहुचित्रित आधार-ग्रन्थ नहीं रहे। अब तक की ज्ञात सामग्री के आधार पर 'रसराज' के ही लघुचित्र उपलब्ध हुए हैं, जिनमें से अधिक-तर रामगोपाल विजयवर्गीय के निजी संग्रह में हैं। १८वीं शती के जोधपुरशैली के ६२ चित्र वहाँ के नाथों से रामगोपालजी ने प्राप्त किये, जिनमें से २२ चित्र उनके पास हैं। शेष बेच दिये। इसी शैली के कुछ चित्र राजकीय संग्रहालय, जयपुर और बीकानेर में भी हैं। बूंदी के राजकवि होने के कारण बूंदीशैली में 'रसराज' का चित्रण होना चाहिए, किन्तु बिना आधार के कुछ कह पाना कठिन है। बुन्देलखण्डशैली में जब 'रसराज' का चित्रण उपलब्ध है[३] तो अन्य राजस्थानी शैलियों में भी होना सम्भव है। वस्तुतः 'रसराज' के अध्ययन का आधार केवल इन्हीं सीमित लघुचित्रों को बनाना पड़ेगा।

ईषत्चित्रित रचनाओं में श्रीभट्टकृत 'युगल-शतक' का नाम भी उल्लेखनीय है। "श्रीभट्ट निम्बार्क-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान, केशव काश्मीरी के प्रधान शिष्य थे।"[४] इनकी कविता सीधी-सादी और चलती भाषा में है। इनका 'युगल-शतक' १०० पदों का चित्रोपयोगी ग्रन्थ कृष्णभक्तों में विशेष आदर से देखा जाता है। राधा-कृष्ण की विहारलीला से सम्बन्धित पद जयपुरशैली में यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं।[५] इसके अतिरिक्त दयासखी, रसखान, परमानन्ददास के पदों को आधार बनाकर भी चित्रण हुआ है, किन्तु ऐसे लघुचित्र बहुत कम हैं।[६]

स्फुट चित्ररचनाएँ

राजस्थानी चित्रकला में कुछ विषय इतने प्रसिद्ध हैं कि उनका अधिकतर शैलियों में विशेष चित्रण हुआ है। संगीतरचना (राग-रागिनी), बारहमासा, ऋतुवर्णन आदि इसी प्रकार के विषय हैं। निश्चय ही उपर्युक्त विषयों का आधार भी काव्य ही रहा है। राग-रागिनी, बारहमासा, ऋतुवर्णन आदि विषय

---

१. देखिए, डॉ० भागीरथ मिश्र : हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० ८७
२. करुणापत त्रिपाठी : रसराज, परिचय, पृ० ६
३. देखिए, एन० सी० मेहता इण्डियन पेण्टिंग, फलक सं० १६
४. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १८१
५. कुं० संग्रामसिंह तथा रामगोपाल विजयवर्गीय के निजी संग्रह में द्रष्टव्य
६. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ

भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन काव्य में निरपेक्ष एवं सापेक्ष दोनों ही रूपों में उपलब्ध हैं[1], जिनका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कृष्णचरित्र से ही अधिक सम्बन्ध रहा है। स्फुट चित्रित इस काव्यांश का विस्तार से अध्ययन हो सकता है, क्योंकि राजस्थानी चित्रकला की अनेक शैलियों में उपर्युक्त काव्यांशों का विशेष चित्रण उपलब्ध होता है। उपर्युक्त विषयों से सम्बन्धित फुटकर काव्य को आधार बनाकर जो विशेष चित्रण किया गया है, वह अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्त्व का है।

गीत-संगीतरचनाएँ

भारतीय संगीत का आधार राग है। शारंगदेव ने अपने 'संगीत-रत्नाकर' में ध्वनि की उस विशिष्ट रचना को, जिसे स्वर तथा वर्ण द्वारा सौन्दर्य प्राप्त हुआ हो और जो श्रोताओं के चित्त को प्रसन्न कर सके, राग माना है।[2] राग-रागिनियों के स्वरूप के बारे में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। "जिस प्रकार ८४ योग और ८४ भोगों का समावेश हमारे यहाँ मान्य है, उसी प्रकार ८४ राग-रागिनियों की कल्पना भी की गयी है।"[3] १५वीं शताब्दी से उत्तरी भारत में राग-रागिनी के स्वरूप तथा वर्गीकरण की प्रणाली पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। समय की गति के साथ ही राग-परिवार में वृद्धि होती रही है, और प्रत्येक राग के साथ उनकी भार्याओं, पुत्रों तथा पुत्र-वधुओं का भी उल्लेख होने लगता है, "किन्तु राग-रागिनीपद्धति को माननेवाले संगीताचार्यों के मतों में एकता नहीं दिखायी पड़ती। अधिकतर संगीत-सम्बन्धी ग्रन्थों एवं कृष्णभक्ति-काव्य में ६ रागों एवं ३६ रागनियों का विशेष उल्लेख मिलता है।"[4]

मध्यकाल की देन

काव्य एवं संगीत का परस्पर सम्बन्ध होने के कारण राग-रागिनियों में बद्ध काव्य भक्तिकाल की विशेष देन है। पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक महाप्रभु वल्लभाचार्य ने संगीत को भगवत्प्राप्ति के प्रमुख साधनों में से माना है। "श्रीनाथजी के स्वरूप-

---

१. देखिए, सं० डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, पृ० २०५-७

२. षोड़सो ध्वनि विशेषस्तु स्वरवर्ण विभूषितः।
रंजको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधः॥
—शारंगदेव : संगीतरत्नाकर, भाग २, पृ० २

३. रामगोपाल विजयवर्गीय : रागरागिनी, संयुक्त राजस्थान, अक्टूबर-नवम्बर १९५७, पृ० ३१

४ उषा गुप्ता : हिन्दी के कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत, पृ० १७६

पूजन में श्रृंगार, भोग, तथा राग द्वारा की गयी सेवाविधि के अन्तर्गत संगीत तथा संकीर्तन को प्रमुख स्थान प्राप्त था। प्रत्येक समय तथा उत्सव की झाँकी में विविध राग-रागिनियों में बद्ध समयोचित भावानुकूल पदों के गायन, कीर्तन की सम्यक आयोजना थी।"[१] अष्टछाप के कवियों का महत्त्व काव्य एवं संगीत के सामंजस्य की दृष्टि से और भी विशेष उल्लेखनीय हो जाता है। उनके प्रत्येक पद की रचना राग-रागिनी के आधार पर होना तथा काव्य में उनका उल्लेख होना इस कथन का साक्षी है।[२] आगे चलकर तो संस्कृत की परम्परा में हिन्दी में भी श्रृंगार-सतसई और नायक-नायिका भेद-ग्रन्थों की भाँति राग-रागिनियों पर स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे जाने लगे।[३] १२वीं शती से १७वीं शती तक राग-रागिनियों के वर्गीकरण की जो परम्परा रही है, उसने तत्कालीन तथा परवर्ती संगीत-साहित्य और चित्रकला को विशेष रूप से प्रभावित किया। कृष्णभक्त कवियों के पदों के ऊपर किसी-न-किसी राग का उल्लेख अवश्य है। विभिन्न राग-रागिनियों का निर्माण उनके स्वरों की प्रकृति के अनुसार तथा उनका स्वरूप उनके स्वभाव और गुण के अनुसार ही मूर्तिमान हुआ है। काव्य, संगीत और चित्रकला में राग-रागिनियों के स्वभाव और गुण की दृष्टि से एक का ही रूप प्रस्तुत किया गया है, जो तीनों कलाओं के सम्बन्ध को स्पष्ट करता है।

गीत-संगीतरचनाओं का चित्रण

अमूर्त का मूर्तिकरण करने की प्रवृत्ति भारतीय संस्कृति की विशेष देन रही है। देवी-देवताओं के कल्पित मूर्त स्वरूप के समान ही राग-रागिनियों की मूर्तता का जो कलात्मक चित्रण एवं उत्कीरण क्रमशः चित्रकला और मूर्तिकला[४] में हुआ है, वह संगीत की अमूर्तता के मूर्तिकरण का प्रत्यक्ष उदाहरण है। राग-रागिनी के स्वरूपचित्रण में काव्य विशेष रूप से आधार रहा है। राग-रागिनी के स्वतन्त्र ग्रन्थों के अतिरिक्त देवी-देवताओं, नायक-नायिकाओं, राधा-कृष्ण आदि से सम्बन्धित काव्य की चित्रोपयोगिता तथा अष्टनायिकाओं के विविध रूपों एवं

---

१. उषा गुप्ता : हिन्दी के कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत, पृ० ११४

२. छहों राग छत्तीसों रागिनी, इक-इक नीके गावैंरी ॥

—सूरसागर, प्रथम खण्ड, पद १८५६, पृ० ६९८, पद २७३-६ में समस्त रागरगिनियों का विशेष उल्लेख

३. कृष्णभक्तिकालीन कवि हरिराम व्यास का अप्रकाशित ग्रन्थ 'रागमाला' विशेष उल्लेखनीय है

४. चित्तौड़ के विजयस्तम्भ में द्रष्टव्य

"देश-काल के अनुकूल अभिप्रायों"[1] ने राग-रागिनीचित्रण में विशेष योग दिया है। कुछ ऐसे कथानक, जिनका सम्बन्ध राग से है, तथा ऐसे महीनों और ऋतुओं का चित्रण, जिनमें वे राग गाये जाते हैं, तथा राग के भाव, रस आदि का चित्रण 'रागमाला' में विशेष रूप से हुआ है। कुछेक राग-रागिनियों के स्वरूप का सम्बन्ध कृष्णचरित्र से जोड़ने के कारण कृष्णकाव्य उनके अंकन का आधार रहा है। रसिकविहारी, रासधारी, मुरलीमनोहर के अनेक चित्र गीत-संगीतरचनाओं से सम्वन्धित हैं, अतः उन रचनाओं के अध्ययन की दृष्टि से रागों का ज्ञान अपेक्षित है :

१. **हिण्डोल**—इसका सम्बन्ध श्रावण मास में झूलने से है। कृष्ण (नायक) का हिण्डोले में झूलना ही इसका प्रतीकार्थ है। श्रावण मास में हिण्डोलों की झाँकी इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। प्रेम की अनेक यादों से सम्वन्धित यह राग कृष्ण के प्रेमी स्वरूप को अभिव्यंजित करता है, इसलिए अष्टछापीय या अन्य भक्त कवियों के 'झूलणा'-सम्बन्धी पद इस राग के चित्रण[2] के विशेष आधार हैं। कवियों ने भी 'हिण्डोल' के पदों में हिण्डोल और मलार राग का प्रयोग किया है।[3] हिण्डोल राग के चित्रों के आधार पर कृष्णपरक रचनाओं का अध्ययन किया जा सकता है।

२. **मेघ-मलार**—राग मेघ, मलार, और मेघ-मलार का स्वरूप बरसात के उद्दाम वातावरण से सम्बन्धित है, इसलिए ऐसे वातावरण में कृष्ण गोपियों के साथ मयूर की भाँति नाच उठते हैं। काले-काले बादलों का घुमड़-घुमड़कर बरसना, व्रज के सतरंगे प्रकृति-परिवेश में कृष्ण के वंशीवादन, नर्तन आदि का चित्रण जिस काव्य में हुआ है, वही प्रायः मेघ-मलार या मलार में गाया जाता रहा है।[4] मेघ-मलार का चित्रण सर्वत्र ही कृष्ण का गोपियों के साथ श्रावण-भादों के बरसाती वातावरण में नृत्य करते हुए उपलब्ध होता है। कृष्णभक्त कवियों और विशेषतया सूरदासजी के सम्पूर्ण पावस-प्रसंग में मेघ-मलार एवं उसकी विभिन्न रागिनियों का अधिक प्रयोग हुआ है। पावस-प्रसंग के पदों का अध्ययन तत्सम्बन्धी रागिनीचित्रों के आधार पर किया जाना चाहिए।

३. **बसन्त**—वसन्त राग ऋतुराज बसन्त के शृंगारी वातावरण का प्रतीक

---

१. सिंघवी रागिनी सिंघ के संसारप्रसिद्ध घोड़ों की प्रतीक और सोरठी सौराष्ट्र का राग होने के कारण बीजा-सोरठ के प्रमाख्यान की प्रतीक है
२. डॉ० नारायण मेनन : म्युजिक एण्ड दिं विजुवल आर्ट्स इन इण्डिया, टाइम्स ऑफ इण्डिया एनुवल-१९६५, पृ० ६६
३. देखिए, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या १८
४. देखिए, सूरसागर, झूलना, पृ० ११२३-३० तथा नागर-समुच्चय, हिण्डोरा के पद

है। कामदेव प्रेम का देवता है, किन्तु भक्तिकाल में कृष्ण की शृंगारी प्रवृत्तियों का चित्रण अधिक होने के कारण बासन्ती मादक वातावरण का सम्बन्ध कृष्ण की विभिन्न लीलाओं से जोड़ा गया है, इसीलिए बसन्त राग का चित्रण कृष्णकाव्य पर आधृत है। कृष्ण की बसन्तलीला का चित्रण करते हुए कवियों ने भी बसन्त राग का ही अधिक प्रयोग किया है।[१]

४. कान्हड़ा—इस राग का सम्बन्ध भी कृष्ण से है। कृष्ण का कान्हा और कान्हड़ा रूप प्राकृत में प्रचलित है। "इस राग के मूर्त स्वरूप में हाथों को वशीभूत करना प्रायः चित्रित होता रहा है, जिसका स्रोत कृष्ण का गजासुर-उद्धार से लगाया जाता है।"[२] गजासुर-उद्धार के पदों के अध्ययन का आधार कान्हड़ा राग के चित्र हैं।

५. नट-नारायण—वैष्णव धर्म से सम्बन्धित विशेष राग नट-नारायण (नृत्यकार विष्णु) है, इसमें विष्णु का स्वरूप ही विशेष चित्रित मिलता है।[३] वैष्णव काव्य इस राग के चित्रण का आधार है।

राजस्थानी चित्रकला में किशनगढ़शैली[४] के अतिरिक्त अन्य सभी शैलियों में गीत-संगीतरचनाओं (राग-रागिनियों) के चित्र बहुलता से मिलते हैं। ऐसा कोई संग्रहालय नहीं जिसमें राग-रागिनी के चित्र न हों। हजारों की संख्या में विभिन्न देशी-विदेशी संग्रहालयों और संग्रहकर्ताओं के पास प्राप्त[५] राग-रागिनी के ये चित्र राजस्थानी चित्रकला के अध्ययन के लिए तो विशेष उपयोगी हैं ही, साथ ही काव्य और शास्त्रीय संगीत की भी अनेक समस्याएँ निश्चय ही इनके माध्यम से सुलझायी जा सकती हैं।

बारहमासा और ऋतुवर्णन

मध्यकालीन हिन्दी कवियों ने बारहमासा और ऋतुवर्णन की परम्परा संस्कृत से ग्रहण की। विश्वनाथ ने अपने 'साहित्यदर्पण' में छहों ऋतुओं का वर्णन तथा प्रकृति का अन्य चित्रण शृंगाररस के अन्तर्गत ही किया है।[६] मध्यकालीन हिन्दी कवियों ने भी संस्कृत के रसशास्त्रियों की भाँति बारहमासा और ऋतुवर्णन को उद्दीपन के अन्तर्गत रखने के कारण नायिका के संयोग और वियोग से सम्बद्ध

---

१. देखिए, सूरसागर, वसन्तलीला, पृ० ११३१-३५
२. ओ० सी० गांगुली : रागाज़ एण्ड रागिनीज़, पृ० १५२
३. देखिए, वही, पृ० ७७
४. आश्चर्य है कि किशनगढ़शैली में अभी तक एक भी चित्र राग-रागिनी का देखने में नहीं आया
५. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-क
६. साहित्यदर्पण, ३।२१२।

कर दिया, किन्तु संस्कृत साहित्य में ऋतुवर्णन और बारहमासा का आलम्बन के रूप में जैसा चित्रण हुआ है वैसा हिन्दी मध्यकालीन काव्य में कम ही देखने को मिलता है। भक्तिकालीन कवियों में तो सेनापति-जैसे कवियों ने निरपेक्षचित्रण फिर भी किया है, पर "रीतिकालीन कवियों ने संस्कृत कवियों की उस परम्परा को नहीं अपनाया जिसमें प्रकृति का आलम्बन-रूप में वर्णन किया गया है। शृंगाररस के अन्तर्गत वन, उपवन, सरोवर, ऋतुवर्णन आदि इस काल में उद्दीपन के रूप में गृहीत हुए हैं।"[१] नायक-नायिकाओं के संयोग-वियोगचित्रों में प्रकृति का उपयोग केवल उद्दीपन के रूप में ही किया गया। षट्ऋतुवर्णन और बारहमासे के चित्रण के मूल में यही बात प्रमुख रही है।

संयोगावस्था में जो ऋतुएँ और मास प्रेम को उद्दीप्त करने में सहायक होते हैं, वे ही वियोगावस्था में अत्यधिक कष्टकारी होते हैं। षट्ऋतुओं में वसन्त अत्यधिक मादक होता है, इसलिए इसे ऋतुराज कहा गया है। वसन्त के प्रारम्भ में आनेवाले उत्सव होली के कारण इस ऋतु में एक अजीब मस्ती भर जाती है। भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन कवियों ने वसन्त और होली का जैसा जी खोलकर चित्रण किया है, वैसा ही राधा-कृष्ण के परिप्रेक्ष्य में राजस्थानी चित्रकारों ने भी वसन्त और होली के असंख्य मादक चित्र अंकित किये हैं। महत्त्व की दृष्टि से वसन्त के बाद वर्षा की गणना की जायेगी। हिन्दी कृष्णकाव्य में वर्षा ऋतु और शरद ऋतु का विशेष चित्रण हुआ है। श्रावणमास में हिण्डोलों और शरद में कृष्ण के महारास से सम्बन्ध जुड़ जाने के कारण इन ऋतुओं की मादकता और भी बढ़ गयी है।[२] राजस्थानी चित्रकला में हिण्डोलों, श्रावण की मादक फुहारों और शरत्पूर्णिमा की रासलीला का जो चित्रण हिन्दी कृष्णकाव्य के आधार पर हुआ है, वह विशेष अध्ययन का विषय है।

बारहमासे की परिपाटी हिन्दी कृष्णकाव्य में विशेष मिलती है। राजस्थानी चित्रकला का एक प्रमुख विषय बारहमासाचित्रण भी रहा है जिसमें आधार प्रमुखतया केशव, जनराज, गोविन्द आदि कवियों की रचनाओं को बनाया गया है। इतिहास संशोधक मण्डल, पूना का बारहमासा सैट[३] जयपुर की रूढ़ शैली में होते हुए भी अध्ययन के लिए उपयोगी है। केशव की 'कविप्रिया' के पदों पर आधारित बारहमासा के वहाँ ८ चित्र उपलब्ध हैं। १८वीं शती के १२ चित्र—चैत्र

---

१. डॉ० बच्चनसिंह : रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना, पृ० ७५
२. देखिए, सं० डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, पृ० २०८
३. क्रमसं० २८

से फाल्गुन तक—बीकानेरशैली में उपलब्ध हैं,[1] जिनमें गोविन्द कवि के कृष्णचरित्र-सम्बन्धी छन्द लिखे हुए हैं। ये चित्र अधिक जीर्ण होने पर भी कला की दृष्टि से विशेष महत्त्व के हैं। जनराज कवि के छन्दों पर आधारित १२ चित्र जयपुरशैली के उपलब्ध हैं,[2] जिनमें जयपुर की रूढ़ शैली का ही अधिक परिचय मिलता है। जनराज के पदों पर आधारित ३ चित्र (कार्तिक, क्वार, शिशिर) डॉ० भागीरथ मिश्र, सागर के पास भी द्रष्टव्य हैं। अलवरशैली में चित्रित ७ चित्र बारहमासा के कला और काव्य के अध्ययन की दृष्टि से विशेष लाभदायक हैं जो राजकीय संग्रहालय, अलवर में प्रदर्शित हैं।[3] बारहमासा के सर्वाधिक उपलब्ध ११२ सचित्र पन्ने सरस्वती-भण्डार, उदयपुर में उपलब्ध हैं,[4] जिनमें से अनेक राधा-कृष्ण की बारह मासों की लीलाओं से सम्बन्धित हैं। ऋतुवर्णन और बारहमासा को कृष्णचरित्र से जोड़कर कवियों और चित्रकारों ने सुन्दर चित्रण किया है, जिसमें नायिका के संयोग और वियोग की मनोदशाओं के साथ ही प्रकृति का भी मोहक और सतरंगा चित्रण हुआ है।

राजस्थानी काव्य

राजस्थानी भाषा हिन्दी की ही एक समृद्धशाली प्रशाखा है, अतः राजस्थानी सचित्र कृष्णकाव्यों का विवेचन तुलनात्मक दृष्टि से असंगत न होगा। जोधपुर के राठौड़ राजवंशी स्वदेशाभिमानी कवि पृथ्वीराज की 'वेलिक्रिसन रुकमणी री' एक प्रौढ और मार्मिक रचना है। इसमें श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के विवाह की कथा है। इस काव्य की राजस्थानी शैली में चित्रित तीन प्रतियाँ उपलब्ध हैं, जिनमें से एक सरस्वती भण्डार, उदयपुर, दूसरी अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर और तीसरी अगरचन्द नाहटा पुस्तकालय, बीकानेर में है।[5] इनमें से भी सरस्वती-भवन की प्रति[6] विशेष महत्त्वपूर्ण है। कुल ९५ पन्नों में ९५ चित्र हैं जो मेवाड़शैली में चित्रित हैं। पत्रों का आकार १०$\frac{1}{2}$×१६$\frac{1}{2}$ इंच है। अन्तिम पत्र में इस प्रकार के लेख हैं कि जिससे चित्रकार और आश्रयदाता का ज्ञान होता है—प्र० वेल रो पत्र ९५ ।। श्री ठाकुर ठकुराणी जी रा गुण कुण गावे। मलो प्रसाद सरस्वती जी रो।। महाराजाधिराज महाराणा श्री जयसिंह जी इदं कारितं।।

---

१. गंगा गोल्डन जुबली म्युजियम, बीकानेर में द्रष्टव्य
२. राजकीय संग्रहालय, कोटा में द्रष्टव्य
३. क्रमसं० १९९९, ९७, ५८, ९०
४. क्रमसं० ९५१
५. देखिए, शोधपत्रिका, भाग ४, अंक १, पृ० १९
६. देखिए, सरस्वती-भण्डार, उदयपुर, क्रमसं० ९४५

इति बेलि रो चित्राम सम्पूर्ण समाप्तः लिखावंत कवीश्वर गिरधर।। भट्ट कृष्णदासेन लिखित ।।

राजस्थानी भागवत (दशम् स्कन्ध) की एक प्रति गुटके के रूप में उपलब्ध है।[1] कुल चित्रों की संख्या १२२ है जो ग्रन्थ के बीच-बीच में चित्रित हैं।[2] विशेष खोज करने पर और भी अनेक ऐसे ग्रन्थ उपलब्ध हो सकते हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर निष्कर्षस्वरूप कह सकते हैं कि हिन्दी कृष्णकाव्य, जो कि प्रमुखतया हिन्दी के मध्यकाल की देन है, संस्कृत और अपभ्रंश की परम्परा में है। शील, शक्ति और सौन्दर्य में से कृष्ण के माधुर्यपक्ष में ही इन कवियों का मन अधिक रमा है। शृंगाररस के विभिन्न पक्षों का मनोवैज्ञानिक चित्रण, भक्तिशृंगार और रीतिपरक नायिकाभेदशृंगार के अन्तर्गत, भक्तिकालीन और रीतिकालीन कवियों ने विस्तार से किया है। भक्तिकालीन कवियों का कृष्णकाव्य घोर शृंगारी होते हुए भी अधिक अलौकिक और भावमय है, तथा रीतिकालीन कवियों ने राधा-कृष्ण के नाम पर लौकिक शृंगार का वासनाजन्य नायिकाभेदपरक चित्रण ही विशेष किया है। कृष्ण का चरित्र अनुभावों की बहुलता के कारण अत्यधिक चित्रोपयोगी रहा है। राजस्थानी चित्रकला (१६००-१९०० ई०) के चित्रण का प्रमुख आधार कृष्णचरित्र रहा है, जिसको संस्कृत और हिन्दी के कृष्णकाव्यों ने अधिक योगदान दिया है। 'गीतगोविन्द,' 'सूरसागर,' 'रसिकप्रिया,' 'बिहारी-सतसई' आदि ग्रन्थों का बहु-चित्रण तथा अन्य फुटकर कृष्णकाव्य का ईषत्‌चित्रण हिन्दी कृष्णकाव्य के अध्ययन के लिए नवीन आयाम खोलता है। निश्चय ही राजस्थानी चित्रकला में चित्रित उपर्युक्त सचित्र ग्रन्थों, लघुचित्रों और पटचित्रों के अवलोकन और शोधपूर्ण तुलनात्मक अध्ययन से काव्य के अर्थबोध को सरस और बहुमुखी बनाया जा सकता है। भक्तिकाल और रीतिकाल की सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परिस्थितियों का समुचित और विस्तृत अध्ययन इन चित्रों के माध्यम से किया जा सकता है, क्योंकि उपर्युक्त परिस्थितियों का जीता-जागता चित्रण इन चित्रों में विशेष द्रष्टव्य है।

---

१. अगरचन्द नाहटा पुस्तकालय, बीकानेर में द्रष्टव्य
२. विशेष विवरण द्रष्टव्य, अगरचन्द नाहटा : राजस्थानी भागवत, दशम् स्कन्ध की सचित्र प्रति, शोधपत्रिका, भाग-४, अंक-१, पृ० १९-२५.

५

हिन्दी कृष्णकाव्य : चित्रयोजनात्मक अध्ययन

चित्रतत्त्व काव्य का प्राण होता है। भाव और अनुभूतियों की सहज अभिव्यक्ति के लिए कवि चित्रभाषा का प्रयोग करता है। कवि अपने अनुभव के आधार पर स्वार्थगर्भित शब्दों का चयन कर अपने भावों के शब्दचित्र अंकित करता है और अपने कौशल एवं प्रेषणक्षमता से उन्हें अत्यधिक प्रभविष्णु बना देता है। काव्य और चित्रकला का यह सम्बन्ध अक्षुण्ण होता है। कृष्णचरित्र की चित्रोपयोगिता और दृश्यात्मकता के कारण हिन्दी का कृष्णकाव्य विभिन्न प्रकार के शब्दचित्रों से भरा पड़ा है। विवेच्य हिन्दी कृष्णकाव्य में चित्रयोजना के जो स्वरूप एवं भेद परिलक्षित होते हैं, उनका राजस्थानी चित्रकला के परिपार्श्व में विशेष अध्ययन ही हमारा लक्ष्य है।

काव्यचित्रों के प्रकार

सामान्यतया चित्र दो प्रकार के होते हैं : १. मानसचित्र, २. चाक्षुषचित्र। मानसचित्र कलाकार के मन में घुमड़नेवाले वे मनोभाव हैं जो अभिव्यक्ति पाने के लिए छटपटाते रहते हैं। शब्द तथा रेखा-रंग के माध्यम से वे काव्य अथवा चित्रकला में साकार हो उठते हैं। मानसचित्र बड़े सूक्ष्म होते हैं। उनकी अवगति बिना आकार के भी होती है। कवि के मानसचित्र अभिव्यक्ति के बिना दूसरे के लिए अज्ञान एवं अज्ञेय बने रहते हैं। उनको दूसरा नहीं देख सकता। कवि और चित्रकार इनको ज्ञात एवं ज्ञेय बना देते हैं। कवि और चित्रकार का अनुभव और आनन्द उसकी कृतियों द्वारा निरूपित होकर श्रोता और दृष्टा के रंजन एवं उपयोग की वस्तु बन जाता है। कवि शब्दों में अपने भाव अंकित करता है और चित्रकार रेखा-रंगों में। कवि के शब्दचित्रों में चित्रकार के चित्रों

से कहीं अधिक सूक्ष्मता होती है। इसलिए काव्यरसिक वही हो सकता है, जिसका हृदय संस्कारों से सम्पन्न है। यों तो चित्रदर्शक के लिए भी संस्कार आवश्यक हैं, किन्तु वे उतने अनिवार्य नहीं जितने काव्य में हैं। राजस्थानी चित्रकारों ने कवियों के शब्दचित्रों का सहारा लेकर राधा-कृष्ण के भावों को चित्रित किया है, जो तत्सम्बन्धी काव्य के अध्ययन के लिए विशेष उपयोगी हैं।

शब्दचित्रों में सम्वेदना के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव को अंकित करने की क्षमता होती है, इसलिए वे अधिक संवेदनात्मक हो सकते हैं। माध्यम की सीमारेखा के कारण भावों के गहनतम स्तर तक पहुँचने में चित्रकार असमर्थ होता है, इसलिए अधिकतर संवेगात्मक चित्रों का निर्माण करता है। काव्य का प्रमुख आधार है संवेदना और चित्रकला का है संवेग, किन्तु काव्य में संवेगात्मकता और चित्रण में सम्वेदना का अंकन होता ही न हो, ऐसी बात नहीं है, होता अवश्य है, पर माध्यम की विशेषता तथा सीमारेखा के कारण संवेदना और संवेग क्रमशः उसमें प्रमुख और गौण हो जाते हैं। भक्तिकालीन कृष्णकाव्य संवेगात्मक है, इसलिए भक्तिकालीन कृष्णकाव्य भावपरक अधिक है और रीतिकालीन कृष्णकाव्य वस्तुपरक अथवा ऐन्द्रिय। ऐसी स्थिति में काव्य और चित्रकला का सम्बन्ध एवं प्रभावों का अध्ययन और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। भक्तिकालीन कृष्णकाव्य को आधार बनाकर राजस्थानी में जो चित्रण हुआ है, वह अधिक संवेदनात्मक और रसमय है तथा रीतिकालीन कृष्णकाव्य पर आधारित चित्रण अधिक संवेगात्मक है। भक्तिकालीन अलौकिक एवं आध्यात्मिक और मन्दिरों तथा धार्मिक पीठों के लोककलात्मक प्रभाव ने राजस्थानी चित्रकला को सहज, सादा और भावपूर्ण बनाने में तथा रीतिकालीन विलासमय दरबारी जीवन की ऐन्द्रियता ने तत्कालीन काव्य एवं चित्रण को संवेगात्मक बनाने में विशेष सहयोग दिया है। अतः संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि हिन्दी कृष्णकाव्य का चित्र-तत्त्व दो रूपों में चित्रित हुआ है: १. अन्तर्मुखी अर्थात सम्वेदनात्मक और २. बहिर्मुखी अर्थात संवेगात्मक।

उपर्युक्त सामान्य विवेचन के आधार पर काव्यचित्रों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है: १. लक्षित चित्रयोजना और २. उपलक्षित चित्रयोजना।[१] बाह्य रेखाओं या वर्णों द्वारा काव्य के चित्रतत्त्व को तुरन्त लक्षित किया जा सके तो उसे लक्षित चित्रयोजना कहते हैं। मुख्यतया बाह्य रेखाओं पर आधारित रहने के कारण लक्षित चित्रों को रेखाचित्र की अभिधा दी जाती है। "लक्षित चित्रों के माध्यम से कवि का चेतन मन उद्घाटित होता है।"[२] संवेगात्मक या

१. देखिए, डॉ० बच्चनसिंह : रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना, पृ० ३८३
२. ,, डॉ० मुंशीराम शर्मा : सूरदास का काव्यवैभव, पृ० ३७

बहिर्मुखी ऐन्द्रिय चित्रोपमता के आधार पर कवि अपने काव्य को विभिन्न रेखा-चित्रों से सुसज्जित करता है, इसलिए लक्षित चित्र भी दो वर्गों में रखे जा सकते हैं: १. रेखाचित्र और २. वर्णचित्र। काव्य में उपलक्षित चित्रों का विशेष महत्त्व होता है। इन चित्रों में कवि अपने घनीभूत भावों को अप्रस्तुत सादृश्य विधान द्वारा सरस और मार्मिक अभिव्यक्ति देता हैं। उपलक्षित चित्रों के मूल आधार उपमा और रूपक के सादृश्य विधान हैं, इसलिए उपलक्षित चित्रयोजना की चर्चा हम अलंकार सम्बन्धी अध्याय में करेंगे। यहाँ पर लक्षित चित्रयोजना-सम्बन्धी रेखाचित्रों और वर्णचित्रों का विस्तृत विवेचन ही अध्ययन का विषय है।

उपर्युक्त रेखाचित्र, वर्णचित्र तथा सादृश्यमूलक चित्र सम्पूर्ण भी हो सकते हैं और अपूर्ण भी। अनेक रेखाएँ और रंग जो सम्पूर्ण पद या छन्द में चित्र का निर्माण करते हैं, वे कई बार सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत करते हैं और कितनी हीं बार खण्ड-चित्रों के द्वारा ही भाव का मनोहारी और प्रभावोत्पादक संकेत दे देते हैं। अप्रस्तुत विधान में अमूर्त चित्र की भावना भी मानस पर मंडराने लगती है और एक धुंधला-सा अस्पष्ट, पर प्रभावशाली चित्र पाठक को संवेदनशील बना देता है। आलम्बन या अन्य चरित्र के रूपवर्णन तथा कार्य-व्यापारों के चित्रण में व्यक्तिचित्र भी हो सकते हैं और समूहचित्र भी। यह कवि की प्रतिभा, सामर्थ्य और कालगत विशेषताओं पर निर्भर है कि वह व्यक्ति सफलतापूर्वक व्यक्तिचित्र अंकित कर सकता है या समूहचित्र। भक्तिकालीन कृष्णकाव्य समाज का काव्य होने के कारण समूहचित्रों से भरा पड़ा है।[1] रूपचित्रण में नखशिखवर्णन की प्रधानता रही है। राधा-कृष्ण के रूपसौन्दर्य का चित्रण मध्यकालीन कवियों ने शास्त्रीय तथा स्वच्छन्द ढंग से जी खोलकर किया है। 'सूरसागर' और 'बिहारी-सतसई' ऐसे रूपचित्रों का खजाना हैं, जिनके आधार पर राजस्थानी चित्रकारों ने राधा-कृष्ण की युगल-छवि का, अपनी शैलीगत विशेषताओं का पुट देकर, अंकन किया है।[2] प्रकृतिचित्रण में ऊषा, सन्ध्या, रात्रि, दिन, पर्वत, सरिता, सागर, मरुस्थल, वन, उपवन, लता, बेल, कुंज, फूल, पत्तियाँ, पशु, पक्षी, प्रासाद, मन्दिर, गली, सड़कें आदि विविध उपकरणों का चित्रण कवि करता है। "यह चित्रण आलम्बनगत, उद्दीपनगत मानव-क्रियाकलाप की क्रीड़ास्थली के रूप में तथा अलंकारों के रूप में साहित्य में पाया जाता है।"[3] हिन्दी कृष्णकाव्य में प्रकृति का चित्रण लक्षित चित्रयोजना और उपलक्षित चित्रयोजना दोनों में ही

१. देखिए, होली, उत्सव तथा विभिन्न लीलाओं आदि के शब्दचित्र
२. मेवाड़शैली के अनेक चित्र विशेष द्रष्टव्य (गोपीकृष्ण कानोड़िया, कलकत्ता तथा सरस्वती-भण्डार, उदयपुर के संग्रह में)
३. डॉ० मुंशीराम शर्मा : सूरदास का काव्यवैभव, पृ० ६७

विशेष रूप से अंकित है। रूपचित्रण और भावचित्रण के लिए प्रकृति सदा उद्दीपन हेतु पृष्ठभूमि का कार्य करती रही है। राजस्थानी चित्रकारों ने भी प्रकृति का पृष्ठभूमि के रूप में अत्यधिक रंगीन चित्रण किया है।[1] आलम्बन और उद्दीपन चित्रों के अतिरिक्त हाव-चित्र और अनुभाव-चित्रों की भी गणना की जा सकती है। काव्य में हाव और अनुभावों के चित्र अधिक प्रभावोत्पादक एवं संवेदनशील होते हैं। काव्य में ये चित्र बहुलता से प्राप्य हैं। चित्रकला के भी प्रमुख आधार ये ही चित्र होते हैं। हावों-अनुभावों के चित्र अंकित कर कलाकार अपनी कुशलता प्रदर्शित करता है। विस्तार से इन (आलम्बन, उद्दीपन, हाव, अनुभाव आदि से सम्बन्धित) चित्रों का अध्ययन भावाभिव्यंजन एवं चित्रांकनवाले अध्याय में करेंगे।

उपर्युक्त काव्यचित्र गति की दृष्टि से भी विभाजित किये जा सकते हैं जिन्हें स्थिरचित्र, अस्थिरचित्र, तीव्रगत्यात्मक और मन्द्रगत्यात्मक श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं।

यहाँ वर्णचित्रों से भी पहले उन रेखाचित्रों का वर्णन अधिक अपेक्षित है जो एक ही साथ हिन्दी कृष्णकाव्य एवं राजस्थानी चित्रकला से सम्बद्ध हैं।

रेखाचित्र

चित्रकला में रेखा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में चित्रकला का आदि रूप रेखांकन ही है। चित्र का पूर्वांग होते हुए भी बिना रंग के ऐसे रेखांकन अपने-आपमें सम्पूर्ण होते हैं। रेखांकन को चित्रकारी का आभूषण माना है।[2] "रेखा के द्वारा रूप या आकृति की रचना होती है। यह कार्य इसके द्वारा जितनी सफलता से होता है, रंग के द्वारा नहीं हो सकता।"[3] चित्रकला में रेखाचित्र चाक्षुष चित्र होते हैं, पर काव्य में ये केवल स्थूल चाक्षुष चित्र ही नहीं हैं। काव्य में केवल स्थूल चित्रों का कोई साहित्यिक मूल्य नहीं होता, जब तक कि इन चित्रों की रेखाओं में शब्द, स्पर्श, गन्ध आदि का रंग नहीं भरा जाता।[4] ऐसा करने पर ही काव्य के ये रेखाचित्र अधिक प्रभावोत्पादक हो सकते हैं।

---

१. देखिए, प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेण्टिंग, फलक ५ तथा ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेण्टिंग, फलक ७-९

२. रेखाच वर्तनाचैव भूषणम् वर्णमेव च।
विज्ञेय मनुज श्रेष्ठ चित्रकर्मसु भूषणम् ॥१०॥
—चित्रसूत्रम्-१०।४१॥

३. रामचन्द्र शुक्ल : चित्रकला का रसास्वादन, पृ० ९२

४. देखिए, डॉ० बच्चनसिंह, : रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना, पृ० ३८४

चित्रकला में रेखांकन या लिखावट तीन प्रकार की मानी गयी है :[१] पत्र-वर्तना, आहैरिक वर्तना और बिन्दुवर्तना। पत्रसदृश्य रेखाओं को पत्रवर्तना, अत्यन्त सूक्ष्म रेखाओं को आहैरिक वर्तना और स्तम्भनयुक्त रेखाओं को बिन्दुवर्तना कहते हैं। मुगलशैली और राजस्थानीशैली में परदाज़ का विशेष कार्य बिन्दु-वर्तना के अन्तर्गत आता है। काव्य में प्रत्यक्ष रूप से तो रेखांकन के उपर्युक्त भेदों को देख पाना कठिन है, पर परोक्ष रूप से काव्यपाठ के समय अन्तश्चेतना द्वारा हम इन रेखांकनों का अनुभव निश्चय ही करते हैं। किसी काव्यचित्र में रेखाएँ सरल और स्थूल होती हैं, किसी में अत्यधिक सूक्ष्म रेखाओं द्वारा कवि चित्र खड़ा करता है। अलंकरण की मीनाकारी, पच्चीकारी तथा धुआँधार रेखांकन द्वारा जो चित्र घनीभूत हो उठता है, उसे विन्दुवर्तना की समता में रख सकते हैं। रेखाओं की दुर्वलता, अस्पष्टता तथा घिलमिलता को जैसे चित्रकला में दोष माना गया है, वैसे ही काव्य में भी ऐसे चित्र दोषपूर्ण होते हैं।[२]

चित्रकला में रेखाओं का कौशल सचमुच यदि कहीं देखने को मिलता है तो अजन्ता की कला में और अजन्ता की परम्परा को निभानेवाली राजस्थानी चित्र-कला का रेखांकन भी अत्यधिक कौशलपूर्ण, लयात्मक और सधा हुआ है। घटनाओं का चित्रण, परिस्थिति और वातावरण तथा रूप का चित्रण रेखाओं की आकृति-मूलक रचना के कारण राजस्थानी चित्रकला की विशेष देन है, इसलिए राजस्थानी चित्रकला में कृष्णकाव्य के उन स्थलों का, जो रूप, घटना और वातावरण चित्रण के लिए अधिक उपयोगी हैं, विशेष चित्रण हुआ है। वास्तव में तो कृष्ण-काव्य में ही राजस्थानी चित्रकारों को विशेष आधारभूमि प्राप्त हुई है। "कृष्ण के रूप तथा उनकी लीलाओं की माधुर्ययुक्त सौन्दर्यानुभूति बड़े कोमल, सात्विक और सजीव चित्रों के रूप में साकार हुई है। बिना अप्रस्तुत की सहायता के भी केवल विभिन्न रेखाओं और वर्णों के योग से इन कवियों ने अनेक चित्र अंकित किये हैं जो अपनी सहजता और ऋजुता के लिए मूल्यवान हैं।"[३] इन काव्यचित्रों

---

१. तिस्रश्च वर्तना: प्रोक्ता: पत्राहैरिकविन्दुजा: ।।५।।
पत्राकृतिभि: रेखाभि: कथितात्र च वर्तना ।।
अतीव कथिता सूक्ष्मा तथाहैरिकवर्तना ।।६।।
तथा च स्तम्भनायुक्ता कथिता बिन्दुवर्तना ।।

—चित्रसूत्रम् ५-६।४१।।

२. दौर्बल्यविन्दुरेखत्वमविभक्तत्वमेव च।
मानवाकारता चैति चित्रदोषा: प्रकीर्तिता: ।।८।।

—वही, ८।४१।।

३. डॉ० सावित्री सिन्हा : ब्रजभाषा के कृष्ण-भक्ति-काव्य में अभिव्यंजनाशिल्प, पृ० १९६

में वर्णित रूप, घटना, वातावरण आदि का राजस्थानी चित्रकला के उन चित्रों में, जो उस काव्य को आधार बनाकर चित्रित किये गये हैं, विशेष साम्य मिलता है। कृष्ण और राधा के अंग-प्रत्यंगों की बनावट, उनकी वेश-भूषा, प्रकृति का सुरम्य वातावरण, पशु-पक्षियों का चित्रण, अलौकिक घटनाओं का चित्रण आदि विभिन्न शैलियों में अपनी-अपनी मौलिक विशेषताओं के साथ काव्य की समता में अंकित किये गये हैं, जो काव्य और चित्रकला के पारस्परिक अध्ययन के लिए विशेष उपयोगी हैं।

सूरसागर के रेखाचित्र

सूरदासजी भावप्रधान कवि हैं, इसलिए 'सूरसागर' में प्रस्तुत रूप में लाये हुए पदार्थों की संख्या कम है। वस्तुरूप में सूरदासजी ने "कृष्ण और राधा के अंग-प्रत्यंग, मुद्राओं और चेष्टाओं, यमुनातट, वंशीवट, निकुंज, गोचारण, वनविहार, बाललीला, चोरी, नटखटी तथा कवि-परिपाटी में परिगणित ऋतुसुलभ वस्तुओं तक ही अपने को सीमित रखा है। कहने का तात्पर्य यह है कि सूर में प्रस्तुत रूप में लाये पदार्थों की संख्या कम और अलंकाररूप में (अप्रस्तुत विधान) लाये हुए पदार्थों की संख्या बहुत अधिक है।"[1] राधा-कृष्ण के रूपसौन्दर्य और व्रज के वातावरण का चित्रण करने के लिए उन्हीं सीमित पदार्थों का उन्होंने बार-बार प्रयोग किया है। "सूरदास की कला एक ओर स्वान्तःसुखाय थी, दूसरी ओर भागवत तथा अन्य ग्रन्थों में उन्हें परम्परागत आधार प्राप्त हुआ था, अतएव उनकी चित्रयोजना में रूढ़ियों और आत्मसंवेदना का अपूर्व संयोग है।"[2] उन्होंने जीवन की प्रमुखतया दो वृत्तियों का चित्रण किया है—बालवृत्ति और यौवन-वृत्ति। इन दोनों के अन्तर्गत आये हुए व्यापारों का चित्रण उन्होंने अधिक किया है। बालकृष्ण, गोपालकृष्ण एवं रासबिहारी कृष्ण का रूपचित्रण, वातावरण एवं प्रकृति का उद्दीपन और पृष्ठभूमि हेतु चित्रण तथा अलौकिक घटनाओं का चित्रण 'सूरसागर' में यथास्थान हुआ है। वह अत्यधिक वस्तुपरक बहिर्मुखी एवं संवेगात्मक होने के कारण लक्षित चित्रयोजना के रेखाचित्रों और वर्णचित्रों में रखा जा सकता है।

बालकृष्ण

बालकृष्ण के रूप तथा मनोविज्ञान का जितना विस्तृत और गहनतम चित्रण

---

१. रामचन्द्र शुक्ल : सूरदास, पृ० १५१
२. डॉ० सावित्री सिन्हा : व्रजभाषा के कृष्ण-भक्तिकाव्य में अभिव्यंजनाशिल्प, पृ० २००

सूरदास ने किया है, उतना अन्य किसी कवि ने नहीं किया। "वालरूप एवं चेष्टाओं के स्वाभाविक मनोहर चित्रों का इतना वड़ा भण्डार और कहीं नहीं है जितना बड़ा 'सूरसागर' में है।"[1] कृष्णजन्म के उपरान्त से ही वाललीला प्रारम्भ हो जाती है और शैशव से लेकर कौमार-अवस्था तक कृष्ण के रूप, चेष्टाओं एवं कार्य-व्यापार-सम्बन्धी अनेक रेखाचित्र 'सूरसागर' में भरे पड़े हैं।[2] वल्लभाचार्य ने भगवान की बालरूप में उपासना की थी, अतः वल्लभपीठों में पनपनेवाली एवं सम्प्रदाय से प्रभावित होनेवाली राजस्थानी चित्रकला में वालकृष्ण की बाल-सुलभ चेष्टाओं और उनके वालस्वरूपों के अनेक चित्र समय-समय पर अंकित किये गये, जिनमें मेवाड़, तथा उसकी उपशैली नाथद्वारा का विशेष योगदान है।[3] इन चित्रों के अवलोकन के उपरान्त वालकृष्ण के पदों का अध्ययन अधिक साकार और अर्थपूर्ण हो जाता है। रेखांकन की दृष्टि से बालकृष्ण के रूपसौन्दर्य, उनकी वालसुलभ क्रीड़ा और चेष्टाओं, विभिन्न संस्कारों एवं असुरसंहारक अलौकिक लीलाओं का विस्तृत विवेचन आगे होगा।

१. **रूपसौन्दर्य-अंकन**—रूपचित्रण में कवि आलम्बन के वाह्य सौन्दर्य पर विशेप ध्यान देता है। शारीरिक वनावट के उभार का इन्द्रियोत्तेजक चित्रण कर कवि अपनी ऐन्द्रिय बुभुक्षा के परिचय के साथ ही पाठक के मन में भी वैसा ही चित्र उभारने का प्रयत्न करता है, पर निश्चय ही कवि और पाठक के चित्रों में अपनी-अपनी कल्पना तथा अनुभूत सौन्दर्य की विभिन्नता के कारण अन्तर अवश्य रहता है। ऐसी स्थिति में कवि और पाठक के भाव में तादात्म्य-उत्पत्तिकर्त्ता चित्रकार ही होता है। चित्रकार काव्य को आधार वनाकर तत्कालीन सांस्कृतिक प्रभाव को ग्रहण करता हुआ काव्य के भाव को चित्रित कर पाठक को कवि की अनुभूति के अधिक समीप पहुंचाने का प्रयत्न करता है। "बालकृष्ण के पदों को सूरदासजी ने विशेषतया विविध समय और अवसरों पर श्रीनाथजी के कीर्तन के लिए रचा होगा। ऐसे पदों में अधिक संख्या कृष्ण के रूपचित्रण-सम्वन्धी पदों की है। शिशु, वाल और किशोर रूपों में विभिन्न परिस्थितियों और विभिन्न दृष्टियों से कृष्ण का दर्शन करके कवि ने उनके अंग-प्रत्यंग का सूक्ष्म, भावसंवेदित और आदर्श चित्रण किया है। प्रातःकाल से सन्ध्या तक की दिनचर्या का चित्रण कवि का उद्देश्य रहा है।"[4] वात्सल्यभाववाले पद विशेषतया वालरूप के चित्रण के ही हैं। वालकृष्ण के रेखांकनों में सूरदासजी ने अनेक वस्तुपरक उपकरणों का बार-बार

---

१. रामचन्द्र शुक्ल : भ्रमरगीत-सार (भूमिका), पृ० १२
२. देखिए, सूरसागर, पद-६९९, ७०१, ७१५, ७१७, ७१८, ७३३, ७४१ आदि
३. देखिए, श्रीनाथजी के मन्दिर में सुरक्षित अनेक चित्र
४. डॉ० व्रजेश्वर वर्मा : सूरदास, पृ० २९८

नामोल्लेख किया है। वे उपकरण ही बालकृष्ण के चित्र को हमारे मानसपटल पर स्थायी बनाते हैं तथा राजस्थानी चित्रकारों ने भी यथास्थान उन्हीं को कृष्ण के रूपांकन हेतु चित्रित किया है। बालकृष्ण के अंग-प्रत्यंग, वस्त्राभूषण तथा अन्य उपयोगी उपकरण इस नामावलि में उल्लेखनीय हैं। बालकृष्ण का रूप अंकन करते समय सूरदासजी ने जो मनोहारी स्वरूप खड़ा किया है, वह इस प्रकार है—"नीले बादल के समान कृष्ण का सुन्दर शरीर है।[१] तनक-तनक-से उनके सुन्दर हाथ-पैर हैं।[२] चिबुक, अधर, नासिका, कान, कपोल, भौंह, लोचन आदि अत्यधिक लुभावने हैं। विशाल भाल है और घुंघराले बालों की लटें बिखरी हुई हैं।[३] मुख-मण्डल की शोभा अद्वितीय है। ऐसे बालकृष्ण सबको सुख देनेवाले हैं।" बालकृष्ण के वस्त्राभूषणों की सूरदासजी ने जी खोलकर चर्चा की है। बालक के पहनने के कपड़े, आभूषण तथा अन्य उपकरणों का चित्रण 'सूरसागर' में यथास्थान मिलता है। बालकृष्ण तन पर पीत झंगुलिया तथा सिर पर लाल चौतनी पहने हुए हैं।[४] कभी-कभी पीली पिछौरी ओढ़ते हैं और माता आँखों में अंजन लगाकर निचोल पहनाती हैं।[५] कटि में किंकिनी, भाल पर मोतियों की चन्द्रिका, कण्ठ में केहरिनख-युक्त कठुला, पैरों में पैंजनी और हाथ में चूरा तथा पहुँची आदि सुशोभित हैं।[६] माता ने आँखों में अंजन आँजकर भाल पर डिठोना लगा दिया। कभी माता उन्हें

---

१. नील-जलद-अभिराम स्याम तन, निरखि जननि दोउ निकट बुलाये।
—सूरसागर, पद ७२२
सुन्दर स्याम-सरोज-नील-तन, अंग-अंग सुभग सकल सुख दनियाँ।
—वही, पद ७२४

२. तनक-तनक भुज पकरि कै, ठाढ़ो होन सिखावै। —वही, पद ७३०
तनक-तनक चरननि सौ नाचत मनहिं-मनहिं रिझावत। —वही, पद ७६५

३. सुभग चिबुक, द्विज, अधर-नासिका, श्रवण-कपोल मोहिं सुठि भाये।
भ्रुव सुन्दर, करुणा रस पूरन लोचन मनहु जुगल जल-जाये।
भाल विसाल ललित लटकनि मनि, बालदशा के चिकुर सुहाये।
—वही, पद ७२२

४. पीत झंगुलिया की छवि छाजति, बिज्जुलता सोहति मनु कंदहिं।
—वही, पद ७२५
तन झंगुली, सिरलाल चौतनी, चूरा दुहुँ कर-पाइ। —वही, पद ७०७

५. पियरी पिछोरी झीनी, और उपमा न भीनी। —सूरसागर, पद ७६९
सिर चौतनी, डिठोना दीन्हो, आंखि आंजि पहिराई निचोल।
—वही, पद ७१२

६. कटि-किंकिनी चन्द्रिका मानिक, लटकन लटकत भाल।
परम सुदेस कण्ठ केहरि-नख, बिच-बिच बज्र प्रवाल।
कर पहुँची पाइनि में नूपूर, तन राजत पट पीत। —वही, पद ७१५

बहुरंगी कुलही पहनाती है और गोरोचन का तिलक लगाती है।[1] ऐसा श्याम-सुन्दर का बालस्वरूप माता यशोदा, नन्द बाबा, ग्वालिनियों आदि सभी को लुभाता है। अन्य उपकरणों में खुनखुना[2], कनक-कटोरा[3], चन्द-खिलौना[4], दही, मक्खन, घी, रोटी[5] आदि का चित्रण है जिनके आधार पर बालकृष्ण की चेष्टाओं का अंकन कवि ने किया है।

२. चेष्टाओं का अंकन—कृष्ण के रूपसौन्दर्य को द्विगुणित करनेवाली है, उनकी बालसुलभ चेष्टाएँ। बालक के कार्य-व्यापार बालकृष्ण के रूप सम्बन्धी रेखांकनों को गत्यात्मक बनाने में सहायक होते हैं। कृष्ण का तनक-तनक पैरों से आँगन में चलना।[6] खिलौना एवं दही माँगने के लिए जिद्द करना, हाथ में नवनीत और मुख में दही का लेप करना[7], पैजनियाँ पहनकर नाचना, भाई-भाई का झगड़ना[8], रोना आदि सैकड़ों बालसुलभ चेष्टाओं एवं माता यशोदा के कार्य-व्यापारों से 'सूरसागर' भरा पड़ा है जिनका विस्तार से विवेचन भावाभिव्यंजन के अन्तर्गत करेंगे।

बालकृष्ण के उपर्युक्त रूपसौन्दर्य के रेखांकन में उनके अंग-प्रत्यंगों का वर्णन, वस्त्राभूषणों का चित्रण तथा उनकी बालसुलभ चेष्टाओं एवं माता यशोदा के कार्य-व्यापारों का चित्रण विस्तार से हुआ है। निश्चय ही उपर्युक्त उपकरण वस्तुपरक होने के कारण अधिक चित्रोपयोगी हैं। बालकृष्ण के रेखाचित्रों को सबल एवं प्रभावशाली बनाने में इन उपकरणों का विशेष योगदान है। राजस्थानी चित्रकला में ही क्या, भारतीय अन्य चित्रों में भी बालकों के चित्र बहुत कम बने हैं, इसलिए बालकृष्ण-सम्बन्धी राजस्थानी चित्र भी यत्र-तत्र संग्रहालयों में कम ही उपलब्ध होते हैं।[9] उन्हीं के आधार पर बालकृष्ण के मनोमुग्धकारी स्वरूप

---

१. कुलहीलसति सिर स्याम सुन्दर के, बहुविधि सुरंग बनाई। —वही, पद ७२६
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिये। —वही, पद ७१७
२. खुन-खुना कर, हँसत हरि, हर नचत डमरू बजाई। —वही, पद ७८८
३. कनक-कटोरा प्रातहीं, दधि घृत सु मिठाई।
खेलत खात गिरावहीं झगरत दोउं भाई। —वही, पद ७८०
४. मया मैं तो चन्द खिलौना लैहों। —वही, पद ८११
५. माखन रोटी अरु मधु-मेवा, जो भावै लेउं आनी। वही, पद ८२६
६. सूरसागर, पद ७६५
७. वही, पद ७१७, ७१८, ७३६
८. वही, पृ० ७८०
९. देखिए, कृष्णलीला-सम्बन्धी मेवाड़शैली के चित्र (कोटा संग्रहालय तथा राजकीय संग्रहालय और सरस्वती भण्डार, उदयपुर) तथा प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या १-२

के रेखाचित्रों का अध्ययन किया जा सकता है। कुछेक पद रेखाचित्रों की दृष्टि से उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत हैं :

हरि-मुख देखि हौं वसुदेव।
कोटि-काम-स्वरूप सुन्दर, कोउन जानत भेव।
चारि भुज जिहिं चारि आयुध, निरखि के न पत्याउ।
अजहुँ मन परतीत नाहीं नन्द घर ले जाउ।
स्वान सूते, पहरुवा सब, नींद उपजी गेह।
निसि अँधेरी, बीजु चमके, सघन बरसे मेह।
वंदि वेरी सबै छूटी, खुले व्रज कपाट।
सीस धरि श्रीकृष्ण लीने, चले गोकुल बाट।
सिंह आगे सेस पाछे, नदी मह भरपूरि।
नासिका लौ नीर बाढ्यो, पार पैलो दूरि।
सीस ते हुंकार कीनी जमुन जान्यो भेव।
चरण परसत थाह दीन्ही, पार गये वसुदेव।
महरि-ढिग उन जादू राखे, अमर अति आनन्द।
सूरदास विलास व्रज-हित, प्रगटे आनन्द-कन्द ॥५॥[1]

उपर्युक्त पद की प्रथम दो पंक्तियों में सबल रेखांकित द्वारा देवकी नवजात शिशु कृष्ण के अलौकिक सौन्दर्य की ओर संकेत करती है तथा तीसरी से छठी पंक्ति में छोटी-छोटी रेखाओं द्वारा कवि ने घनघोर वर्षा में चमकती हुई बिजली, काली अँधियारी रात में सुप्त पहरेदारों तथा खुले हुए कपाटों आदि के द्वारा वातावरण का सजीव चित्रण किया है। दूसरा चित्र, कृष्ण को सिर पर धरकर गोकुल ले जाने का है, तीसरा यमुनाजल की स्थिति का और चौथा महरि के घर कृष्ण को पहुँचाने का है। निश्चय ही इस पद में सूरदासजी ने कथा को प्रसार दिया है और एक पद में ही अनेक शाब्दिक रेखाओं द्वारा चार चित्रों का समावेश कर दिया है। राजस्थानी चित्रकारों ने इन चार चित्रों को एक साथ भी क्रम से चित्रित किया है और अलग-अलग भी।[2] वातावरण का चित्रण पद के अनुसार ही है। वासुदेव की वेशभूषा में मेवाड़ी शैली का पूर्ण प्रभाव है। उपर्युक्त पद में परिपूर्ण चार रेखाचित्र हैं, जिनमें केवल "निसि अँधियारी बीजु चमके" कहकर कवि ने काले रंग और सुवर्णरंग का आभास मात्र दिया है।

---

१. सूरसागर, पद ६२३
२. देखिए, मेवाड़ शैली का कोटा संग्रहालय में उपलब्ध चित्र तथा मेवाड़शैली के ही सरस्वती भण्डार, उदयपुर में कृष्णलीला-सम्बन्धी चित्रावलि में उपलब्ध अनेक चित्र, क्रमसंख्या ९५०

बालकृष्ण को माता यशोदा पालने में झुला रही है और मातृसुलभ लाड़-प्यार कर उन्हें सुलाने का प्रयत्न करती है, जिसमें वर्णविहीन सुन्दर रेखांकन उल्लेखनीय है :

जसोदा हरि पालने झुलावै ।
हलरावै, दुलराई मल्हावै, जोई-सोई कछु गावै ।
मेरे लाल को आउ निदंरिया, काहे न आनि सुवावै ।
तू काहे नहिं वेगहिं आवै, तोको कान्ह बुलावै ।
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै ।
सोवत जानि मौन ह्वै के रहि, करि-करि सैन बतावै ।
इहि अन्तर अकुलाई उठे हरि, जसुमति मधुरे गावै ।
जो सुख सूर अमर मुनि दुरलभ, सो नन्द भामिनी पावै ।।४३।।[1]

वर्णविहीन पाँच विभिन्न रेखाओं द्वारा अंकित इस चित्र की सहज स्वाभाविकता ही इसका सौन्दर्य है। प्रथम और द्वितीय रेखाओं से पालना झुलाती तथा लोरी गाती हुई यशोदा का चित्र उभरता है, तृतीय रेखा कृष्ण की तन्द्रिल अवस्था का चित्रण करती है, चौथी रेखा फिर यशोदा की मातृसहज भावुकता को साकार करती है और पाँचवीं में कृष्ण के अकुलाकर जागने का भाव अंकित किया गया है।[2] सब रेखाओं को मिलाकर एक सुन्दर सम्पूर्ण चित्र खड़ा कर सूरदासजी ने तत्कालीन तथा परवर्ती चित्रकारों को चित्रण का आधार प्रदान किया है।

बालकृष्ण के रूपचित्रण का एक सुन्दर तथा प्रसिद्ध रेखाचित्र उदाहरणार्थ प्रस्तुत है :

सोभित कर नवनीत लिये ।
घुटुरुनि चलत रेनुतन मण्डित, मुख दधि लेप किये ।
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन-तिलक दिये ।
लट लटकनि मनु मत्त मधुपगन मादक मधुहिं पिये ।
कठुला-कण्ठ, वज्र केहरि-नख, राजत रुचिर हिए ।
धन्य सूर एको पल इहि, सुख, का सत कल्प जिये ।[3]

प्रस्तुत पद में कृष्ण के अंग-प्रत्यंगों की भावभंगिमा तथा वस्त्राभूषण और उनके कार्यकलापों को समन्वित कर एक सुन्दर तथा सजीव रेखाचित्र प्रस्तुत किया गया है। रेखाएँ इतनी स्पष्ट और सुघड़ हैं कि चित्र में कहीं भी अमूर्तता

---

१. सूरसागर, पद ६६१
२. देखिए, डॉ० सावित्री सिन्हा : व्रजभाषा के कृष्ण-भक्तिकाव्य में अभिव्यंजनाशिल्प, पृ० २०१
३. सूरसागर, पद ७१७

या अस्पष्टता का भाव नहीं है। हाथ में नवनीत लिये, मुख पर दही का लेप किये, गोरोचन का तिलक दिये तथा कठुला, केहरि-नख आदि गले में धारण किये हुए आदि ऐसी स्पष्ट रेखाएँ हैं जो वालकृष्ण के चित्र को सजीव और मनोहारी वना देती हैं। रंगविहीन इन रेखाओं का चित्र राजस्थानी चित्रकला के लिए आधार रहा है।[1] निश्चय ही चित्र को देखकर कठुला-केहरि-नख आदि पहनने की कल्पना को (आधुनिक शहरी जीवन के लिए जो केवल कल्पना ही रह गयी है) आँखों से देखकर पद की अर्थवत्ता और वस्तुपरकता का सही अनुमान किया जा सकता है।

वालकृष्ण की विभिन्न क्रीड़ाओं एवं चेष्टाओं के अंकन में सूर ने अनेक उपकरणों को जुटाकर जो रेखाचित्र अंकित किये हैं, वे अत्यधिक साकार हो उठे हैं।[2] जसुमति की कनियाँ में (गोद में लेने का एक विशेष ग्रामीण तरीका) कृष्ण का किलकना और अपने मुख में तीन लोकों को दिखाना 'सूरसागर' का सुन्दर और सरल रेखाचित्र है।[3] दो सवल रेखाओं में कवि ने स्थिरचित्र का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। माता यशोदा चकित खड़ी विराट् रूप को अवलोक रही हैं, कृष्ण का घुटुरुन चलना, दही और नवनीत खाना तथा मुख में लपेटना, चन्द-खिलौना,[4] कृष्ण के बालरूप को देखकर माता यशोदा का प्रसन्न होना[5] तथा ताली और चुटकी बजाकर उन्हें मणिमय आँगन में खिलाना आदि सैकड़ों रेखाचित्र 'सूरसागर' में हैं, जिनका सही मूल्यांकन राजस्थानी चित्रण के आधार पर सरलता से किया जा सकता है।

३. **संस्कारों का रेखांकन**—वालकृष्ण के विभिन्न रेखाचित्रों में विभिन्न संस्कारों और उत्सवों के रेखांकन भी वर्णनात्मक होने के कारण अधिक दृश्यात्मक एवं चित्रोपयोगी हैं। नामकरण, अन्नप्राशन, वर्षगाँठ, कर्णछेदन आदि प्रसंगों का सूरदासजी ने अत्यधिक दृश्यात्मक रेखांकन किया है। नामकरण के पदों[6] में ऋषि का आगमन, व्राह्मण, चारण, बन्दीजन आदि का आगमन तथा दूब, हल्दी, दही आदि बाँधकर नामकरण-संस्कार करना भारतीय संस्कृति का सजीव चित्रण है।

---

१. देखिए, मेवाड़शैली का चित्र (राजकीय संग्रहालय कोटा)
२. ,, सूरसागर, पद ६९९, ७०१, ७१५, ७१७, ७१८, ७३३, ७४१ आदि
३. हरि किलकत जसुमति की कनियाँ।
मुख में तीन लोक दिखलाये, चकित भई नन्द-रनियाँ॥
—सूरसागर, पद ७०१
४. सूरसागर, पद ७३४
५. वही, पद ७३६, ७३७, ७३९, ७४१, ७४४, ७५२
६. वही, पद ७०३, ७०४, ७०५

मेवाड़शैली[1] में नामकरण-संस्कार की सजीवता विशेष दर्शनीय है, जिसके अवलोकन से नामकरण-संस्कार की दृश्यात्मकता साकार हो उठती है। अन्न-प्राशन में अनेक उपकरणों का नाम गिनाकर सूरदासजी ने जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह वस्तुपरक होते हुए भी अनेक रेखांकनों से परिपूर्ण है।[2] मणिकंचन का थाल भराना, भाँति-भाँति के वासण जुटाना, ब्रज-वधुओं को बुलावा देना, अनेक मिष्ठान्नों से ज्योनार करना, उबटना लगाकर कृष्ण को नहलाकर सुन्दर वस्त्रा-भूषण पहिनाना आदि ऐसे रेखाचित्र हैं जो संस्कार का सांस्कृतिक रूप साकार कर देते हैं। आज भारतीय संस्कार या तो काव्य में पढ़ने को या केवल मध्यकालीन चित्रों में देखने को मिलते हैं, शेष सारी परम्परा आधुनिकवोध के प्रभाव में मिटती चली जा रही है।

४. अलौकिक घटनाओं का अंकन—घटनाचित्रों में सूर का मन कम रमा है। उन्होंने कृष्ण की असुरसंहारक लीलाओं का कम-से-कम पदों में चित्रण कर दिया है। ऐसी लीलाएँ अधिकतर कृष्ण ने वालपन में ही की हैं। पूतना-वध,[3] कागासुर-वध[4], सकटासुर-वध[5], तृणावर्त-वध[6] आदि बचपन में और वकासुर-बध[7], अघासुर-वध[8], धेनुक-वध[9], कालियनाग दमन[10] आदि किशोरावस्था में गोचारण के समय करके उन्होंने संसार को असुरभार से छुटकारा दिलाया। उपर्युक्त असुर-संहारक लीलाएँ समाज में परम्परा से अत्यधिक प्रचलित और प्रसिद्ध रही हैं, इसलिए भागवत या 'सूरसागर' पर आधारित राजस्थानी चित्रकला में इनके सर्वाधिक चित्र बने हैं। कृष्णलीला-सम्वन्धी चित्रमाला में इन घटनात्मक, चामत्कारिक अलौकिक चित्रों की वहुलता है। इस प्रकार के घटनात्मक चित्र अंकित करने में आसान भी रहे हैं और कृष्ण के लोकमंगलकारी स्वरूप को प्रतिष्ठित करने में सहायक भी हुए हैं। ऐसे चित्रों को आधार वनाकर 'सूरसागर' के तत्सम्वन्धी पदों के पठन से उन असुरों का विकराल स्वरूप आँखों के सामने होने के कारण अत्यधिक प्रभावोत्पादक चित्र उभरता है। निश्चय ही इस प्रकार

१. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ परिशिष्ट-क, चित्रसंख्या-२
२. सूरसागर, पद ७८७
३. नही, ६६७ से ६७०
४. वही, पद ६७७, ६७८
५. वही, पद ६७६ से ६८१
६. वही, पद ६६५, मेवाड़शैली का चित्र द्रष्टव्य (राजकीय संग्रहालय, कोटा)
७. वही, पद १०४५, मेवाड़शैली का चित्र द्रष्टव्य (राजकीय संग्रहालय, कोटा)
८. वही, पद १०४६
९. वही, पद १११७
१०. वही, पद ११६८ से ११६९

के सारे चित्र वस्तुपरक होने के कारण सूर के रेखाचित्रों की श्रेणी में ही रखे जा सकते हैं। पदों की वर्णनात्मकता और चामत्कारिक घटनात्मकता सुघड़ रेखाओं द्वारा अंकित की गयी है। उदाहरणस्वरूप पूतनाबध को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है। कंस ने पूतना को कृष्ण को मारने के लिए भेजा, वह मोहिनीरूप धारण कर नन्दरानी के पास आकर बालक की बड़ाई करने लगी :

अहो महरि पालग मेरौ, मैं तुमरो सुत देखन आई।
यह कहि गोद लियौ अपनी तब, त्रिभुवन-पति मन-मन मुस्काई ॥
मुख चूम्यो, गहि कण्ठ लगायो, विष लपट्यो अस्तन मुखनाई।
पय संग प्रान ऐंचि हरिलीनों, जोजन एक परी मुरझाई ॥[1]

इस पद के अंश में पालागन कहना, कृष्ण को गोद में लेना, उनका मुख चूमना, कण्ठ से लगाना, विष से लिपटा स्तनपान कराना, और बालकृष्ण द्वारा पयपान के साथ ही उसके प्राणों का हरण करना, विशालकाय पूतना का पछाड़ खाकर गिरना तथा माता यशोदा का अचम्भित होना आदि सबल रेखांकन हैं। मेवाड़शैली में अंकित पूतनावध के चित्र[2] में कलाकार ने विशालकाय पूतना को मकान और पेड़ों पर पड़ा हुआ अंकित किया है। बालकृष्ण उसके स्तन का इस प्रकार पान कर रहे हैं, जैसे उसके प्राण ही ऐंच रहे हों। माता यशोदा बलराम की अँगुली पकड़े अचम्भित खड़ी हैं। एक ओर व्यासजी शुकदेव को ताड़कावध-प्रसंग पर उपदेश दे रहे हैं। चित्र के ऊपरी भाग में राजस्थानी गद्य में पूतनावध-प्रसंग को संक्षिप्त कर लिख दिया है, जो १७वीं शती के राजस्थानी गद्य के अध्ययन के लिए भी उपयोगी हो सकता है। इसी प्रकार के अन्य असुरसंहारक प्रसंगों का मेवाड़शैली[3], बूंदीशैली[4], जयपुरशैली में विशेष चित्रण हुआ है जो विभिन्न संग्रहालयों में बिखरा पड़ा है। भित्तिचित्रों में उपर्युक्त प्रसंगों का बहुलता से चित्रण हुआ है।

कालियनागदमनलीला भी अत्यधिक चामत्कारिक और घटनात्मक होने के कारण विशेष चित्रोपयोगी रही है। सूरदासजी ने अनेक पदों में लीला को विस्तार देकर सुन्दर गत्यात्मक रेखाचित्र खड़े किये हैं। उदाहरणार्थ एक तीव्रगत्यात्मक रेखाचित्र प्रस्तुत है[5] :

---

१. सूरसागर, पद ६६९
२. कलाभवन, वाराणसी में द्रष्टव्य तथा टाइम्स ऑफ इण्डिया एनुवल-१९६५, पृ० २९ पर अंकित
३. कलाभवन, वाराणसी, सरस्वती भण्डार, उदयपुर, राजकीय संग्रहालय, कोटा और उदयपुर में कृष्णलीला-सम्बन्धी लघुचित्र द्रष्टव्य
४. अनेक लघुचित्र तथा छत्रसालरंगमहल के भित्तिचित्र द्रष्टव्य
५. सूरसागर, पद ११७०

झिरकि कै नारि, दै गारि गिरधारि तब, पूँछ पर लात दै अहि जगायो।
उठ्यों अकुलाई, डरपाई खगराई को, देखि बालक गरब अति बढायो।
पूँछ लीन्हीं झटकि धरनि सौं गहि पटकि फुंकरयो लटकि करि क्रोध फूले।
पूँछ राखी चांपि, रिसनि काली कांपि, देखि सब साँपि अवसान भूले।
करत फन-घात, विष जात उतरात अति, नीर जरि जात, नाहिं गात परसै।
सूर के स्याम प्रभु, लोक-अभिराम, विनु जान-अहिराज विष ज्वाल वरसै ।।

नागपत्नियों को झिड़कना, गाली देकर पूँछ पर लात मारकर सर्प को जगाना, सर्प का अकुलाकर जगना, अन्य सर्पों का अवसान चूकना आदि ऐसी तीव्रगत्यात्मक रेखाएँ हैं, जो चित्र को अत्यधिक आकर्षक बनाती हैं। काव्य में झिरकि, अकुलाई, झरकि, पटकि, फुंकरयो, लटकि, चाँपि, अवसान भूले, करत-फन-घात आदि ऐसे शब्द हैं, जो गत्यात्मकता को चित्रित करने में समर्थ हैं। यही कार्य चित्र में तीखी रेखाओं के अंकन से उभर पाता है। कालियनागदमन के अनेक चित्रों में उपर्युक्त गत्यात्मकता के अंकन के साथ ही व्याल को नाथने का चित्रण विशेष रूप से हुआ है।[1] नागदमन की चित्रोपयोगिता समाज में अत्यधिक मनोहारी रही है, इसलिए अन्य असुरदलन-चित्रावलियों में नागदमन के चित्र प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं,[2] जिनके अवलोकन से नाग के अनेक फनों, उसका विकराल स्वरूप, नागपत्नियों और वातावरण का सहज ही ज्ञान हो जाता है। इन चित्रों के अवलोकन से 'सूरसागर' के कालियनागदमन-प्रसंग का सही, सच्चा और चित्रोपम वर्णन पाठक के सम्मुख साकार हो उठता है। गोपालराय ने नाग को नाथ रखा है तथा फन पर नृत्य कर रहे हैं, उनका रूप-वर्णन दर्शनीय है। नागपत्नियाँ खड़ी-खड़ी स्तुति कर रही हैं :

गोपालराई निरतत फन-प्रति ऐसे।
गिरि पर आये बादर देखत, मोर अनन्दित जैसे।
डोलत मुकुट सीस पर हरि के, कुण्डल-मण्डित गण्ड।
पीतवसन, दामिनि मनु घन पर, तापर सुर-को दण्ड।
उरग-नारि आगैं सब ठाढ़ीं, मुख-मुख अस्तुति गावैं।
सूर स्याम अपराध छमहु अब, हम माँगैं पति पावैं।[3]

प्रस्तुत पद में नाथे हुए कालियनाग पर कृष्ण का नाचना, मुकुट का शीश पर

---

१. राजकीय संग्रहालय, कोटा में मेवाड़शैली का चित्र तथा प्रिन्स ऑफ वेल्स म्युजियम, बम्बई में १७वी शती का मेवाड़शैली का चित्र, सं० ५४, ४६ द्रष्टव्य

२. कोटा, उदयपुर के संग्रहालयों तथा सरस्वती-भण्डार, उदयपुर में विशेष द्रष्टव्य

३. सूरसागर, पद ११८४

डोलना तथा नागपत्नियों का हाथ जोड़कर भगवान बालकृष्ण से क्षमायाचना हेतु प्रार्थना करना आदि सबल रेखाएँ हैं, जो नागदमन के सम्पूर्ण चित्र को प्रस्तुत करती हैं। इस भाव को आधार बनाकर राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियों में अनेक चित्र बने हैं,[1] जिनमें नागपत्नियों का हाथ जोड़कर प्रार्थना करना, कालियनाग का मानमर्दित स्वरूप और कृष्ण का नृत्य की मुद्रा में बाँसुरी बजाना विशेष रूप से चित्रित किया गया है।

अन्य अलौकिक लीलाओं की भाँति गोवर्धनधारणलीला भी 'सूरसागर' एवं राजस्थानी चित्रण में विशेष महत्त्व की है। सूर के पदों में गोवर्धनपूजन का जो रेखांकन उपलब्ध है[2], उसी के आधार पर बने लगभग एक दर्जन चित्र 'पिक्चर एण्ड आर्ट गैलेरी, बड़ौदा' में द्रष्टव्य हैं। मेवाड़शैली के १८वीं शती के मध्य के ये चित्र कला एवं रेखांकन की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं।[3] इन चित्रों में पद के अनुसार ही तीव्रगत्यात्मक रेखांकन हुआ है। व्रज के लोकजीवन की विविधता और भीड़-भाड़ के अंकन के कारण ये चित्र समूहचित्रों की कोटि में भी रखे जा सकते हैं।

गोवर्धनधारण-प्रसंग के भाव को राजस्थानी चित्रकारों ने परम्परानुसार अंकित किया है। भगवान कृष्ण पहाड़ को अँगुली पर धारण किये हुए हैं और व्रजवासी, पशु-पक्षियोंसहित पहाड़ के नीचे चकित खड़े हैं। १७वीं शती के अन्त में चित्रित मेवाड़शैली के एक चित्र[4] में कृष्ण के उदात्त भाव का चूडान्त चित्रण सूर के पद[5] से अक्षरशः मिलता है। कृष्ण के जिस स्वरूप का रेखांकन सूर ने किया है, वह उपर्युक्त चित्र में साकार हो उठा है। रंगविधान तथा पगड़ी, अंगरखा आदि की विशेषताओं और गाय तथा स्त्रियों के शरीर और मुख की बनावट के कारण मेवाड़शैली अपना अलग ही महत्त्व रखती है। कृष्णजी का अंगरखा, नन्द की दाढ़ी और स्त्रियों के वस्त्राभूषण तथा बच्चों का गोद में लेने का ढंग ठेठ राजस्थानी है। कृष्ण के कृत्य को देखकर बालगोपाल चकित हैं तथा कृष्ण के कहने पर वे भी छड़ी आदि से गोवर्धन उठाते हैं। उपर्युक्त चित्र में पर्वत का प्राकृतिक सौन्दर्य काव्य से व्यतिरिक्त चित्रित हुआ है।

गोवर्धनधारण के अन्य राजस्थानी शैली के चित्रों[6] का आधार 'श्रीमद्-

---

१. देखिए, कलाभवन, वाराणसी, कुं० संग्रामसिंह, जयपुर, सरस्वती-भण्डार, उदयपुर आदि के सग्रहालयों में
२. देखिए, सूरसागर, पद १४२९-१४६८
३. प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट, चित्रसंख्या ३
४. देखिए, व्रजमोहन व्यास (प्रयाग) के संग्रहालय में तथा कलानिधि, वर्ष-१, अंक-२, फलक-१ पर प्रकाशित
५. सूरसागर, पद १४९०
६. देखिए, डॉ० मोतीचन्द्र : मेवाड़ पेण्टिग, फलक-८

भागवत' रहा है, किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में भी अतिशय शृंगारिकता दिखलाकर रीतिकालीन प्रभाव को चित्रकारों ने ग्रहण किया है।

इस प्रकार वालकृष्ण के उपर्युक्त चरित्रांकनों में उनके रूपसौन्दर्य, बाल-सुलभ क्रीड़ा एवं चेष्टाएँ, विभिन्न संस्कारादि तथा असुरसंहारक अलौकिक लीलाओं आदि का जो सुघड़ बहिर्मुखी रेखांकन हुआ है, वह काव्य तथा चित्र-कला के लिए महत्त्वपूर्ण दाय है।

गोपालकृष्ण

कृष्णचरित्र का दूसरा प्रमुख स्वरूप है गोपालकृष्ण। जैसे ही कृष्ण वड़े होते हैं कि माता यशोदा का घर-आँगन छोड़कर अपने साथी वालगोपालों के साथ वन में धेनु चराने जाते हैं। गोपालकृष्ण का रूप-अंकन, प्रातःकाल गोचारण हेतु वनगमन, वन में वयसुलभ खेल खेलना, अलौकिक लीलाएँ दिखाना तथा सन्ध्या को घर लौटना आदि कार्यकलापों के सैकड़ों रेखाचित्र 'सूरसागर' की अमर धरोधर हैं।

१. ग्वाले के चित्र—कृष्ण के वड़े होते ही उनके रूप और वस्त्राभूषणों में भी अन्तर आ जाता है। झँगुली त्यागकर वे काँधे पर 'कारी-कामरी' और पीताम्वर धारण करने लगे हैं। मोरपंखों का मुकुट और हाथ में लकुटिया, गले में मालाएँ उनकी शोभा वढ़ाती हैं।[१] सर्वप्रमुख उपकरण है वंशी, जिसकी मधुर तान से वे वन के स्वच्छन्द वातावरण को गुंजायमान कर देते हैं। वन से ब्रज को धेनु चराकर लौटते हुए कृष्ण का रूपसौन्दर्य अद्वितीय है। सन्ध्या समय साँवरे मुख पर गोपद-रज लिपटी हुई है। मोरपंख के मुकुट के पास ही लटें निकली हुई हैं, गुंज की माला गले में पड़ी है और एक-सी वय के ग्वालवालों के संग कृष्णजी गायें हाँकते हुए चले आ रहे हैं।[२] माता यशोदा उनके रूप का वखान करती हैं :

---

१. कान्ह कांधे कामरिया कारी, लकुट लिये कर घेरे हो।
वृन्दावन में गाय चरावै, धौरी धूमरी टेरे हो।
लै लिवाइ ग्वालनि बुलाइ कै, जहँ-तहँ बन-बन हेरे हो।
सूरदास प्रभु सकल लोक-पति, पीताम्वर कर फेरे हो।
देखिए, सन्ध्या को गाय चराकर लौटते हुए कृष्ण की वेषभूषा बूँदीशैली में चित्रित (प्रिन्स ऑफ वेल्स म्युजियम की कला-वीथि में प्रदर्शित चित्र तथा दि टाइम्स ऑफ इण्डिया एनुवल-१९६३ में फलक-१ द्रष्टव्य)

२. वन तैं आवत धेनु चराए।
सन्ध्या समय साँवरे मुख पर, गोपद रज लपटाए।
वरह-मुकुट के निकट लसति लट, मधुप मनो रुचि पाये।
—सूरसागर, पद १०३५

मेरे नैन निरखि सुख पावत ।
सन्ध्या समय गोप गोधन संग बन तें बनि व्रज आवत ।।
उर गुंजा वनमाल, मुकुट सिर, वेनु रसाल बजावत ।
कोटि फिरनि-मनि मुख परकासित, उडपति कोटि लजावत ।।
नटवर रूप अनूप छवीलो, सवहिनि कैं मन भावत ।
गोप सखा सब वदन निहारत, उर आनन्द न समावत ।।
चंदन खोरि, काछनी काछे, देखत ही मन भावत ।
सूर स्याम नागर नारिनि को, बासर-बिरह नसावत ।।

उपर्युक्त पद में विभिन्न रेखाओं के द्वारा गोपालकृष्ण के रूप का अंकन किया गया है। पद के आधार पर बना हुआ बूंदीशैली का चित्र[1] सन्ध्यासमय गोचारण से लौटते हुए गोपालकृष्ण से सम्बन्धित भावांकन एवं रूपसौन्दर्य का सुन्दर उदाहरण है। चित्रकार ने सतरंगे बादलों द्वारा सन्ध्या का मादक वातावरण प्रस्तुत किया है तथा पेड़-पौधों और फूलों का अंकन कर प्राकृतिक परिवेश को अधिक लुभावना बनाया है। काली, धूमरी, चितकबरी, भूरी, सफेद आदि रंग की गायें चित्रित की गयी हैं।[2] उनकी घर की ओर दौड़ने की ललक गत्यात्मकता की परिचायक है। कृष्ण का रूपसौन्दर्य पद के अनुसार है। ऊपर राजपूतशैली के बने छज्जे पर माता यशोदा राधा के संग खड़ी हुई कृष्ण के रूप को निहार रही हैं। कृष्ण के अलंकृत रूप को बलराम तथा उनके साथी गोप भी संग चलते-चलते निहार रहे हैं। सम्पूर्ण चित्र का भाव कृष्ण के रूपसौन्दर्य पर केन्द्रित है। एक ओर प्रकृति-परिवेश से ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा नारद मुनि उनके रूप को देखकर माता यशोदा के भाग्य पर ईर्ष्या कर रहे हैं। 'सूरसागर' के पदों[3] का अध्ययन इस चित्र के आधार पर किया जा सकता है। निश्चय ही इस प्रकार के चित्र, जो काव्य के आधार पर चित्रित किये गये हैं, कला की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं, जिनके परिपार्श्व में 'सूरसागर' के विभिन्न पदों की अर्थवत्ता का चाक्षुषीकरण किया जा सकता है।

---

१. प्रिन्स ऑफ वेल्स म्युजियम, बम्बई की कला-वीथि में प्रदर्शित गोचारण का चित्र, तथा वही टाइम्स ऑफ इण्डिया एनुवल-१९६२ में फलक-१ पर द्रष्टव्य

२. धोरी धूमरी, राती, रौंछी, बोल बलाय चिन्हौंरी ।
पियरी, धोरी, गोरी, गैनी, खैरी, कजरी जेती ।।
—सूरसागर, पद १०६३

३. सूरसागर, पद १०३५, १०९४, १०९५, १०९६, १०९७, १०९८, १२३४ आदि

अन्य ग्वालवालों के चित्र भी प्रायः वैसे ही कम अलंकृत और वेशभूषा में थोड़ा परिवर्तन करके बनाये गये हैं, जो चित्रकला के नियमों के अनुसार हैं।[1] संक्षेप में गोपालकृष्ण, गोप, माता यशोदा, गोपियों, राधा, गाय, बछड़े आदि का चित्रण 'सूरसागर' में यथास्थान हुआ है जो रूपांकन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। ऐसे चित्रों में रेखाएँ सुस्पष्ट, लयात्मक और सजीव हैं। मेवाड़शैली तथा उसकी उपशैली नाथद्वारा में माता यशोदा, गोपियाँ तथा नन्द बाबा, गोप आदि के अंकन में पुष्टता तथा प्रौढ़ता और मेवाड़ी वस्त्राभूषणों का पूर्ण प्रभाव है।[2]

२. प्रकृतिचित्रण—काव्य में प्रकृति का अनेक रूपों में चित्रण हुआ है। "आलम्बनगत, उद्दीपनगत, मानव-क्रियाकलाप की क्रीड़ास्थली के रूप में तथा अलंकारों के रूप में प्रकृतिचित्रण विशेष रूप से पाया जाता है।"[3] आलम्बनगत और उद्दीपनगत चित्रण का विवेचन भावांकन में और अलंकारों के रूप में चित्रण का विवेचन कलापक्ष में करेंगे। यहाँ पर प्रकृति के उपकरणों की वस्तुपरकता को आधार बनाकर रेखांकन की दृष्टि से विचार करेंगे। गोपालकृष्ण की अधिकतर लीलाएँ प्रकृति के सुरम्य और स्वच्छन्द वातावरण में हुई हैं, इसलिए उनके प्रकृतिचित्रण में कटी-छँटी फुलवारियों या राजसी ठाठ-बाट से युक्त उपवनों और बगीचों का चित्रण न होकर स्वछन्द प्रकृति-परिवेश का विशेष रेखांकन है। सूरदासजी ने वन, उपवन, यमुनातट, वंशीवट, कछार, करील-कुंज, गोकुल से वृन्दावन का हराभरा मार्ग आदि का सुन्दर वस्तुपरक चित्रण किया है। "सूरदासजी ने गोकुल-वृन्दावन के ग्राम्यजीवन में जितनी रुचि दिखलायी है, उतनी नागरिक जीवन का परिचय देने में नहीं।"[4] इसलिए उनके काव्य में जीवन की सरलता, स्वाभाविकता और अल्हड़ता के साथ ही प्रकृति का भी स्वाभाविक और स्वच्छन्द चित्रण हुआ है। गोपालकृष्ण अपने साथी बालगोपालों के साथ कुमुदवन[5], वृन्दावन[6], जमुना के कछारों आदि में गाय चराने जाते हैं। उपर्युक्त वनों एवं कछारों का वातावरण अत्यधिक मादक है। एक ओर जमुना वह रही है, अनेक प्रकार के पेड़-पौधे एवं कुंजों से वन सुशोभित हैं। कदम्ब, आम्र, कदली, वट, पीपल, पलाश आदि पेड़ों एवं करील-कुंजों का विशेष विवरण

---

१. एक रूपास्तु कर्तव्या वैष्णवानान्तथा गणाः ।।
वासुदेवसभाः कार्या वासुदेवगणाः शुभाः ।।

—चित्रसूत्रम् ३६।२०।४२

२. देखिए, डॉ० मोतीचन्द्र : मेवाड़ पेण्टिंग तथा संग्रहालय की अनेक पिछवाइयाँ
३. डॉ० मुंशीराम शर्मा : सूरदास का काव्यवैभव, पृ० ६७
४. प्रेमनारायण टण्डन : सूरसाहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ९
५. सूरसागर, पद १०६३
६. वही, पद १०६४, १०६५, १०६६, १०७०

'सूरसागर' में हुआ है।[1] वन के अनेक पशु-पक्षियों का चित्रण भी यथास्थान हुआ है, जो प्रकृति के ही अभिन्न उपकरण हैं। कपि, वानर, कुरंग, मृग, हरिन, केहरि, गज, नाग, गाय, वछड़े[2] तोता, मोर, चकवा, कोकिल, चातक, मराल, सारस, वगुला, सारिका आदि[3] का चित्रण प्रकृति के विराट परिवेश में रेखांकित किया गया है। राजस्थानी चित्रकला गोपालकृष्ण-सम्वन्धी पदों पर आधारित चित्रों में भी यथासम्भव वैसा ही स्वच्छन्द चित्रण द्रष्टव्य है। मेवाड़शैली में ऐसे चित्रों का बाहुल्य है।[4] गोपालकृष्ण की विभिन्न लीलाओं एवं कार्यकलापों के लिए चित्रकारों ने पृष्ठभूमि विशेषतया व्रजमण्डल के प्राकृतिक परिवेश को वनाया है। सूरदासजी केवल जमुनातट, वंशीवट, वृन्दावन आदि का नाम लेकर अपना काम साध गये हैं, पर चित्रकार को सम्पूर्ण परिवेश का सूक्ष्मांकन करना होता है, जो उसके धैर्य का परीक्षक होता है। मेवाड़ी चित्रकारों ने जिस धैर्य के साथ व्रजमण्डल के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण किया है, वह कला की दृष्टि से तो उत्कृष्ट है ही, सूरकाव्य के पठन के लिए भी विशेष उपयोगी सिद्ध हो सकता है।[5] सूरदासजी जहाँ 'भोर' शब्द कह गये हैं[6] चित्रकार को 'भोर' का सम्पूर्ण सतरंगा वातावरण अंकित करना होता है। बूँदी शैली के 'विभ्रम-हाव' के चित्र[7] में कलाकार ने प्रातःकाल का स्वाभाविक वातावरण प्रस्तुत किया है। पक्षियों की चहचहाहट से दिगन्त गुंजरित हो उठा है। आकाश में लाली होने लगी है तथा फूल खिलने लगे हैं। गाय का रँभाना और राधा का दही विलोने का वहाना करना आदि उपकरण प्रातःकाल के वातावरण को सजीव वना रहे हैं। इसी भाव को आधार वनाकर अंकित किया हुआ मारवाड़शैली का चित्र भी उल्लेखनीय है। वास्तव में प्रकृति में रेखाएं नहीं होतीं, रंग होते हैं। विभिन्न रंगों के समन्वय से ही प्रकृति-सौन्दर्य का चित्रण किया जाता है, पर प्रकृति के विभिन्न उपकरणों की नामावलि द्वारा वस्तुपरकता का जो भान होता है, वह पाठक के मानस-पट पर कुछ स्पष्ट रेखाएँ उभारने में समर्थ होता है। चित्रकार उन उपकरणों का

---

१. देखिए, प्रेमनारायण टण्डन : सूरसाहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १७
२. वही, पृ० १४-१५
३. वही, पृ० १२-१३
४. देखिए, कृष्णलीला-सम्वन्धी अनेक चित्र (प्रिन्स ऑफ वेल्स म्युजियम, बम्बई, राजकीय संग्रहालय, कोटा तथा उदयपुर)
५. देखिए, डॉ० मोतीचन्द्र : मेवाड़ पेण्टिंग, फलक-१० तथा दि टाइम्स ऑफ इण्डिया एनुवल-१९६५, पृ० ३०
६. आज राधिका भोर हीं जसुमति कै आई। सूरसागर, पद १३३३
७. देखिए, प्रिन्स ऑफ वेल्स म्युजियम, बम्बई तथा दि टाइम्स ऑफ इण्डिया एनुवल-१९६२ में प्रकाशित फलक-४ का चित्र

बारीकी से अलंकृत चित्रण कर प्राकृतिक सौन्दर्य का रूप अंकित करता है, जो भावानुकूल होने के कारण उचित पृष्ठभूमि का कार्य सम्पन्न करता है। राजस्थानी चित्रकारों ने पेड़-पौधों की पत्तियों, फूलों, लता-गुल्मों, नदी-पर्वत, पशु-पक्षी आदि के बनाने में विशेष परिश्रम किया है।[१]

३. **वयसुलभ खेलों का चित्रण**—गोपालकृष्ण के चित्रण में अपने साथी बालगोपालों के साथ वयसुलभ खेलों का विशेष अंकन हुआ है। वन के स्वच्छन्द प्रांगण में गेंद से मारधड़ी का खेल खेलते हुए वे अघाते नहीं।[२] एक-दूसरे को गेंद फेंककर मारना, गेंद रोककर फिर-फिर मारने दौड़ना आदि कार्य-व्यापार तीव्र-गत्यात्मक चित्रों का निर्माण करते हैं :

खेलत स्याम सखा लिए संग।
इक मारत इक रोकत गेंदहि, इक भागत करि नाना रंग।
मार परसपर करतु आप मैं, अति आनन्द भये मन माँहि।
खेलत ही मैं स्याम सबनि को, जमुना तट को लीन्हें जाँहि।
मारि भजन जो जाँहि, ताँहि सो मारत, लेत आपुनौं दाउ।
सूर स्याम के गुन को जाने कहत और कहु और उपाउं ।।[३]

उपर्युक्त पद की प्रथम दो पंक्तियों में ही तीन सबल गत्यात्मक रेखाओं के द्वारा सूरदास ने 'मारधड़ी' के गतिचित्र का अंकन कर दिया है। एक का गेंद मारना, एक का रोकना, एक का भागना, आदि रेखाएँ गति की द्योतक हैं। मेवाड़-शैली के चित्र[४] में गति की तीव्रता और बालगोपालों की प्रसन्नता तथा यमुनातट का प्राकृतिक सौन्दर्य विशिष्ट रूप से अंकित हुआ है।

दूसरा प्रमुख खेल है जलविहार। यमुना के उक्त प्रवाह में बालगोपालों के संग कृष्णजी स्नान करते हैं।[५] पेड़ पर कपड़ों को टाँगकर सभी साथी जल में कूद पड़ते हैं। तैरना, डुबकी लगाना, पेड़ पर चढ़कर कूदना, एक-दूसरे को छींटे मारना आदि उनके खेल हैं जिनका मेवाड़शैली में चित्रण अत्यधिक सजीव है।[६] यमुनाजल का रेखांकन (मेवाड़ शैली में जल अंकित करने का अपना अनूठा ढंग

---

१. देखिए, प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेण्टिंग, फलक-५ तथा ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेण्टिंग, फलक-७-९
२. सूरसागर, पद ११५१, ११५२, ११५३ आदि
३. सूरसागर, पद ११५१
४. सरस्वती-भण्डार, उदयपुर की कृष्णलीला-चित्रावलि में द्रष्टव्य
५. जलक्रीड़ा, बूंदीशैली का चित्र द्रष्टव्य, प्रिन्स ऑफ वेल्स म्युजियम, बम्बई, सं० ५२, २३
६. देखिए, डॉ० मोतीचन्द्र : मेवाड़ पेण्टिंग फलक-१०

है), किनारे के पेड़-पौधों का अंकन, गाय और बछड़ों का अंकन इस चित्र में अत्यधिक सजीव बन पड़ा है। पाँच साथी यमुनाजल में खेल रहे हैं, एक किनारे पर बैठा उनकी क्रीड़ाओं की ओर संकेत कर रहा है, कृष्णजी पेड़ पर से जल में छलाँगने की तैयारी में हैं। सब मिलाकर चित्र गोपालकृष्ण के जलविहार का लुभावना दृश्य प्रस्तुत करता है। चित्र के आधार पर जलविहार-सम्बन्धी विषय का विशेष अध्ययन किया जा सकता है।

साथ मिल-बैठकर वन में छाक जीमने के अनेक पद 'सूरसागर' में उपलब्ध हैं[1] जिनमें छाक लाना, अन्य बालगोपालों को छाक जीमने के लिए बुलाना, कमल-पत्रों में विभिन्न पदार्थ परोसना, कृष्ण का ग्वालबालों की पत्तल से जूठा भोजन खाना, छीना-झपटी करना आदि दृश्यात्मक चित्रों का अंकन सजीव बन पड़ा है।[2] ग्रामीण जीवन के गोचारणपक्ष का सूरदासजी ने स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है, जो आज भी गाँवों में द्रष्टव्य है तथा राजस्थानी चित्रकला के माध्यम से जिसका अध्ययन किया जा सकता है।

खेल-ही-खेल में अनेक असुरों का दलन गोपालकृष्ण ने किया था, जिनका विवेचन हम कर चुके हैं। राजस्थानी चित्रण में बकासुर, अघासुर, वत्सासुर आदि के दलन एवं कालियनागमर्दन और दावानलपान[3] के अनेक चित्र बने हैं, जिनका आधार भागवत रहा है, किन्तु सूर का कथ्य भी उन चित्रों के आधार पर पठनीय है। दावानल का सूरदासजी ने विस्तार से भयंकर चित्रण किया है।[4] 'भहरात-झहरात' दावाग्नि चारों ओर लगी है। वन के सारे उपकरण चटक-चटककर जल रहे हैं। चारों ओर धुआँधार छाया हुआ है। ग्वालबाल तथा गाय-बछड़े और जंगल के अनेक जीव-जन्तु व्याकुल हैं। सबको व्याकुल देखकर नन्दलाल हँसकर मुट्ठी भरकर भयंकर दावाग्नि को क्षण-भर में ही पीकर सबका उद्धार करते हैं। जितने विस्तार और विकरालता से दावाग्नि का चित्रण सूरदासजी ने किया है, उसका शतांश भी राजस्थानी चित्रकला में अंकित नहीं हो पाया है। गोपीकृष्ण कानोड़िया, कलकत्ता के निजी संग्रह वाले मेवाड़शैली के चित्र में तो चित्रकार ने अग्नि की सुनहरी लपटों के घेरे में बालगोपालों, गोपियों तथा गायों

---

१. सूरसागर, पद १०८२, १०८३, १०८४, १०८५, १०८६, १०८७, १०८८ आदि
२. देखिए, जीमण करते कृष्ण, एन० सी० मेहता संग्रहालय, गुजरात म्युजियम सोसाइटी, अहमदाबाद तथा १८वीं शती के प्रारम्भ का मेवाड़शैली में वन में भोजन
३. देखिए, डॉ० मोतीचन्द्र : मेवाड़ पेण्टिंग, फलक-६ तथा दि टाइम्स ऑफ इण्डिया एनुवल-१९६५, पृ० ३६ पर प्रकाशित चित्र
४. सूरसागर, पद १२०८ से १२१७

आदि को जहाँ स्थान मिला है वहीं आड़े-तिरछे चित्रित कर दिया है। कृष्णजी आग का पान कर रहे हैं और दरबारी वेशभूषा में सजे नन्द, बालगोपाल आदि आश्चर्यान्वित खड़े हैं।[1] कला की दृष्टि से ऐसे चित्र उत्कृष्ट हो सकते हैं, पर काव्य के विराट भाव का सीमित प्रदर्शन ही कर पाते हैं।

रसिकविहारी कृष्ण

हिन्दी साहित्य में कृष्ण के शृंगारी स्वरूप का विस्तार से चित्रण हुआ है। कृष्ण के माधुर्य स्वरूप को देखकर तथा उनकी वंशी की धुन को सुनकर राधा और गोपियाँ आत्मविभोर हो उठती हैं। राधा-कृष्ण का संयोग तथा वियोग भावांकन का विषय है, अतः यहाँ पर केवल रसिक कृष्ण और राधा के रूपांकन के कुछ उदाहरण प्रस्तुत करेंगे, जो चित्रकारों के लिए आदर्श आधार रहे हैं :

देखो भाई सुन्दरता को सागर।
बुधि-विवेक-बल पार न पावत, मगन होत मन नागर।
तनु अति स्याम अगाध अंबु-निधि, कटि पट पीत तरंग।
चितवन चलत अधिक रुचि उपजति, भंवर परति सब अंग।
नैन-मीन, मकराकृत कुंडल, भुज सरि सुभग भुजंग।
मुक्ता-माल मिली मानौ द्वै सुरसरि एकै संग॥
कनक खचित मनिमय आभूषण, मुख स्रम-कन सुख देत।
देखि सरूप सकल गोपीजन रही विचारि-विचारि॥
तदपि सूर तरि सकी न सोभा, रही प्रेम पचि हारि॥[2]

उपर्युक्त पद में अनेक उपमाओं के द्वारा कृष्ण के अंग-प्रत्यंगों का रेखांकन किया गया है, जो कृष्ण के माधुर्यरूप को साकार करता है। उनके वस्त्र, आभूषण आदि अंग-प्रत्यंगों की शोभा को और भी द्विगुणित करते हैं। राधा से प्रथम मिलन का रूपचित्र सूरदासजी ने अनोखा खींचा है। अनेक रेखाएँ कृष्ण[3] और राधा के मोहक रूप को साकार कर देती हैं। ब्रज की गलियों में रसिकविहारी कृष्ण खेलने निकले हैं। कमर में कछनी और पीताम्बर बाँधे हैं। हाथ में भौंरा और चकडोरी है। सिर पर मोरमुकुट, कानों में कुण्डल और ललाट पर चन्दन

---

१. देखिए, डॉ० मोतीचन्द्र : मेवाड़ पेण्टिग, फलक-९
२. सूरसागर, पद १२४६
३. खेलत हरि निकले ब्रज-खोरी।
कटि कछनी पीताम्बर बांधि, हाथ लिये भौंरा चकडोरी॥
मोर-मुकुट, कुण्डल स्रवननि वर दसन-दमक दामिनि छवि छोरी॥
गये स्याम रवि-तनया के तट, अंग लसति चन्दन की खोरी॥
—सूरसागर, पद १२९०

का तिलक शोभायमान है। उनकी मन्द मुस्कान के कारण दशन दामिनी की भाँति दमक रहे हैं। अचानक ही यमुना के किनारे शोभा की खान गौरवर्ण राधा[१] से उनकी भेंट हो जाती है। सखियों के संग चली आ रही राधा ने नीलवस्त्र की फरिया पहन रखी है। उसकी विशाल आँखें, भाल पर रोली का टीका तथा पीठ पर अल्हड़ता से विखरे हुए बाल रसिकविहारी के मन को लुभा लेते हैं। 'नैन-नैन मिलि परी ठगोरी' वाली वात केवल अनुभव ही की जा सकती है। सूरदास ने कुछ शाब्दिक रेखाओं एवं पीत, गौर, लाल, नीले रंगों के द्वारा कृष्ण और राधा का जो रूपांकन किया है, वह निश्चय ही चित्रकला-जगत के लिए आदर्श आधार रहा है। लड़कियों के झुण्ड में रूपवती नवलकिशोरी का अल्हड़ता से यमुना किनारे स्वच्छन्द वातावरण में घूमना भला किसके मन को नहीं ठग लेगा![२]

नवलकिशोर का 'नवलनागरिया' के साथ गलवाँही डालकर चलना एक मनोहारी चित्र है। 'सूरसागर' में यथास्थान उसका चित्रण हुआ है। राजस्थानी शैली के अनेक ऐसे चित्रों[३] के आधार पर गलवाँही डालकर प्रेमालाप करने की मुद्रा का साहित्यिक चित्रण अनायास ही साकार हो उठता है।

दूध दुहते समय राधा की ओर एकटक देखना, उसकी ओर दूध की धार चलाना, छेड़खानी करना आदि अनेक शब्दचित्र[४] 'सूरसागर' में उपलब्ध हैं, जिनके आधार पर मेवाड़, मारवाड़[५], बूंदी[६] आदि शैलियों के अनेक चित्र बने हैं। ऐसे चित्रों के आधार पर 'सूरसागर' के दृश्यात्मक रेखांकनों का अध्ययन

---

१. औचक ही देखी तहँ राधा नैन विसाल भाल दिये रोरी।
नील बसन फरिया कटि पहिने, बेनी पीठि रुलति झकझोरी।।
संग लरिकनी चलि इत आवति दिन थोरी अति छवितन गोरी।
सूर स्याम देखत हीं रीझे, नैन-नैन मिलि परी ठगोरी।।
—वही, पद १२९०

२. नवल किशोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम-भुज ऊपर, स्याम भुजा अपने उर धरिया।
—वही, पद १३०६
बाँह जोरि प्रातः कुंज ते निकसे रीझि-रीझि कहै बाता।
—वही, पद २७९६

३. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ६, १५

४. सूरसागर, पद १३३३, १३४०, १३४९, १३५१, १३५४ आदि

५. देखिए, चित्र सं० ४ तथा गुजरात म्युजियम सोसाइटी के एन० सी० मेहता कलेक्शन में दूध दुहते कृष्ण का चित्र

६. देखिए, विभ्रम-हाव-सम्बन्धी चित्र (प्रिन्स ऑफ वेल्स म्युजियम, बम्बई तथा दि टाइम्स ऑफ इण्डिया एनुवल में प्रकाशित फलक-४)

अधिक सूक्ष्मता और मनोवैज्ञानिकता से किया जा सकता है, जिनमें रसिक-विहारी कृष्ण का अंकन अत्यधिक सजीव हो उठा है।

रसिकविहारी कृष्ण के रूपचित्रण में एक-से ही उपकरणों का सूरदास ने वार-वार प्रयोग किया है। मोरमुकुट, कुण्डल, वनमाल, पीताम्वर, काछनी, मुरली, तिलक, घुंघराले वाल आदि शब्दों की पुनरावृत्ति 'सूरसागर' में हजार से भी अधिक वार हुई है। चित्रकारों ने भी 'सूरसागर' को आधार बनाकर अंकित किये गये चित्रों में कृष्ण के उपर्युक्त उपकरणों का ही अधिक अंकन किया है। कहीं-कहीं पर राजसी ठाठ-वाट के अनुसार कृष्ण को जामा, पाग, कमरबन्द आदि वस्त्रों एवं राजसी अलंकारों से अलंकृत किया है।[1] ऐसा प्रभाव तत्कालीन वस्त्राभूषणों का है जो राजपूत और मुगल संस्कृतियों में विशेष उल्लेखनीय हैं। रीतिकालीन कवियों ने कृष्ण के लिए इसी प्रकार के वस्त्राभूषणों का उल्लेख किया है।[2]

राधा के रूपचित्रण में सूरदास ने अप्रस्तुत योजना से अधिक काम लिया है।[3] वह रूप की खान है। उसके अंग-प्रत्यंगों की शोभा में कोई व्रजनारी समता में नहीं ठहरती है। कनकलता और चम्पकली-सी उसकी देह हरि के लिए प्राण-धन है।[4] कृष्ण के साथ गलवाँही डाले ऐसी लगती है जैसे वादलों में विजली चमक रही हो। आधा मुख नीलाम्वर से ढँक रखा है तथा विथुरी हुई अलकें सुशोभित हो रही है।[5] उसके अंग-प्रत्यंगों की शोभा ने त्रैलोक्य के धनी कृष्ण को जीत लिया है।[6] उसकी भौंहें कमान, आँखें वाण की नोंक, नाक तिलप्रसून, अधर विम्वाफल और वाहुएँ मृणाल के समान हैं। अन्य अंगों का रेखांकन भी उपमाओं

---

१. देखिए, डॉ० मोतीचन्द्र : मेवाड़ पेण्टिग, फलक-८
२. ,, विश्वनाथ प्रसाद : केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० ७८ (पद १४)
३. विराजति राधा रूप निधान।
सुन्दरता की पुंज प्रगट ही, को पटतर तिय आन।
सिन्दुर सीस, मांग मुक्तावलि, कच कमनीय वितान।
मनहूँ चन्द्रमुख कोपि हन्यो, रिपु राहु विषम वलवान।।
—सूरसागर, पद ३०६४
४. कनकलता अरु चम्पकली तनु, हरिहिं प्रानधन राधा प्यारी।
मरकत मनि नन्दलाल लाड़िलौ, कंचन तनु वृषभानु दुलारी।।
—सूरसागर, पद २८०४
५. आधौ मुख नीलाम्बर सौं ढंकि, बिथुरी अलकैं सोहैं।
—सूरसागर पद, २८०६
६. आज अति राधा नारि वनी।
प्रति-प्रति अंक अनंग जीति, रस बस त्रैलोक्य धनी।।
—सूरसागर, पद २८०२

के आधार पर ही किया है।[1] नवलनागरी राधा की चपलता, वयसुलभ है। छोटी उम्र की लड़कियाँ जिस प्रकार चौंकती हुई, शरीर मटकाती चलती हैं[2] तथा वार-वार अपने कुचभार को अवलोकती रहती हैं, वैसा ही सब कुछ राधा का मनोवैज्ञानिक चित्र सूरदास ने अंकित किया है। राधा परकीया नायिका होने के कारण अपने हाथ से शृंगार सजाती है। माँग सँवारना, मुख में पान चबाकर वार-वार दर्पण देखना, अपनी ही छाया निरखकर मुस्कराना तथा वार-वार यौवन भार को देखना[3] आदि ऐसे कार्य-व्यापार हैं, जो प्रायः किशोरियों में ही देखने को मिलते हैं। राधा भोली नहीं है। वह बचपन से ही चपल और चालाक है। उसके रूपचित्रण में चतुर नागरी का चित्र ही अधिक उभरकर आता है। सूरदास-जी ने राधा के सौन्दर्य का जैसा चित्र खड़ा किया है, वह मेवाड़, किशनगढ़, बूंदी आदि शैलियों में विशेष रूप में द्रष्टव्य है। चित्रों में अंकित राधा के रूप-सौन्दर्य और वस्त्राभूषणों का अवलोकन करने से सूरदास के काव्यगत रूपचित्रों का अधिक संवेदना के साथ रसास्वादन किया जा सकता है।

श्यामा-श्याम का आलिंगनपाश में बँधना,[4] विपरीतरति हेतु वस्त्राभूषण बदलना[5], रतिरंग में जूझना,[6] गलबाँही डालकर कुंज में बैठकर प्रेमालाप करना[7], एक-दूसरे की प्रतीक्षा करना आदि अनेक चित्र 'सूरसागर' में भरे पड़े हैं, जिनके रेखांकनों का सजीव और साकार अध्ययन मेवाड़शैली के आधार पर कर सकते

---

१. सूरसागर, पद २८०३

२. बेंदी भाल, नैंन नित आंजति, निरखि रहति तनु गोरी।
चमकति चलैं, बदन मटकावै, ऐसी जोबन जोरी॥
—सूरसागर, पद २६६६

३. अपने कर जो मांग संवारै, रचि-रचि वेनी वानी।
मुख भरि पान मुकुर लैं देखति तासौं कहति अयानी।
लोचन आंजि सुधारति करजनि, छांह निरखि मुसुकानी।
वार-वार उरजति अवलोकनि, वातैं कौन सयानी।
सूरदास जैसी है राधा, तैसी मैं पहचानी॥
—सूरसागर, पद २६७भ

४. विहँसि राधा कृष्ण अंक लीनी।
अधर सौं अधर जुरि नैंन सों नैन मिलि हृदय सौं हृदय लगि हरस कीनि।
—सूरसागर, पद २५६६

५. सूरसागर, पद २७५५, २७५७, २७५९, २७६२ देखिए, चित्र संख्या ५

६. सूरसागर, पद २६०४, २६५०, २७४७, २७४९

७. मिलि बैठे संकेत लता तर, कियौ सबै जितनौ मन भायौ।
सूरदास सुन्दरी सयानी, उलटि अंक गिरधर कर नायौ॥
—सूरसागर, पद २६०२

हैं।[१] 'सूरसागर' में वालकृष्ण, गोपालकृष्ण तथा रसिकविहारी कृष्ण और उनसे सम्वन्धित अनेक चरित्रों, घर-आँगन, प्रकृति, पशु-पक्षी आदि का विस्तार से रेखांकन हुआ है। उसका एक-एक पद अनेक रेखाचित्रों से ओतप्रोत है, जिसका चित्रकला के आधार पर विस्तृत और गम्भीर तथा सजीव अध्ययन करने पर काव्य के अर्थबोध में नवीन आयाम खुलते हैं।

बिहारी-सतसई के रेखाचित्र

'बिहारी-सतसई' रेखाचित्रों का भण्डार है, किन्तु हमें केवल कृष्णचरित्र-सम्वन्धी दोहों के रेखांकनों का ही अध्ययन करना है। अतः कृष्णचरित्र-सम्वन्धी दोहों में भी जीवनलीलापरक और नायक-नायिकाभेदपरक दोहों में रेखांकन विशेष उल्लेखनीय हैं। एक सीधा रूपचित्र उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है :

सीस मुकट, कटि काछनी, कर-मुरली, उर-माल।
इहिं बानक मो मन सदा बसौ, बिहारीलाल॥[२]

प्रस्तुत दोहे में बिहारी ने चार सवल रेखाएँ अंकित कर गोपालकृष्ण के स्वरूप का चित्रण किया है। कवि प्रार्थना करता है कि इस वानक में अर्थात् सिर पर मोरमुकुट, कमर में काछनी, हाथ में मुरली और गले में वनमाला धारण किये कृष्ण मेरे मन में बसें। रेखाएँ अत्यधिक वस्तुपरक हैं जो बिहारी की गोपालकृष्ण के प्रति भक्तिभावना की परिचायक हैं।[३]

दोहे की लघु सीमा में न तो सूर के पदों की भाँति रेखाओं का विस्तार हो सकता है और न चित्रों की सांगोपांगता का, फिर भी बिहारी ने चित्तयोजना की दृष्टि से गागर में सागर भरने का प्रयत्न किया है। राधा की क्रिया-विदग्धता तथा उसकी छवि का यह चित्त पाँच रेखाओं द्वारा स्थिर चित्तनिर्माण का सुन्दर उदाहरण है :

कंज-नयनि मंजुनु किए, बैठी ब्यौरति बार।
कच-अंगुरी-विच दीठि दै, चितवति नन्दकुमार॥[४]

(क) कमलनयनि (२) सद्यःस्नाता नायिका राधा (३) गीली लटें सुलझा रही है तथा (४) बालों के बीच में अँगुली फंसाकर (५) नन्दकुमार को देख रही है। निश्चय ही उपर्युक्त दोहे के रेखांकन में कवि ने चित्तोपमता के साथ ही राधा के मांसल सद्यःस्नात रूपसौन्दर्य तथा कृष्ण के प्रति विशेष अनुराग का

१. देखिए, प्रस्तुत-ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्र संख्या ५
२. बिहारी-रत्नाकर, दोहा ३०१
३. देखिएं, वही, दोहा १२७
४. वही, दोहा, ७८

परिचय दे दिया है। मेवाड़शैली में सद्यःस्नाता राधा की क्रिया-विदग्धता का दोहे के अनुकूल चित्र बन पड़ा है।[1] "केवल अनुभावविधान से ही चित्र की श्रेष्ठता नहीं स्वीकार की जा सकती। चित्रों की उत्कृष्टता चित्र होने में नहीं है क्योंकि चित्र साधन है, साध्य नहीं। इसलिए चित्रों के माध्यम से अनेक अनुकूल-प्रतिकूल भावों को प्रभावपूर्ण ढंग से अंकित किया जा सकता है। कवि जितना ही सूक्ष्म और जटिल भावों को सन्तुलित कर सकेगा, चित्र उतना ही काव्योपम और श्रेष्ठ होगा। 'कंजनयनि' दोहे में एक विशेष मुद्रा में नायिका का नायक को देखना चित्र की अनेक भावनाओं—आशा-निराशा, राग-विराग, चिन्ता, उत्सुकता, उत्कण्ठा आदि को कुरेद देता है।"[2]

क्रियाविधायक एक और चित्र में पाँच लघुरेखाओं के द्वारा नायिका की चंचल भाव-भंगिमा एवं नायक कृष्ण के बेचारेपन का जो कवि ने अंकन किया है वह लक्षित रेखांकन की दृष्टि से बेजोड़ है :

बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंहं करै मोहनु हँसै, देन कहै नटि जाइ।।[3]

प्रथम पंक्ति चित्र की पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत की गयी है। 'बतरस लालच' से शब्द और रस का चित्र तो नहीं उभरता, पर उसका संकेत अवश्य मिल जाता है। मुरली का छिपाकर रखना, सौगन्ध खाना (निश्चय ही नायिका अपनी ही सौगन्ध खाती होगी—'मेरी सौगन्ध मेरे पास नहीं है'।) भौहों में हँसना, कृष्ण को निराश लौटता देखकर कहना —"अच्छा ले ज़ाओ" और फिर "मुस्कराकर इन्कार कर देना"—"सच मेरे पास तुम्हारी मुरली कहाँ है ?" आदि रेखांकन कला की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं और मन में भावोद्रेक करते हैं। दूसरी पंक्ति की विभिन्न भावमुद्रात्मक रेखाएँ पाठकों के सम्मुख एक सजीव नाटकीय दृश्य प्रस्तुत करती हैं, और इस प्रकार दोहे में आश्रय और आलम्बन की उपस्थिति में नायिका की प्रेमातिशयता उसकी प्रगल्भता में मुखरित हो उठती है। अस्तव्यस्तता का एक अत्यन्त मोहक चित्र उल्लेखनीय है :

कहा लड़ैते दृग करे, परे लाल बेहाल।
कहुँ मुरली, कहुँ पीत पटु, कहुँ मुकटु बनमाल।।[4]

इस दोहे में नायिका राधा के लड़ैते दृगों के जादू करने की क्षमता का,

---

१. सरस्वती-भण्डार, उदयपुर में बिहारी-सतसई के चित्रों में द्रष्टव्य, क्रमसंख्या ६४१
२. डॉ० बच्चनसिंह : बिहारी का नया मूल्यांकन, पृ० ७४
३. बिहारी-रत्नाकर, दोहा, ४७२
४. वही, दोहा १५४

जिनकी मार से लाल वेहाल हो गये हैं, कवि ने चित्रण किया है। वेहाली का दृश्य यह है कि कहीं उनकी मुरली पड़ी है, कहीं पीतपट पड़ा है और कहीं मोरमुकुट तथा वैजयन्तीमाला पड़ी है। 'लड़ैते दृग' कहने से ही राधा के सौन्दर्य को द्विगुणित प्रदीप्त करनेवाली उनकी विशाल कटीली, जादू-भरी किशनगढ़शैली-सी[1] आँखों का भान होता है। मेवाड़शैली में दोहे के भाव को सुन्दरता से चित्रित किया गया है।[2] कुंज के सहेट-स्थल पर कृष्ण वेहाल पड़े हैं। उनके वस्त्राभूषण यत्र-तत्र विखरे हड़े हैं। सखी राधा से गलवाँही डाले उनकी वेहालगी को जतलाती हुई निगोड़ी 'लड़ैती' आँखों पर दोषारोपण कर रही है। राधा संकुचित हो अफसोस करती हुई-सी खड़ी है। कुंज में निर्मित सहेट-स्थल का प्राकृतिक सौन्दर्य देखते ही बनता है। निश्चय ही कृष्ण की प्रेम व्याकुलता का कुछ रेखाओं द्वारा एक अतिशय भव्य चित्र अंकित हुआ है।

इस प्रकार के रेखाचित्रों से 'बिहारी-सतसई' भरी पड़ी है। यह तो खाँड की रोटी ही क्या, चित्रों की भी माला है। प्रत्येक दोहा एकाधिक चित्रों से सुसज्जित है। आधुनिक चित्रकार जॉर्जकीट[3] में कम-से-कम सशक्त रेखाओं में भाव, अनुभावों के अंकन की जैसी कुशलता है, वैसी ही समाहार शक्ति के लिए बिहारी भी प्रशस्त हैं। उनकी सतसई पर आधारित राजस्थानी चित्रों में एकाधिक भावों का समावेश द्रष्टव्य है।[4] विहारी के काव्यगत चित्रों में रेखाओं का सम्पुंजन अत्यधिक साफ, सशक्त, नपा-तुला तथा प्रभावोत्पादक है। दोहा-जैसे छोटे छन्द में केवल हावों, अनुभावों को एकत्र कर स्थूल चित्रयोजना ही बिहारी का साध्य नहीं रहा है, उन्होंने ऐसी चित्रयोजना को अधिकतर लाक्षणिक और व्यंजनात्मक वनाने का प्रयत्न किया है। ऐसी स्थिति में उनके चित्र केवल रेखाचित्र मात्र न रहकर विशेष भावों की अभिव्यक्ति के माध्यम बन गये हैं। 'विहारी-सतसई' के इन लक्षित चित्रों का अध्ययन राजस्थानी चित्रकला में चित्रित विभिन्न 'विहारी-सतसई' के लघुचित्रों के परिपार्श्व में अधिक विस्तार एवं गहराई से किया जा सकता है।[5] विहारी के रेखाचित्रों में रूपसौन्दर्य का सांगोपांग चित्रण दूर की अपेक्षा वहुत कम हुआ है। दोहे की सीमारेखा के कारण

---

१. देखिए, ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेण्टिग, फलक-४
२. ,, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्र संख्या १०
३. प्रसिद्ध सिंहली आधुनिक चित्रकार, देखिए अनेक रेखाचित्र, दी इलस्ट्रेटड वीकली, २८ मार्च १९६५, पृ० २१ तथा वही, २२ सितम्बर, १९६३, पृ० ६४-६८
४. देखिए, सरस्वती-भण्डार, उदयपुर, सचित्र विहारी-सतसई, क्रम सं० ९४१ तथा आर० डी० खन्ना के निजी संग्रहालय में बूंदी शैली के १६ चित्र
५. देखिए, परिशिष्ट-क, सचित्र विहारी-सतसई

उन्होंने अधिकतर लघु-लघु रेखाओं में नायिका की मनोरम चेष्टाओं को ही कलात्मक ढंग से अंकित किया है, इसलिए 'विहारी-सतसई' में अनुभावों के चित्रों की भरमार है। राजस्थानी चित्रकारों ने 'बिहारी-सतसई' को चित्रण का जो प्रमुख आधार बनाया है, उसका प्रमुख कारण यह भी है।

रसिकप्रिया के रेखाचित्र

केशव की 'रसिकप्रिया' नायक-नायिकाभेदपरक रसनिर्णय का प्रमुख ग्रन्थ है। इसमें कवि ने रसिकजनों को रसराज शृंगार का रसास्वादन कराने के लिए राधा-कृष्ण की रतिक्रीड़ाओं का सुन्दर चित्रांकन किया है, इसलिए ग्रन्थ में उनके संयोग-वियोग के अनेक भावपूर्ण चित्र रेखांकन की दृष्टि से सबल तथा नायक-नायिकाओं के रूपचित्रण में तथा उनकी चेष्टाओं एवं कार्यकलापों आदि में विशेष उल्लेखनीय हैं।

१. **रूपचित्रण**—केशव ने सूरदास की भाँति राधा-कृष्ण का रूपचित्रण रूपचित्रण के लिए नहीं किया, वरन् वह रसनिर्णय के अन्तर्गत अनायास ही हो गया है। कृष्ण के रूपांकन में उन्होंने परम्परा से चले आ रहे उपकरणों का प्रयोग किया है। उनके ललित हाव के उदाहरण में रेखांकन द्रष्टव्य है:

चपलापट, मोर किरीट लसै मधुवा-धनु सोम बढ़ावत है।
मृदु गाजत आवत बेंनु बजावत मित्र मयूर नचावत है।
उठि देखि भटू भरि लोचन चातक-चित्त की ताप बुझावत है।
घनस्याम घनाघन-वेष धरें जु बने बन तें ब्रज आवत है ॥२६॥[१]

उपर्युक्त सवैये में कवि ने छोटी-छोटी अनेक रेखाओं से वन से जाते हुए कृष्ण का पूर्ण चित्र अंकित कर दिया है। प्रथम पंक्ति में सबल रेखाएँ उनके वस्त्राभूषणों, पीतपट और मोरमुकुट का उपमाओं सहित अंकन करती हैं। दूसरी में वेणु बजाना और मयूर की भाँति गोपालों का नाचना तथा तीसरी में सखी का नायिका से लोचन-भर देखने के लिए कहना और अन्त में घनाघन-वेश धारण कर वन से आते हुए कृष्ण का रेखांकन केशव की चित्रोपमता का सुन्दर उदाहरण है। मन्द्रगत्यात्मक यह पूर्ण चित्त चित्रकला के आधार हेतु विशेष उपयोगी है।

दरबारी जीवन से प्रभावित कृष्ण के सामन्ती शृंगार को इस रूपचित्र[२] में

---

१. देखिए, विश्वनाथप्रसाद मिश्र : केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० ३४

२. पाग बनी अरु बागो बन्यो बटुवा पटुका कटि राजत नीको।
सौंधो बन्यो अति चारु, मनोहर हार बन्यो उर भावतो जी को।
बीरा बन्यो मुख खात मनोहर मोहिं सिंगार लग्यो सब फीको।
भाल मली विधि जो लो गुपाल कियो उँहि बाल बनाइ न टीको ॥१४॥
विश्वनाथप्रसाद : केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० ७८

पाग बाँधना, अंगरखा पहनना, पटुका (कमरबन्द) बाँधना, सुगन्ध लगाना, भाँति-भाँति के हार पहनना, पान खाना तथा राधा से तिलक लगवाये बिना शृंगार अधूरा रहना आदि रीतिकालीन परिवेश के परिचायक हैं। रीतिकालीन कवि अधिकतर दरबारी जीवन के सम्पर्क में रहे हैं। सामन्तों की वेशभूषा, उनका खानपान, रहन-सहन आदि ने कवियों एवं चित्रकारों को उपकरण जुटाने में विशेष सहायता दी है। बूंदीशैली[1] मेवाड़शैली[2], किशनगढ़शैली आदि में कृष्ण के उपर्युक्त स्वरूप का अंकन प्रमुख रूप से हुआ है। काव्य में आये ऐसे वस्त्रा-भूषणों का सही ज्ञान चित्रकला के माध्यम से ही सहजसुलभ हो सकता है, अतः केशव के ऐसे रेखाचित्रों का अध्ययन राजस्थानी चित्रकला के माध्यम से भली प्रकार किया जा सकता है।

कृष्ण की अपेक्षा राधा का रूपचित्रण केशव ने अत्यधिक मांसल एवं मनोहारी किया है। "पद्मनी नायिका[3] (राधा) के हँसने और बोलने में फूल-से झरते हैं। उस पर कवि नागकन्याएँ, देवकन्याएँ आदि को न्योछावर करता है। ब्रह्मा ने इस व्रज-लोचन की तारिका को एक ही रचा है। यह वृषभानु-लली चम्पक-पुष्प की कली-जैसी है।" अनेक रेखाओं द्वारा इस पद में कवि ने पद्मनी राधा के रूप को अंकित कर दिया है।

अनेक प्रचलित उपमाओं के द्वारा कवि ने राधा का जो रूपचित्रण किया है, उसका साक्षात आधार रही है सुन्दरी प्रवीणराय। उसके अंग-प्रत्यंगों की शोभा का शब्दांकन देखने योग्य है :

चंद को सो भाग भाल भृकुटी कमान ऐसी,
भैन के से पैन सर नैननि बिलासु है।
नासिका सरोज, गंधबाह से सुगंध बाह,
दार्‌यौं से दसन कैसो बीजरी सो हासु है।
भांई ऐसी ग्रीव-भुज पान सो उदर अरु,
पंकज से पाई गति हंस की सी जासु है।
देखी है गुपाल एक गोपिका में देवता सी।
सोने सो शरीर सब सोंधे को सो बासु है ॥२४॥[4]

---

१. देखिए, प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेण्टिग, फलक-७
२. „ मोतीचन्द्र : मेवाड़ पेण्टिग, फलक-८ तथा एन० सी० मेहता : दि गोल्डन फ्लूट, फलक-४
३. हँसत कहत बात फूल से झरत जात।
गूढ भरी हाव भाव कोक की-सी कारिका।
—विश्वनाथप्रसाद : केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० ८
४. विश्वनाथ प्रसाद : केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० १३

उपर्युक्त पद की सभी उपमाएँ काव्यप्रचलित हैं। एक-एक उपमा के द्वारा राधा के पूर्ण चित्र को अंकित किया गया है, जिसका रूपसौन्दर्य किशनगढ़[1] एवं बूंदी[2] शैलियों की नायिका के अनुरूप है। बिजली की-सी हँसी, पान-सा उदर, सुवासयुक्त सोने-सा शरीर. दाड़िम-से दाँत आदि उपमामूलक रेखाओं के द्वारा कवि ने राधा का मनोहारी व्यक्तिचित्र (पोर्ट्रेट) प्रस्तुत किया है।

अपने रूपसौन्दर्य को द्विगुणित मनोहारी बनाने के लिए राधा षोड्श-शृंगार सजाती है, जिसमें वर्णनात्मकता तथा वस्तुपरकता का उत्तम रेखांकन किया गया है। स्नान करना, वस्त्राभूषण धारण करना, केशपाश गूँथना, अंगराग लगाना, सुन्दर काजल लगाकर चंचल नेत्रों से देखना आदि राधा के सौन्दर्य का सोलह-शृंगारयुक्त रूप खड़ा करते हैं।[3]

राधा के शृंगारयुक्त रूप का केशव ने अनेक स्थानों पर अंकन किया है[4], जिसमें सामन्ती जीवन, वस्त्राभूषणों, शृंगारी उपकरणों आदि का सहज ज्ञान विना चित्रकला के आधार के नहीं हो सकता। बूंदी शैली एवं मेवाड़शैली के 'रसिकप्रिया'-सम्बन्धी चित्रों में उपर्युक्त उपकरणों का अवलोकन सहज ही किया जा सकता है। पाग, वागा, बटुवा, पटुका आदि तथा कुंकुम, कुमकुमा, दाड़िम, दाख, किंकिनी, नुपुर, पोंची, हार, अंगिया, लहँगा, ओढ़नी आदि का यथास्थान चित्रण राजस्थानी चित्रकला में बहुलता से अंकित हुआ है।[5]

तन्वेंगी गजगामिनी राधा का मन्द्रगत्यात्मक रूपचित्र इन्द्रियबोध से युक्त सवल एवं मनोहारी रेखांकनों की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है, जिसमें अजन्ता की नायिका[6] का रूपचित्र साक्षात साकार हो उठा है :

कचन के भार कुच-भारनि सकुच भार,
लचकि लचकि जात कटि-तट बाल के।
हरें हरें बोलत विलोकत हंसत हरें,
हरें हरें चलत हरत मन लाल के॥२५॥[7]

---

१. देखिए, ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेण्टिग, फलक-४
२. रसिकप्रिया-चित्रावली (बूंदी शैली के ४८ चित्र), राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली
३. विश्वनाथप्रसाद : केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० १४
४. वही, पृ० २२ (पद १४), ७६ (पद ३), ७८ (पद १३), ८४ (पद २०) आदि
५. देखिए, ललितकला-२-४, फलक २३ ले २६ तक तथा फलक-सी पृ० ६८-७१
६. देखिए, जी० याजदानी : अजन्ता पेण्टिग
७. विश्वनाथप्रसाद : केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० ३३

कितनी ही मन्द्रगत्यात्मक रोमांचकारी रेखाओं के द्वारा सामन्ती परिवेश में पली सम्भ्रान्त नायिका का जो रूप कवि ने अंकित किया है, वह कला की दृष्टि से उत्कृष्ट है। घुंघराले लम्बे बालों का (जिनका शायद नायिका राधा ने अजन्ताशैली में जूड़ा बाँध रखा है), कनक-कलशसदृश कुचों का तथा लज्जा का भार वहन करनेवाली राधा की पतली कमर का सुन्दर अंकन किया है। वह नज़ाकत से धीरे-धीरे बोलती-हँसती हुई तथा लाल का मन हरती हुई मन्दगति से चली जा रही है।[1] केशव की नायिकाओं के रूपसौन्दर्य एवं उनकी क्रिया-विदग्धता में जो शालीनता तथा अदब-कायदा और कोमलता है, वह दरबारी प्रभाव के कारण ही बन पड़ा है। 'रसिकप्रिया' के बूंदी शैली के चित्रों में राधा का ऐसा ही रूप विशेषतः अंकित हुआ है।

'रसिकप्रिया' में स्थिररेखाचित्र भी हैं, जिनके द्वारा राधा-कृष्ण के रूपसौन्दर्य का एक साथ ही अंकन हुआ है।[2] कृष्ण और राधा मानसरोवर के तट पर हाथ-में-हाथ लिये खड़े हैं :

हरि राधिका मानसरोवर के तट ठाढ़े री हाथ सों हाथ दिये।
पिय के सिर पाग प्रिया मुक्ताहल छाजत भाल दुहुँन हिये।
कटि 'केसव' काछनी सेत कछें सब ही तन चन्दन चित्त किये।
निकसे छिति छीर समुद्र ही तें संग श्रीपति मानहुँ श्रीहिं लिये ।।३६।।

फोटोग्राफी का केशव के समय में प्रचलन नहीं था, किन्तु उपर्युक्त पद में कुछेक सरल, सपाट रेखाओं में केशव ने मानसरोवर की पृष्ठभूमि में राधा-कृष्ण का फोटो-जैसा खींच दिया है। हाथ-में-हाथ लेकर राधा-कृष्ण का खडे होना फोटोग्राफी की याद दिलाता है, किन्तु श्वेत वस्त्राभूषणों में यह फोटो-प्रति फीकी-सी ही प्रतीत होती है। बूंदी शैली के चित्रकार ने अपनी ओर से चित्र को प्रभावशाली बनाने के लिए प्रकृति के सतरंगे वातावरण एवं राधा-कृष्ण के वस्त्राभूषणों के चुनाव में अनेक रंगों का प्रयोग किया है।[3]

केशव ने अष्टनायिकाओं के अंकन में सबल एवं सुस्पष्ट रेखाओं का प्रयोग किया है। उनकी नायिकाएँ न सूर की नायिकाओं की भाँति व्रज की अल्हड़ ग्रामीणाएँ हैं और न ही मतिराम की नायिकाओं की भाँति गँवारिन ग्राम-

---

१. देखिए, रसिकप्रिया चित्रावली (बूंदी शैली के ४८ चित्र), राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली
२. देखिए, विश्वनाथप्रसाद : केशव ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० ३० (पद २६), ३४ (पद २८), ३५ (पद ३२) आदि
३. देखिए, रसिकप्रिया-सम्बन्धी चित्र माधुरीदेसाई बम्बई के निजी संग्रह में

वालाएँ।[1] वे राजसी ठाठ-वाट में पली एवं सामन्ती परिवेश की ज्ञाता हैं, अतः उनके चित्रण में कवि ने वैभव-विलास के रेखांकन का भी अधिक ध्यान रखा है।[2] उनका शारीरिक रूप-यौवन, वस्त्राभूषण एवं अन्य शृंगार सम्वन्धी उपकरण भी राजसी ठाठ-वाट के अनुसार ही हैं। प्रकृति का चित्रण भी, जो वस्तुरूप में हुआ है, व्रज का स्वच्छन्द वातावरण न होकर कटा-छँटा उपवन, कुंज और महलों के सुसज्जित कमरे ही हैं।[3] वातावरण के प्रस्तुतीकरण में केशव ने प्रमुखतया तीन पृष्ठभूमियाँ अपनायी हैं : पहली, प्रासादों का विलासपूर्ण वातावरण, दूसरी, गलियों और वीथियों के दृश्य, और तीसरी, उपवन और कुंजों की झाँकियाँ। तीनों ही पृष्ठभूमियाँ नागर, सुसभ्य और राजसी जीवन से सम्वन्धित हैं। केशव के काव्य के वातावरण, पृष्ठभूमि तथा विभिन्न राजसी उपकरणों का सही अध्ययन करने का माध्यम राजस्थानी चित्रकला ही है। वूंदी शैली के भव्य भवन, झरोखे, छतरियाँ, वारहदरियाँ तथा मणिकुट्टिम, मीनाकारी, रंगविरंगी पच्चीकारी एवं जालियों, चिकों आदि से सुसज्जित कमरों का राजसी वैभव केशव के काव्य के अनुकूल ही है।[4] केशव की 'रसिकप्रिया' के आधार पर वने इन चित्रों में उनकी 'रसिकप्रिया' के वैभव का रेखांकन अत्यधिक मनोहारी वन पड़ा है।

चेष्टाएँ तथा कार्यव्यापारांकन

'रसिकप्रिया' में प्रमुख लक्ष्य प्रिय-प्रिया की लीलाओं का अंकन करना रहा है, इसलिए उसमें चेष्टाएँ एवं कार्य-व्यापारों का चित्रण बहुलता से हुआ है। भावपक्ष के अन्तर्गत अनुभावजन्य कार्यकलापों का विस्तार से विवेचन करेंगे, किन्तु रेखांकन की दृष्टि से कुछ उदाहरण प्रस्तुत करना अनुचित न होगा।

मुग्धा नायिका मान करती नहीं, यदि करती भी है तो उसका मान शीघ्र ही समाप्त हो जाता है—इस भाव पर सुस्पष्ट रेखाओं में कवि ने सुन्दर रेखा-चित्र प्रस्तुत किया है :

---

१. नागरि नैन-कमान-सर, करत न ऐसी पीर।
जैसे करत गंवारि के, दृग धनुहीं के तीर॥
सं० कृष्ण बिहारी मिश्र : मतिराम-ग्रन्थावली, पृ० ४३१

२. देखिए, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र : केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, प्रकाश वासगसज्जा, पृ० ४१ तथा प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्र संख्या ८

३. वही, वासगसज्जा, पृ० ४० तथा डब्लू० जी० आर्चर : इण्डियन मिनिएचर, फलक-४३ (सन १६८० का बूंदी शैली में पद पर आधारित प्रकृति-परिवेश का सुहावना और कलात्मक चित्र) देखें प्रस्तुत ग्रन्थ, चित्र संख्या ८

४. देखिए, लालतकला ३-४, फलक २३ से २६, प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेण्टिग, फलक-५, ७ तथा एन० सी० मेहता : दि गोल्डन, फ्लूट फलक-५

बोलै न बाल बुलावत हूँ नख-रेख लिखे भुव प्रेम परेखौ।
आपनो हाथ विलोकि विलोकि कही तब 'केशव' बुद्धि बिसेखौ।
छोटी बड़ी विधि-रेखा लिखी जुग आयु कि रेख सु कौन जुलेखौ।
प्रेमतें बोल सह्यो न परयो अकुलाई कह्यो पिय कैसी है देखौ ॥३१॥

बुलाने पर भी बाला का मौन रहना, नख से पृथ्वी कुरेदना, नायक का अपनी ही हस्तरेखा देखना और मुग्धा नायिका का मान छोड़ अकुलाकर प्रिय कृष्ण से बात करने लगना आदि सुन्दर रेखांकन हैं, जो नायक और नायिका की कार्य-विदग्धता तथा केशव की चित्रोपमता के द्योतक हैं। खड़ी-खड़ी पद-नख से धरती कुरेदना तथा अकुलाकर प्रियतम से अल्हड़ता के साथ पूछना कि 'प्रियतम, देखो यह कैसी है'—का चित्रण मुग्धा नायिका के स्वरूप को साकार कर देता है।[1] मेवाड़शैली में बने चित्र को देखकर सवैये के भाव को आसानी तथा स्पष्टता से समझा जा सकता है।[2]

प्रौढा नायिका की क्रिया-विदग्धता का निम्नांकित रेखाचित्र विभिन्न रेखाओं की स्पष्टता के लिए उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है:

आवत देखि लिये उठि आगे ह्वै आपुहीं केसव आसन दीनों।
आपुहीं पाई पखारि भलें जल, पानी को भाजन लाइ नवीनों।
वीरी बनाई के आगे धरी, जब वैहर को कर बीजना लीनों।
बाँह गही हरि ऐसे कह्यो हँसि, मैं तो इतो अपराध न कीनों ॥६०॥[3]

छः रेखांकनों में केशव ने प्रौढा-सादरा-धीरा नायिका की क्रिया-विदग्धता का सुन्दर चित्रांकन किया है। अगवानी करना, आसन देना, पैर पखारना, पान का बीड़ा बनाकर आगे रखना, व्यजन से हवा करना तथा कृष्ण का हँसकर नायिका की बाँह पकड़ना आदि रेखांकन बहुत स्पष्ट हैं, जो नायिका और नायक की क्रियाओं का लक्षित चित्र प्रस्तुत करते हैं।

राधा की रत्यात्मक चेष्टाओं का सुन्दर उदाहरण कितनी ही आड़ी-तिरछी रेखाओं से भरा पड़ा है।[4] 'चितवति मुँह मोरि मोरि', 'जंभाति कहा बार-बार', 'ऐंड़ सो ऐंड़ाति', 'अंचल उड़ात उर,' 'फूलि-फूलि भेंटति रहति उर झूलि-झूलि,' 'भूलिभूलि कहति कछुतें आज खायों है' आदि रेखांकन गति तथा चेष्टाओं के परिचायक हैं। इन रेखाओं के द्वारा नायिका की अल्हड़ मदमस्ती का पूर्ण चित्र उभरकर आता है। ऐसी रत्यात्मक क्रियाओं के लिए चित्रकार को एक ही

१. देखिए, विश्वनाथप्रसाद : केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० १२
२. ,, सरस्वती-भण्डार, उदयपुर, रसिकप्रिया चित्रमाला सं० ९४६
३. ,, विश्वनाथप्रसाद : केशव-ग्रन्थावली, भाग-१, पृ० १७
४. ,, वही, भाग-१ (पद ९), पृ० २४

चित्र में अनेक (जितनी सुविधा से वन पड़े) क्रियाओं के अलग-अलग चित्र बनाने पड़ते हैं।

अतिभय के मिलन में केशव ने राधा से मिलने की युक्ति का विचित्र अंकन किया है।[1] वृषभानु के पास के मकान में आग लगी है। सभी ब्रजवासी भाग-दौड़ कर रहे हैं। कोई सामान निकाल रहा है, कोई आग बुझा रहा है, गाय बछड़े इधर-उधर दौड़ रहे हैं, पर ऐसे में कुँवर कान्ह राधा को जगाकर उसके विशाल लोचन, कपोल आदि चूमकर चम्पा की-सी माला के समान उसे आलिंगनपाश में कस लेते हैं।[2] इसमें लोचन, चिवुक और कपोल चूमना तथा चम्पे की-सी माला के समान दृश्य से लगा लेना तीव्रगत्यात्मक या आवेगात्मक रेखांकन कला की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं।

'रसिकप्रिया' क्रियाकलापों, चेष्टाओं या अनुभावों के अंकन का प्रमुख ग्रन्थ है। केशव के रेखाचित्रों का अध्ययन इन कवित्त-सवैयों में अनायास ही किया जा सकता है।[3] अनुभावों के चित्र अधिक स्पष्टता से वन सकते हैं, अत: 'रसिक-प्रिया' के इन पदों को आधार बनाकर राजस्थानी चित्रकला में अनेक लघुचित्र वने हैं[4], जिनके आधार पर काव्य का अध्ययन अधिक सुस्पष्ट हो सकता है।

उपर्युक्त अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो गयी है कि हिन्दी कृष्णकाव्य रेखा-चित्रों का भण्डार है। उपलब्ध राजस्थानी सचित्र ग्रन्थों या लघुचित्रों के परिपार्श्व में उन काव्यस्थलों के शब्दचित्रों का तो विस्तार से अध्ययन हो ही सकता है, साथ ही उसी प्रकार के अन्य कृष्णकाव्य की लक्षित चित्रयोजना का मूल्यांकन भी सही-सही किया जा सकता है।

वर्णचित्र

चित्रकला के क्षेत्र में रंगों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रंग के द्वारा ही विभिन्न प्रकार की रेखाएँ, रूप, आकार आदि का निर्माण होता है। भाषा में जो स्थान अक्षर और स्वर का है, वही चित्रकला में रंग का है। विभिन्न रंगों के संयोजन और सुव्यवस्थित प्रयोग से चित्रकला की भाषा तैयार होती है। काव्य और चित्रकला में रेखांकन प्रमुखतया रूपचित्रण और वस्तुचित्रण कर वाह्य ढाँचा

---

१. देखिए, विश्वनाथप्रसाद : केशव-ग्रन्थावली, भाग-१, पृ० २९ (पद ३१)
२. लोचन विसाल चारू चिबुक कपोल चूमि।
चम्पे की सी माल लाल सीनी उर लाइ के॥
३. देखिए, विश्वनाथप्रसाद : केशव-ग्रन्थावली, भाग-१, पृ० ३० (पद ३४), पृ० ३३ (पद २३), पृ० ३४ (पद २८), पृ० ३८ (पद ५०), पृ० ७७ (पद ७), पृ० ८७ (पद ३५), पृ० ८९ (पद ३९)
४. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-क

खड़ा करता है तथा रंग उसमें प्राणप्रतिष्ठा कर सुसज्जित करने में सहयोग देता है। काव्य में ऐन्द्रियता (सैंन्सुवसनैस) का तीव्र अनुभव रंगयोजना के द्वारा ही होता है, "क्योंकि रंगीन उपकरणों से कवि और परिष्कृत रुचिसम्पन्न पाठक एक प्रकार के रोमांच का अनुभव करते हैं।"[१] इसलिए काव्य में भी रंगयोजना कम महत्त्वपूर्ण नहीं होती। रंगों का दृश्यमान स्वरूप प्रकृति की मनोरम और बहुमूल्य भेंट है। कलाकार प्रकृति के उस विराट सतरंगे दृश्य से प्रत्येक समय प्रभावित होता रहा है। उसकी दृश्यचेतना रंगों के प्रभाव को सीधा ग्रहण करती है और अभिव्यक्ति के समय अन्तर्मन में उपलब्ध रंग-संवेदनात्मक चेतना अंशत: अथवा समग्र विम्वरूपों में छिटक पड़ती है।[२] काव्य में रंगयोजना केवल रंगों का नामोल्लेख नहीं है, वल्कि इसके द्वारा अभीप्सित भावों की अभिव्यक्ति करना तथा उन्हें पाठक तक प्रेषणीय बनाना है। भावों को समृद्ध करने तथा काव्य में व्यंजकता लाने के लिए कवि रंगों का प्रयोग करता है। पूर्ववर्ती आचार्यों ने तो स्वभाव और मन:स्थितियों के निश्चित रंग माने हैं।[३] यहाँ तक कि गन्ध और ध्वनि, विभिन्न भावों तथा अक्षरों तक के अलग-अलग रंग माने हैं। कलाओं में रंगयोजना के महत्त्व को स्वीकारने के उपरान्त हिन्दी कृष्णकाव्य के सौन्दर्यवोध को सूक्ष्मता एवं तीव्रता से समझने के लिए उसके वर्णचित्रों का वैज्ञानिक अध्ययन होना चाहिए। यह कार्य राजस्थानी चित्रकला के परिपार्श्व में अत्यधिक सुविधा से किया जा सकता है।

भरत के नाट्यशास्त्र में स्वाभाविक चार रंग माने गये हैं।[४] श्वेत, नीला, पीला और लाल। इनके मिश्रण से ही अनेकों रंग वनते हैं, जिनकी निर्माणविधि की भी चर्चा की गयी है। विष्णुधर्मोत्तर के 'चित्रसूत्रम्' अध्याय में प्रमुख पाँच रंगों की चर्चा है[५]—श्वेत, पीत, पीलापन लिये श्वेत, काला और नीला। वैज्ञानिक दृष्टि से आधुनिक कलाकार प्रमुख तीन रंग मानते हैं—लाल, पीला और नीला।[६]

---

१. डॉ० श्याम परमार : हिन्दी काव्य में रंगतत्त्व, आलोचना २८, पृ० ५१
२. वही, पृ० ४५
३. वही, पृ० ४५
४. सितो नीलश्च पीतश्च चतुर्थो रक्त एव च।
एते स्वभावजा वर्णो........................।
संयोगजा पुनस्त्वन्ये उपवर्णो भवन्ति हि ॥
—भरत-नाट्यशास्त्र, अध्याय २१
५. मूलरंगा: स्मृता: पंच श्वेत: पीतो विलोमत:।
कृष्णो नीलश्च राजेन्द्र शतशोऽन्तरत: स्मृता:।
—विष्णुधर्मोत्तर-चित्रसूत्रम् ४०।१६
६. देखिए, रामचन्द्र शुक्ल : चित्रकला का रसास्वादन, पृ० ८४

इन्हीं तीन मुख्य रंगों के चित्रण से अन्य रंग भी तैयार हो जाते हैं, जैसे लाल और पीले से नारंगी, लाल और नीले से बैंगनी तथा पीले और नीले से हरा रंग बन जाता है। काले और सफेद को वैज्ञानिक रंग नहीं मानते हैं। चित्र-विशेषज्ञों के अनुसार जब सभी रंग मिले रहते हैं तो श्वेत और प्रकाश के अभाव में काला रंग होता है। पर श्वेत और काले रंग, चित्रकला तथा काव्य में रंग के रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं।

प्रभावानुसार हम रंगों को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—उष्ण और शीत। सौररंग-सिद्धान्त के अनुसार सूर्य की किरणें जब कोणाकार शीशे में छन-कर निकलती हैं, तब क्रमशः लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला और बैंगनी रंग बनाती हैं। प्रथम तीन रंग सूर्य की गर्मी को अधिक छिटकानेवाले होने के कारण अत्यधिक चमकीले और 'उष्ण' होते हैं तथा शेष तीन रंग 'शीत' अर्थात् कम चमकीले और ठण्डक पहुँचानेवाले होते हैं। मनुष्य के मनोविकारों का अध्ययन उनकी रंग-प्रवृत्ति के आधार पर किया जा सकता है। राजस्थानी चित्रकारों ने उपर्युक्त रंगसंयोजन के सिद्धान्त का विशेष ध्यान रखा हो, ऐसा तो नहीं लगता। अपनी रुचि और फबते हुए रंगों का ही उन्होंने विशेष ध्यान रखा है। इस प्रकार काव्यगत भावनाओं की अभिव्यक्ति में भी रंगों के चुनाव का विशेष अध्ययन किया जा सकता है।

चित्रकला की ही भाँति काव्य में भी कवि रंगयोजना द्वारा काव्यचित्रों में रंग भरकर उन्हें अधिक संवेदनशील बनाता है। अस्तु, दो या दो से अधिक रंगों के संयोजन (काम्बिनेशन) से जिस प्रकार चित्र प्रभावोत्पादक बन जाते हैं, उसी प्रकार काव्य में भी रंगों का उचित संयोजन कवि की विशाल अनुभूति का परिचायक होता है तथा काव्य को संवेदनशील बनाता है। यह वर्णसंयोजन दो प्रकार का होता है।

१. **अनुरूप वर्णसंयोजन (कॉम्बिनेशन ऑफ मैचिंग कलर्स)** : मिलते हुए रंगों का प्रयोग जो सहज सौन्दर्य को प्रस्फुटित कर दे, उसे अनुरूप वर्णसंयोजन कहते हैं। इसके लिए सौररंग-सिद्धान्त के अनुसार क्रमशः लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला, बैंगनी आदि रंगों के क्रमिक प्रयोग को ध्यान में रखना होता है। जितना ही क्रमिक संयोजन होगा, उतना ही चित्र में वर्णों की अनुरूपता होगी।

२. **विरोधी वर्णसंयोजन (कॉम्बिनेशन ऑफ कण्ट्रास्ट कलर्स)** : कलाकार अपनी कला में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए तथा अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए जहाँ विरोधी रंगों का क्रम रखता है, वहाँ उसे विरोधी वर्णसंयोजन कहते हैं।

विवेच्य हिन्दी कृष्णकाव्य में दोनों ही प्रकार के वर्णसंयोजन द्रष्टव्य हैं। सहज सौन्दर्य को उद्घाटित करने के लिए प्रकृति के अनुरूपतानुसार अनुरूप

वर्णसंयोजन कृष्णकाव्य तथा राजस्थानी चित्रकला में विशेष रूप से देखने को मिलता है। मध्यकालीन चित्रकला में वर्णों का विरोध कम ही दिखायी देता है। रंगों की समन्विति और अनुरूपता पर कलाकारों ने विशेष ध्यान दिया है, फिर भी विरोधी वर्णसंयोजन कृष्णकाव्य और राजस्थानी चित्रकला में कई जगह दीख ही जाता है। राजस्थानी चित्रकला के परिपार्श्व में विवेच्य हिन्दी कृष्णकाव्य के वर्णचित्रों का विस्तार से विवेचन करेंगे।

स्थूलतः काव्य में रंगों की चार क्रमागत स्थितियाँ लक्षित होती हैं: १. सूचक, २. संयोजक, ३. विशुद्ध और ४. संवेदक। इनमें से प्रथम तीन अवस्थाएँ चित्रकला में प्रयुक्त रंगयोजना की 'हैराल्डिक', 'हारमोनिक' और 'प्योर' अवस्थाएँ हैं, और चौथी वहुत कुछ काव्य की निजी वस्तु है।[१] सूचक अवस्था का सम्वन्ध प्राचीनतम रंगों से है। लोककलात्मक रंग प्रागैतिहासिक काल की गुहाओं से निकलकर साहित्य में आदिकाल, मध्यकाल तक विशेषतः संकेन्द्रित रहे हैं। संयोजक अवस्था में परम्परा टूटने लगी और रंगों का सम्बन्ध 'टोन' से आवद्ध होकर 'हारमनी' की ओर अग्रसर हुआ। "प्रकाश और छाया के सन्दर्भ में रंगों के क्रम और शैड्स को प्रमाणवद्ध करनेवाली दृष्टि इस अवस्था में विकसित हुई।"[२] विशुद्ध रंगनियोजन में छाया-प्रकाश की पद्धति न रहकर विम्वों के रंग सीधे-सीधे प्रयुक्त किये जाते हैं। रंगों के माध्यम से इनमें 'फॉर्म' की नियोजना की जाती है।[३] संवेदक रंगयोजना काव्य की निजी वस्तु है। सूक्ष्म भावधारा से आत्मपरक संवेदना द्वारा ऐसे वर्णचित्रों का बिम्ब प्रस्तुत होता है। "इसके अन्तर्गत शब्दों में निहित व्यक्तिपरक संवेदनाप्रस्तुत बिम्व, खण्डचित्र, अवचेतन मन की आँखों से देखी गयी विघटित समग्रता एवं रंगप्रधान 'इमेज' आदि आते हैं।"[४]

विवेच्य हिन्दी कृष्णकाव्य में सूचक और संयोजक अवस्थाएँ ही विशेष उपलब्ध होती हैं। भक्तिकालीन कविता में लोकतत्त्वों की प्रधानता के कारण सूचक अवस्था का महत्त्वपूर्ण प्रभाव है। चित्रों में अनेक घटनाएँ और एक साथ कई दृश्य दिखाने की पद्धति वर्णनात्मक काव्य से मिलती-जुलती है। रीतिकाल में मुगलों के प्रभाव से सामन्ती चमक-दमक, शृंगार के प्रसाधनों, सुनहरी साज-सज्जाओं, मणिकुट्टिम की पच्चीकारी, वेशभूषा और अलंकरणों की चमक-दमक के कारण काव्य और तत्कालीन चित्रकला में भी परिवर्तन आना अनिवार्य

---

१. देखिए, डॉ० श्याम परमार: हिन्दी काव्य में रंगतत्त्व, आलोचना-२८, पृ० ४५-४६
२. वही, पृ० ४८
३. वही, पृ० ५३
४. वही, पृ० ४६

था। इसलिए काव्य के वर्णचित्र भी 'सूचक' अवस्था को त्यागकर 'संयोजकत्व' की ओर बढ़े। इसी कारण मध्यकालीन हिन्दी कृष्णकाव्य और तत्सम्बन्धी राजस्थानी चित्रकला में रंगयोजना की समानता के कारण अध्ययन के विस्तृत आयाम खुलते हैं। इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य का विस्तृत और मनोवैज्ञानिक अध्ययन बहुत अपेक्षित है।

सूरसागर के वर्णचित्र

सूरदास हिन्दी के सर्वाधिक रंगीले कवि हैं। रंगयोजना की दृष्टि से मध्यकाल में सूर का विशेष स्थान है। उनमें काँगड़ा-कलम के रंगों का संगीत, राजस्थानी शैली की लोकात्मकता और मुगल-कलम के सुनहरे एवं विशुद्ध नीलाकाश, सर्पीले मेघ, मणि-माणिक्य की भाँति बारीकी से बनाये गये पेड़, फूलपत्तियों कीमि ली-जुली सौन्दर्यदृष्टि प्राप्त होती है। रंगयोजना की दृष्टि से अन्य कवि सूर के सामने रंगान्ध लगते हैं। रंगों का इतना विस्तृत ज्ञान तथा उनका काव्य में उचित प्रयोग सूर को जन्मान्ध न मानने के लिए ही बाध्य करता है। जन्मान्ध कवि इतना सतरंगा चित्रण कर ही नहीं सकता। रंगतत्त्व के कारण सूर का काव्य अत्यधिक ऐन्द्रिय एवं मनमोहक हो गया है, इसलिए सूर के काव्य की सरलता एवं मोहकता का एक कारण उनकी सतरंगी रंगयोजना भी है।

सूरदास ब्रज के स्वच्छन्द ग्रामीण वातावरण के कवि हैं, अतः उनकी रंगयोजना लोककलात्मक प्रभाव से परिपूर्ण है। लोककला में प्रयुक्त रंगों के प्रभाव के कारण लाल, पीले, नीले, हरे, काले और श्वेत रंगों के प्रति सूर की ललक विशेष है। उन्होंने अपने काव्य में प्रयुक्त रंगों का चुनाव अनेक उपकरणों से किया है, जिनमें प्रकृति, शारीरिक अंग-प्रत्यंग, वस्त्राभूषण तथा अन्य घरेलू उपकरण विशेष उल्लेखनीय हैं।

१. प्रकृति : प्रकृति में रंग-ही-रंग हैं, रेखाएँ नहीं। सूरदास ने अपने काव्य का विस्तार घर-आँगन से लेकर प्रकृति के स्वच्छन्द रंगीन वातावरण तक रखा है। इसलिए प्रकृति के उपकरणों में जिन रंगों की प्रधानता है, उनका उपयोग उन्होंने लक्षित चित्रयोजना तथा उपलक्षित चित्रयोजना के अन्तर्गत खुलकर किया है।

२. अंग-प्रत्यंग : कृष्ण, राधा तथा अन्य गोप-गोपियों के अंग-प्रत्यंगों का सौन्दर्य-अंकन कवि ने रंगयोजना के द्वारा भी किया है। शरीर की श्यामलता और गौरता की शोभा का चित्रण प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से प्रकृति के उपमानों द्वारा स्थान-स्थान पर किया गया है।

३. वस्त्राभूषण : राधा-कृष्ण के वस्त्राभूषणों के वर्णन में सूर की रंगयोजना अधिक उभरकर सामने आयी है। रंग-बिरंगे वस्त्र तथा सुनहरे आभूषण और

मणि-माणिक्य की वर्ण-विविधता का सूर के काव्य में वाहुल्य है।

४. अन्य उपकरण : घरेलू वातावरण में प्रयुक्त होनेवाली बहुत-सी वस्तुओं का सूर के काव्य में प्रयोग हुआ है, जो उनके रंगतत्त्व को सजीव बनाती हैं।[1]

सूर के काव्य में उपर्युक्त उपकरणों से जिन वस्तुओं के द्वारा रंगयोजना उभरी है, उनकी नामावलि रंगों की दृष्टि से इस प्रकार है :

१. लाल : सरस्वती, बिम्बफल, टेसूकुसुम, सुरंगसारी, लाल चोली, लाल सारी, लाल लहँगा, राती चूनर, लाल काछनी, लाल चौतनी, गुलाल, जावक, पीक कुंकम, बीरा, तमोर, रोरी, अरुण अधर, अरुण चरण, रतनारे नैन आदि।

२. पीला : दामिनी, दीपशिखा, चन्द्रद्युति, कनकलता, चम्पकली, केशर अंग, गौरगात, कंचनतनु, पीतपट, पीताम्बर, पीतवसन, पीत-पिछोरी, पीतचूनरी, केसर हरद, स्वर्ण-आभूषण, कंचन, कनक-लकुट, पीरी अंगिया, मियरी-पिछोरी, पीत-झंगुलिया, बिज्जुलता, कनक-कटोरा आदि।

३. नीला : नीलाम्बर, नीलजलद, नीलकमल, नीललहँगा, नीलनिचौल, नीलकंचुकी, नीलम, मरकतमणि, यमुना आदि।

४. श्वेत : वकपंक्ति, दाड़िम, श्वेत वादर, गंगा, हंस, धवल घन, रजत स्फटिक, दूध-दतुलिया, चोवा, चन्दन, चन्दन की खोरी, सितसारी, सेत चूनरी, सेत उपरैना, दसनावलि, धौरी गाय।

५. काला : घनघटा, यमुना, धूमरी गाय, भँवर अहि, तमाल, काजर, साँवरी, स्याम, कंचुकी-कारी, स्याम-सरोज, मृगमन्द आदि।

६. हरा : हरियरि भूमि, कुंजधर, कीर, सुवा, हरी-हरी भूमि आदि।

अनुरूप वर्णयोजना

सूरदास के पदों में अनुरूप वर्णसंयोजन की बहुलता मिलती है। रंगों की विविधता तथा अनोखी छटा में कवि ने रंगों की अनुरूपता (मैचिंग कलर्स) की ओर भी विशेष ध्यान दिया है। कृष्ण के रूपांकन के लिए कवि ने अनेक उपमाएँ प्रस्तुत की हैं जिनमें अनुरूप रंगयोजना उल्लेखनीय है :

नील-जलद-अभिराम स्यामतन, निरखि जननि दोउ निकट बुलाए।[2]

× × ×

सुन्दर स्याम-सरोज-नील-तन, अंग-अंग सुभग सकल सुखदनियाँ।[3]

नीले वादल तथा नीलकमल से कृष्ण के रूप की उपमा देकर कवि ने साधर्म्य

---

१. देखिए, डॉ० प्रेमनारायण टण्डन : सूर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन
२. सूरसागर, पद ७२२
३. वही, पद ७२४

प्रस्तुत किया है। रंगयोजना की उपर्युक्त 'सिमत्री' का चित्रण कवि ने सैकड़ों वार किया है। इसी प्रकार पीत झँगुले की शोभा में भी अनुरूपता का अंकन किया है।[1]

कृष्ण के अंग-प्रत्यंगों तथा वस्त्राभूषणों का सूरदास ने विस्तृत वर्णन किया है, जिसमें विरोधी एवं अनुरूप वर्णसंयोजन अर्थात् दोनों का ही अंकन स्थान-स्थान पर द्रष्टव्य है। कमर में पीतपट, कंचन की मेखला, कमल-से चरण, चन्द्र-से नख[2] तथा चन्दनचर्चित अंग, वकपंक्ति-सी सुशोभित मुक्तावली[3] आदि कृष्ण के सौन्दर्य को क्रमशः पीत और श्वेत रंग की अनुरूप आभा से सुशोभित करते हैं।

कृष्ण साँवरे थे, किन्तु उनकी गौर-आभा देखने के लिए भक्त कवि सूर ने जो अनुरूप-रंगयोजना का निर्माण किया है, वह उनके सूक्ष्म रंगतत्त्वज्ञता की परिचायक है। व्रजवनिताएँ कृष्ण के रूपसौन्दर्य का पान कर रही हैं। "कृष्ण का नीलवर्ण शरीर चन्दन से चर्चित है, जिस पर पीताम्बर और वनमाला इस प्रकार सुशोभित हैं मानो दामिनी से आश्लिष्ट मेघ सुशोभित हों। मुक्ताओं की अनेक मालाएँ वकपंक्ति-सी प्रतीत हो रही हैं। व्रज-युवतियाँ अनुरूप वर्णों में कृष्ण के रूप को देखकर हर्षित हो रही हैं।"[4] पीले और श्वेत भी सूरदास के प्रिय रंग हैं तथा दोनों ही, हल्के रंग होने के कारण, अनुरूप वर्णों (मैंचिंग कलर्स) का स्थिरचित्र अंकित किया है।

कृष्ण परकीया नायिका से सम्भोग कर लौटे हैं, खण्डिता राधा उनके उस अनुरूप वेश को देखकर कहती है कि "तुम्हारे पीताम्बर का क्या हुआ ? क्या नीलाम्बर ओढ़कर आये हो ? नीलरंग का ही तुम्हारा अंग और नीला ही वसन !

---

१. पीत झंगुलिया की छवि छाजति, बिज्जुलता सोहिति मनु कंदहिं ॥
—सूरसागर, पद ७२५

२. कटि पट पीत, मेखला कंचन, मुमग जघ, जुग जानु।
चरण कमल नख चंद नहीं सम, ऐसे सूर सुजानु ॥
—सूरसागर

३. मुक्तावली मनहुँ बगपंगति, सुभग अंग चरचित छवि अंग।
—सूरसागर, पद २३६८

४. व्रज-वनिता देखति नंद नंदन।
नव धन नील वरन, ताऊपर खोरिकियौ तनु चंदन ॥
कनक वरन तन पील पिछौरी, उर भ्राजति बनमाल।
निर्मल गगन स्वेत बादर पर, मनौदामिनी-जाल ॥
मुक्तामाल विपुल बग पंगति, उड़त एक भई जोति।
सूर स्याम छवि निरखति जुवती, हरष परस्पर होति ॥
—सूरसागर, पद २४१६

इस शोभा का क्या कहना ?"[1] रंगतत्त्व के द्वारा कवि ने परकीयत्व के प्रति सुन्दर व्यंग्य कसा है। उतावली में कृष्ण अपने पीताम्वर के स्थान पर नायिका का नीला दुपट्टा ही ले आये हैं, जो कृष्ण को अनुरूप रंगयोजना में वद्ध करता है।

कृष्ण की ही भाँति राधा के सौन्दर्य को अंकित करने के लिए कवि ने अनुरूप रंगयोजना का मोहक चित्रांकन किया है। राधा अनुरूप रंगों की वस्तुओं से अपना श्रृंगार करती है।[2] वह वेणी रचती है, विशाल भाल पर लाल टीका लगाती है। अंजन से लोचन आँज और आभूषण पहन, पान का वीड़ा चवाती हुई कृष्णमिलन की प्रतीक्षा करती है। "गौरवर्ण की राधा का यह रूपचित्र, काला, लाल, केसरिया आदि रंगों से सुसज्जित सुन्दर अनुरूप वर्णचित्र है। इसी प्रकार के और भी अनेक उदाहरण हैं जिनमें राधा के वर्णानुकूल वस्त्राभूषणों एवं अन्य श्रृंगारपरक उपकरणों के द्वारा कवि ने अनुरूप वर्णसंयोजन की सृष्टि की है।[3] राजस्थानी चित्रकला में भी राधा के रूपसौन्दर्य-अंकन में चित्रकारों ने अनुरूप वर्णसंयोजन का विशेष ध्यान रखा है। दामिनी-सी, दीपशिखा-सी, कनक-लता-सी तथा चम्पकली-सी राधा को अनेक प्रकार के स्वर्णभूषणों तथा जरीकोर की पीतचुनरी, पीतपाटम्वर, पीतचोली आदि से सुसज्जित कर चित्रकारों ने सूरदास की कल्पना को साकार कर दिया है। इधर तो लाल रंग के प्रति सूर का विशेष लगाव है और इधर मेवाड़शैली में भी लाल रंग अधिक प्रयुक्त हुआ है। राधा का गोरा रंग, बिम्वफल-से अधर, गुलमुहरी रंग-से युक्त अमलतासी गात, ललाट पर रोली की विन्दी, पाँवोंमें महावर, मुख में पान का वीड़ा और लाल साड़ी, लाल चोली, लाल लहँगा आदि से सुसज्जित अंग और इन सवके ऊपर रतनारे नयन अनुरूप रंगयोजना के सुन्दर उदाहरण हैं। मेवाड़शैली के सामान्य चित्रों में राधा के उपर्युक्त रंगसंयोजन को वहुलता से देखा जा सकता है।[4]

---

१. पीताम्वर पट कहा भयौ।
नीलाम्वर ओढ़ें हो आए, अति डहडहो नयौ॥
तैसोई अंग, वसन रंग तैसोई कहा कहो यह सोभा।
—सूरसागर, पद ३१२६

२. सूरसागर, पद ३२२८, ३२२९, ३२३१

३. केसर आड लिलाट हो, विच सेंदुर को विन्दु।
—सूरसागर, पद ३२३१

४. देखिए, गोपीकृष्ण कानोड़िया, कलकत्ता के निजी संग्रह के सूरसागर सम्वन्धी चित्र तथा सरस्वती-भवन, उदयपुर और कुं० संग्रामसिंह, जयपुर के कृष्णलीला-सम्वन्धी चित्र।

विरोधी वर्णयोजना

अनुरूप वर्णसंयोजन से भी अधिक सूर के काव्य में विरोधी वर्णयोजना की छटा विशेषतः परिलक्षित होती है। सूरदास ने केवल चमत्कार उत्पन्न करने के लिए विरोधी रंगतत्त्व का प्रयोग नहीं किया है, वरन् राधा-कृष्ण के सौन्दर्य को द्विगुणित निखारने और अधिक ऐन्द्रिय बनाने के लिए भी किया है। सौन्दर्यवर्णन के विषय में कवि की रुचि उत्कृष्ट है। श्याम शरीर पर पीतवस्त्र, गौर शरीर पर नीलवसन, रोमराजि के बीच श्वेत मुक्तामाला आदि विवरण उनके विरोधी रंगसंयोजन के ज्ञान के द्योतक हैं।[1] विरोधी रंगतत्त्व की उपर्युक्त उपमाएँ 'सूरसागर' में भरी पड़ी हैं। उनके काव्य में कृष्ण से पीताम्बर और राधा से नीलाम्बर अलग नहीं हुआ है। कृष्ण और राधा का रूप-रंग स्वयं विरोधी रंगयोजना का साक्षात प्रतीक है। श्यामवर्ण कृष्ण और गौरवर्ण राधा, दोनों के मिलने से विरोधी रंग की अनुपम छटा उनके सौन्दर्य को और भी निखार देती है, जिसके लिए सूरदास ने अनेक उपमाएँ प्रस्तुत की हैं।[2]

बालकृष्ण ने पीली झँगुली पहन रखी है, जिसकी छवि ऐसी लगती है, मानो बादलों में बिजली दमक रही हो।[3] श्याम और पीत विरोधी रंग हैं। कृष्ण के सौन्दर्य के निखार के लिए पीतपट, पीताम्बर, पीतकछनी आदि का चित्रण सूरदास के काव्य तथा राजस्थानी चित्रकला में स्थान-स्थान पर हुआ है। विरोधी रंगतत्त्व में कृष्ण की शोभा देखते ही बनती है :

> ऐसे हम देखे नन्दनन्दन।
> स्याम सुभग तनु, पीत बसन, जनु नील जलद पर तड़ित सुछन्दन।[4]

कृष्ण ब्रज की गलियों में खेलने निकले हैं। उन्होंने जो वेश धारण कर रखा है, वह विरोधी रंगयोजना का सुन्दर उदाहरण है। "वे कमर में कछनी, पीताम्बर बाँधे, तथा हाथ में भोंरा और चकरी लिये यमुना के किनारे जा पहुँचे। सर पर

---

१. डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा : सूरदास, पृ० ४८६
२. देखिए, सूरसागर, पद २६८५, २६४६, २८०५
३. पीत झंगुलिया की छवि छाजति, बिज्जुलता सोहति मनो कंदहि ॥
—सूरसागर, पद ७२५
तथा देखिए, चित्र बालकृष्ण, राजकीय संग्रहालय, कोटा
४. सूरसागर, पद २३९८ तथा डॉ० मोतीचन्द्र, मेवाड़ पेंटिंग, फलक-५, ६, ९, १० में कृष्ण का अंकन

मोरमुकुट, कानों में कुण्डल तथा अंग पर चन्दन की खोरी आदि सुशोभित हैं।"[१] कृष्ण के श्यामवर्ण के साथ सभी पीले और श्वेत उपकरण विरोधी वर्णयोजना के परिचायक हैं। मेवाड़शैली के अनेक चित्रों में कृष्ण की वेशभूषा में मोरमुकुट, पीताम्वर, गुंजमाला आदि का विशेष अंकन हुआ है।[२]

सूर की दृष्टि कृष्ण के लोचनों पर अधिक मुग्ध रही प्रतीत होती है।[३] लाल, श्वेत और काले रंगों की विरोधी-योजना का उपमासहित इतना सुन्दर उदाहरण भला और कौन प्रस्तुत कर सकता है ? उपर्युक्त रंगचित्रण ऐसा लगता है, मानो गंगा, यमुना और सरस्वती ने इन आँखों में आकर वास किया हो।[४] गंगा का श्वेत, यमुना का काला और सरस्वती का लाल जल जैसे कृष्ण की रक्ताभ आँखों में ही समा गया हो।

कृष्ण की ही भाँति राधा के रूपांकनों में भी सूरदास एवं राजस्थानी चित्रकारों ने विरोधी वर्णयोजना का मोहक निर्माण किया है। सूरदास ने तो प्रथम मिलन में ही गोरी राधा को नीलवसन से सुसज्जित किया है।[५] राधा के गोरे शरीर पर नीलपट अत्यधिक सुशोभित होता है। ऐसा लगता है, मानो दामिनी वादलों में लिपटी हुई हो।[६] गोरा तन, लाल कंचुकी और नीलाम्वर ओढ़े हुए राधी की छवि विरोधी रंगतत्त्व के कारण द्विगुणित चमक उठी है। और भी अनेक रंगों का विरोधाभास दिखाने के लिए कवि ने राधा और अन्य गोपियों को

---

१. खेलत हरि निकसे ब्रज खोरी।
कटि कछनी पीताम्बर वाँधे, हाथ लिये भौरा चक डोरी।।
मोर-मुकुट कुंडल स्रवननिवर दसन दमक-दामिनी-छवि छोरी।
गये स्याम रवि तनया के तट, अंग लसति चंदन की खोरी।।
—सूरसागर, पद १२८९

२. देखिए, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ३

३. सूरसागर, पद २४१५, २४२९, २४३१ आदि

४. अरुण, श्वेत, सित झलक पलक प्रति को बरने उपमाइ।
मनु सूरसरि, गंगा, यमुना मिलि, आस्रम कीन्हों आइ।।
—सूरसागर, पद २४३१

५. औचक ही देखी तहँ राधा, नैन विसाल भाल दिये रोरी।
नील वसन फरिया कटि पहिने, वेनी पीठि रुलति झकझोरी।।
—सूरसागर, पद १२८९

६. नीलांवर कंचुकी सुरंग तन, अति राजत राधा गोरी की।
मनो दामिनि घन मध्य रहति दुरि, प्रगट हँसति चितवन मोरी की।।
—सूरसागर, पद ३४९०

विभिन्न वर्णसंयोजित वस्त्राभूषणों से सुसज्जित किया है।[1] लाल साड़ी है तो नीला लहँगा और श्वेत अंगिया है या लाल, पीले और श्वेतवस्त्रों से सुसज्जित राधा और गोपियाँ अंकित की गयी हैं।[2] राजस्थानी चित्रकला की लगभग सभी शैलियों में रंगों की यह विविधता दर्शनीय है। राधा की रूपमाधुरी मन मोहने-वाली है, जिसका श्रेय विरोधी रंगयोजना को भी है।

आधौ मुख नीलाम्वर सौं ढंकि, बिथुरी अलकैं सोहैं।
एक दिसा मनु मकर चाँदनी, घन बिजुरी मन मोहैं ॥[3]

राधा-कृष्ण की युगल जोड़ी के चित्रण में कवि एवं चित्रकारों ने विशेष रुचि दिखलायी है। 'सूरसागर' में अनेक चित्र युगल-छवि के अंकित हैं जिनमें विरोधी रंगों की छटा दर्शनीय है। राधा-कृष्ण स्वयं ही विरोधी रंगों के प्रतीक हैं। राधा गोरी, कृष्ण साँवरे। दोनों गलबाँही डालकर चलते हैं तो विरोधी रंगों की छटा खिल उठती है।[4] राधा कनकलता और चम्पकली-सी है तो कृष्ण समुद्र, नील-बादल, नीलकमल-जैसे हैं। कृष्ण बादल हैं तो राधा बिजली है।[5] सूरदास ने उपर्युक्त उपमाओं का बार-बार प्रयोग किया है।[6] युगल-छवि के अंकन में जयपुर, किशनगढ़, बूंदी शैलियों की अपनी विशेषता रही है। इन शैलियों के चित्र क्रमशः श्रीभट्ट[7], नागरीदास, केशवदास आदि कवियों के काव्य के आधार पर बने हैं, किन्तु उन युगल-छवि के चित्रों के आधार पर सूरदास के पदों की भावपरकता एवं रंगयोजना का सहज ही में अध्ययन किया जा सकता है। राजस्थानी चित्र-कला में युगल-छवि के चित्र १८वीं शती में 'पोर्ट्रेट पिक्चर' के प्रभाव के कारण अधिक बने हैं।[8]

---

१. लाल सारी नील लहँगा, स्वेत अँगिया अंग। —सूरसागर, पद ३४४६
२. पहिरे बसन अनेक बरन तन, नील, अरुन, सित, पीत।
—सूरसागर, पद ३४४६
३. सूरसागर, पद २८०६
४. स्यामा स्याम कुंज बन आवत।
भुज-भुज कंठ परस्पर दीन्हें, यह छवि उन ही पावत।
—सूरसागर, पद २७७५
५. गौर स्याम मिलि नील पीत छवि, घन दामिनि संचार नो ॥
—सूरसागर, पद ३४५२
६. सूर स्याम स्याम मुख जोरी, मनि कंचन छवि लाजत।
—सूरसागर, पद २७७४
लपटे अंग सों सब अंग।
सुरसरी मनौ कियौ संगम, तरनि तनया संग ॥ —सूरसागर, पद २७४६
७. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या १५-१६
८. वही, चित्रसंख्या ६-१५

वर्ण-वैविध्य

लोककलात्मक प्रभाव के कारण सूरदासजी में रंगों की सूचक व्यवस्था तो मिलती ही है, साथ ही रंगों की विविधता, रंगों की होली, रंगों की बौछार आदि जितनी 'सूरसागर' में मिलती है, उतनी अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं। सूरदास का रंगों के प्रति विशेष लगाव था। राधा-कृष्ण की रंगरेलियों को वे सभी रंगों में सरावोर कर देना चाहते थे। 'सूरसागर' में 'झूलना' तथा 'वसन्त' दो प्रसंग तो ऐसे हैं जिनमें सूर के वर्ण-वैविध्य का ज्ञान होता है। झूलना का सम्बन्ध श्रावणमास से है। श्रावण में प्रकृति अपना अनोखा शृंगार करती है। "चारों ओर हरियाली छा रही है, काली घटाएँ उमड़-उमड़कर आ रही हैं, वगुलों की पंक्तियाँ आकाश में उड़ी जा रही हैं। ऐसे समय में कंचन के खम्भों पर रंग-विरंगी रेशमी डोरों का झूला उपवन में सजाया गया है। रंग-विरंगे वस्त्राभूषण पहनकर गोपियाँ कृष्ण के साथ झूला झूलने में मग्न हैं।[1] सुरंग हिण्डोलना है, लाल-हीरे-पन्ने उसमें जड़े हुए हैं। श्यामा-श्याम रंग-विरंगे वस्त्र पहनकर झूला झूल रहे हैं :[2] 'झूलना' के प्रसंग में वर्ण-वैविध्य की सतरंगी झलक देखते ही वनती है। राजस्थानी की अधिकतर शैलियों में राग मेघमलार में 'झूलने' का मोहक चित्रण हुआ है,[3] जिसके आधार पर 'सूरसागर' के 'झूलना' सम्बन्धी' पदों की भावपरकता तथा रंगयोजना का अध्ययन किया जा सकता है।

सूर के रंगों की सर्वाधिक वर्ण-विविधता 'वसन्त' के प्रसंग में द्रष्टव्य है। ऋतुराज वसन्त में प्रकृति नवीन पल्लवों तथा अनेक रंग के पुष्पों से अपना शृंगार सजाती है। रंग-विरंगे फूलों से सारा वातावरण महक उठता है। सूरदास ने अनेक प्रकार के फूलों के नाम गिनाकर[4] तथा वसन्त के वातावरण का विस्तृत वर्णन कर काव्य में वर्ण-विविधता का सहज परिचय दिया है।[5] सूर के पदों पर आधारित मेवाड़शैली[6] के तथा अन्य बूंदीशैली[7] के चित्रों में वसन्त के सतरंगे वातावरण का मोहक चित्रण हुआ है। इन चित्रों में फूल-पत्तियों की बनावट, कुंजों की शोभा, प्रातः-सन्ध्या की रंगोली, रंग-विरंगे वस्त्राभूषणों का अंकन

---

१. देखिए, सूरसागर, पद ३४४६
२. वही, पद ३४५० से ३४५३
३. देखिए, श्रावण मास-चित्रण, राजकीय संग्रहालय, अलवर तथा परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या १२
४. सूरसागर, पद ३५२२
५. वही, पद ३४६२ से ३५४०
६. देखिए, गोपीकृष्ण कानोड़िया, कलकत्ता के संग्रह के सूरसागर-सम्बन्धी चित्र
७. देखिए, प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेण्टिंग, फलक-५, ७

विशेष उल्लेखनीय है। राग-रागिनीचित्रण में वसन्त, मेघ, मेघ-मलार आदि रागों के स्वरूपों के अंकन में भी किशनगढ़शैली[1] को छोड़कर सभी अन्य शैलियों में चित्रकारों ने काव्य के रंगतत्त्व को साकार कर दिया है।

वसन्त के मादक वातावरण में होली भारतीय जीवन का अत्यधिक रंगीला त्यौहार है। प्रथम तो फागुन-चैत में प्रकृति ही चारों ओर रंगों की वर्षा करती है, दूसरे सारा समाज होली खेलने के लिए लालायित हो उठता है। ब्रज की होली तो और भी अधिक प्रसिद्ध है। सूरदास ने 'वसन्त' के पदों में ब्रज अथवा वृन्दावन, गोकुल, वरसाना, नन्दग्राम आदि स्थानों की प्रसिद्ध होली का जी खोलकर चित्रण किया है, जिसमें रंगों की विविधता के प्रति कवि अत्यधिक जागरूक दिखायी देता है। होली त्यौहार ही रंगों का है। होली खेलने के लिए रंग-बिरंगे वस्त्राभूषण पहनकर ब्रज का पूरा समाज एकत्र हो जाता है।[2] पचासों तरह का अवीर तैयार किया जाता है।[3] सोने के माटों में रंग घोला जाता है।[4] गोपियाँ नगर और गलियों में रातीपीरी अंगिया तथा रंग-बिरंगी साड़ी पहनकर चोवा, चन्दन, अगरु, अरगजा आदि छिड़कती फिरती हैं। अनेक रंगों के गुलाल से कृष्ण-राधा तथा अन्य गोप-गोपियाँ होली खेल रहे हैं। रंग-बिरंगी गुलाल इतनी उड़ा रहे हैं कि अटा-अटारी तक रंगीन हो गये हैं।[5] होली के इस मादक वातावरण में ब्रज का सारा परिवेश मोहक हो गया है। 'वसन्त'-सम्बन्धी पदों में सूरदास के रंगों की विविधता तथा अनुरूपता एवं विरोधी सम्मिश्रित रंगों के वर्णन का अध्ययन राजस्थानी चित्रकला के होली-सम्बन्धी चित्रों के आधार पर किया जा सकता है।[6] विभिन्न रंगों, गुलाल-अबीर, स्वर्ण पिचकारी, स्वर्णकलश आदि का अंकन ऐसे चित्रों में विस्तार से हुआ है। होली-सम्बन्धी सारे ही चित्र समूहचित्र हैं तथा होली के हुड़दंग के कारण तीव्रगत्यात्मक भी हैं। सूर के पदों की भाँति

---

१. खेद कि किशनगढ़शैली में राग-रागिनी का एक भी चित्र उपलब्ध नहीं है, यह आश्चर्यजनक ही है

२. पहिरे वसन अनेक वरन तन, नील, अरुण, सित, पीत ॥
—सूरसागर, पद ३४८८

३. वरन प्रचासक अबिर सँवारे, वीथिन छिरकि तहाँ विस्तारे।
—सूरसागर, पद ३५११

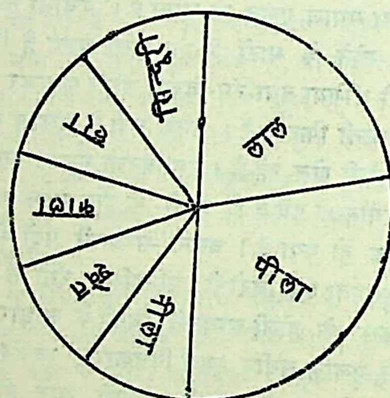
४. कंचन माँट भराइ के, रंग होरी।
सौधैं भर्‌यो कमोर, लाल रंग होरी ॥
—सूरसागर, पद ३४८५

५. सौधैं तेल अबीर अरगजा, तैसी जरद केसर चटकारी ॥
उड़त गुलाल लाल भए वादर, रंगि गए सिगरे अटा अटारी ॥
—सूरसागर, पद ३४६०

६. देखिए, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या १६ तथा डॉ० मोतीचन्द्र : मेवाड़ पेण्टिंग, फलक-३

रंगों की चटकीली विविधता के साथ ही समूह और तीव्रगत्यात्मक चेष्टाओं और कार्यकलापों का भी चित्रकारों ने विशेष ध्यान रखा है।[1] सभी प्रमुख शैलियों में होली का चित्रण हुआ है। अपनी-अपनी विशेषताओं के अनुसार उन शैलियों में रंगों का वैविध्य द्रष्टव्य है।[2] बारहमासे में फागुनमास के चित्रण में प्रमुखतया होली का ही रंगीला चित्रण हुआ है, उन चित्रों[3] के माध्यम से काव्य का अध्ययन अधिक सजीव हो सकता है।

सूरदास के वर्णचित्रों का गहन अध्ययन हमें उनकी रंगरुचि से पूर्णतः अवगत करा देता है। उनके वर्णसंयोजन के ज्ञान के उपरान्त ही उनके काव्य के साथ न्याय किया जा सकता है। उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर अनुपात की दृष्टि से उनके रंगचयन में लाल, पीले, नीले, श्वेत, काले आदि का ही प्रमुख क्रम रहा है :



बिहारी-सतसई के वर्णचित्र

रंगयोजना की दृष्टि से 'बिहारी-सतसई' भी महत्त्वपूर्ण कृति है। आम्बेर के दरबार में रहनेवाले राजकवि बिहारी के वर्णचित्रों की विविधता का कारण रंगों के प्रति उनकी ललक और विलासमय रंगीन राजस्थानी सामन्ती जीवन का प्रभाव ही है। उन्होंने रंगों का चुनाव प्रकृति के कटे-छँटे सामन्ती परिवेश, नायक-नायिकाओं के अंग-प्रत्यंगों की आभा एवं वस्त्राभूषणों से किया है। उन्होंने उपर्युक्त उपकरणों में बिखरे हुए नाना रंगों में से कहीं पर नायिका राधा के सौन्दर्य को आकर्षक बनाने के लिए अनुरूप वर्णयोजना के द्वारा वर्णचित्रों की

---

१. परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या १९ तथा डॉ० मोतीचन्द्र : मेवाड़ पेंण्टिग, फलक-३
२. वही
३. फागुन मास का चित्र, राजकीय संग्रहालय, अलवर

सृष्टि की है और कहीं विरोधी रंगों के द्वारा नायक-नायिका राधा-कृष्ण के सौन्दर्य को चटकीला और चमत्कारपूर्ण बना दिया है। राजस्थानी चित्रकला के परिपार्श्व में सोदाहरण विहारी के वर्णचित्रों का अध्ययन ही हमारा लक्ष्य है।

अनुरूप वर्णयोजना

भक्तिकाल की भाँति ही रीतिकाल में भी अनुरूप वर्णसंयोजन की प्रवृत्ति काव्य और चित्रकला में देखने को मिलती है। सामन्ती वातावरण में 'सिमत्री' तथा अनुरूपता की ओर भी विशेष ध्यान दिया गया है। 'बिहारी-सतसई' के अनेक दोहों में अनुरूप वर्णसंयोजन द्रष्टव्य है।[1] अनुरूप वर्णसंयोजन में विहारी ने नायिका के अंग-प्रत्यंगों की आभा दीपशिखा की भाँति जगमगायी है। वह पंचतोले की हल्की और बारीक श्वेत साड़ी पहिने हुए ऐसे प्रदीप्त हो रही है जैसे जल-चादर से दीपशिखा हल्की-हल्की जगमगाती रहती है।

सहज सेत पंचतोरिया, पहिरत अति छवि होति।
जलचादर के दीप लौं जगमगाति तन-जोति ॥[2]

प्रस्तुत दोहों में विहारी ने नायिका के सहज सौन्दर्य का श्वेत और स्वर्णिम रंगों के द्वारा जो वर्णचित्र अंकित किया है, वह मनमोहक है। गोरे शरीर पर श्वेत और वह भी महीन साड़ी कितनी फबती है, इसका चित्रण मेवाड़शैली के १८वीं शती के चित्र में दोहे के अनुरूप हुआ है।[3] सामन्ती परिवेश के अंकन में चित्रकार ने पृष्ठभूमि में ऊपर से गिरते हुए पानी की जल-चादर का तथा जलते हुए दीपों की आभा का चित्रण कर नायिका के सहजसौन्दर्य की उपमा में चार चाँद लगा दिये हैं। एक ओर दूती कृष्ण से राधा के उपर्युक्त सौन्दर्य की चर्चा करती हुई चित्रित की गयी है, जो उद्दीपन का कार्य कर रही है। चित्र के आधार पर दोहे के भाव को, सामन्ती वातावरण को तथा अनुरूप वर्णयोजना को सरलता से समझा जा सकता है।

इसी प्रकार प्रौढ़ा-धीरा खण्डिता नायिका राधा की उक्ति में नायक का रूपचित्रण अनुकूल वर्णसंयोजन से अंकित है।[4] पलकों पर पानी की पीक, अधरों में लगा हुआ अंजन और भाल पर लगा हुआ महावर क्रमशः लाल, काला और गुलाबी रंग का बोधक है, जो अनुरूप वर्णयोजना के अन्तर्गत आता है। बिहारी

---

१. देखिए, विहारी-रत्नाकर, दोहा १८८, ३४०, ६४६
२. विहारी-रत्नाकर, दोहा ३४०
३. देखिए, सचित्र, बिहारी-सतसई, क्रमांक-६४१, सरस्वती-भण्डार, उदययुर
४. पलनुपीक अंजनु अधर, धरं महावरुभाल।
   आजु मिले, सु भली करी, भले बने हों लाल ॥२२॥

ने अनेक आभूषणों के वर्णन में भी स्वर्णिम रंग का विशेष प्रयोग किया है जो चम्पकमाल, सोनजुही, स्वर्णशलाका-सी राधा के अंग-प्रत्यंगों पर अनुरूप वर्ण-संयोजन की सृष्टि करता है।

विरोधी वर्णयोजना

रीतिकालीन कवियों की आस्था चमत्कारप्रदर्शन में भी थी, इसलिए उन्होंने प्रतिकूल रंगों के द्वारा भी प्रिय के सौन्दर्य को चटकीला बनाने का यथास्थान प्रयत्न किया है। बिहारी ने पारस्परिक श्याम और स्वर्णिम रंगों के प्रयोग द्वारा कई दोहों में विराधी और वर्णयोजना का निर्माण किया है। सघन कुंज है, बादल छा रहे हैं, तथा अँधेरी रात है फिर भी दीपशिखा-सी ज्योतिवाली राधा का सौन्दर्य छिप नहीं पाता है।[1] अभिसार हेतु उस दीपमुखी को अँधेरे में भी लाना खतरे से खाली नहीं है। काली पृष्ठभूमि में स्वर्णरेख तथा दीपशिखा-सी राधा का सौन्दर्य अत्यधिक चमक उठता है। विरोधी रंगों से मधुर रूपनियोजन कवि की प्रातिमिक रुचि का ही परिचायक है।

विरोधी वर्णसंयोजन का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण बिहारी का निम्नांकित दोहा है :

छिप्यौ छबीलौ मुँह लसै नीलै अंचर-चीर।
मनो कलानिधी झलमलै कालिंदी कैं नीर ॥[2]

गोरे अंग-प्रत्यंगों पर नीला आँचल अत्यधिक सुशोभित होता है। नायिका के रूपसौन्दर्य को द्विगुणित शोभायमान बनाने के लिए सूर[3], केशव[4], प्रसाद[5] आदि ने इस प्रकार के विरोधी रंगों का प्रयोग किया है। गौरवर्ण, नीले आँचल में विरोधी रंगतत्त्व के कारण, आँखों को अधिक चमत्कृत करता है। उपर्युक्त दोहे में बिहारी ने पृष्ठभूमि में कालिन्दी और उसमें झिलमिलाते हुए चन्द्रमा की उपमा देकर चित्रकारों के लिए सुन्दर स्थिरचित्र-निर्माण का विषय प्रदान किया है।

निश्चय ही इस प्रकार के अन्य वर्णचित्र भी 'बिहारी-सतसई' में सुन्दर बन

---

१. सघन कुंज, घन-घन तिमिरु, अधिक अँधेरी राति।
तऊ न दुरिहै, स्याम, वह दीपसिखा-सी जाति ॥२९९॥
२. बिहारी-रत्नाकर, दोहा ५३८
३. नील वसन फरिया कटि पहिरे, वेणी पीठ रुलति झकझोरी
—सूरसागर, खण्ड १, पृ० ४९७
४. नील निचोल दुराइ कपोल विलोकति ही करि औलिक तो ही।
—केशव-ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० ५२
५. खिला हो ज्यों बिजली का फूल ॥
—कामायनी, पृ० ५६

पड़े हैं।[1] राधा और कृष्ण की युगल-जोड़ी ही विरोधी रंगयोजना की साक्षात प्रतीक है। साँवरे श्याम और गोरी राधा के लिए कवि ने प्रयागराज की कल्पना की है,[2] जहाँ कृष्ण (यमुना) और राधा (गंगा) के अनुराग (सरस्वती) से व्रज के विहार-निकुंजों के मार्ग में पग-पग पर प्रयाग हो जाता है। फिर उसे त्यागकर तीर्थराज जाने की क्या आवश्यकता है ? तीन विरोधी रंगों अर्थात श्याम, श्वेत और लाल के द्वारा कवि ने लाक्षणिक प्रभाव उत्पन्न किया है। बूंदीशैली के १७५० ई० के चित्र में चित्रकार ने विहारी की कल्पना को साकार कर दिया है।[3] राधा-कृष्ण की प्रेममयी लीलाओं को देखकर पाँच भक्त आपस में बातें कर रहे हैं। पृष्ठभूमि में प्रयागराज का दृश्य अंकित किया गया है।

वर्णमिश्रण

विहारी दरवार के कलात्मक परिवेश में रहते थे, इसलिए रंगों के आनुपातिक मिश्रण तथा रंगों की छायाओं की पकड़ में वे अत्यधिक सतर्क रहते थे। यही कारण है कि उनकी 'सतसई' में विभिन्न रंगों के मिश्रण की कला विशेष रूप से दिखलायी पड़ती है। "वर्णों के मिश्रण में कवि को दुहरे दायित्व का निर्वाह करना पड़ता है। एक ओर उसे चित्र विशेष के लिए अनुकूल रंगों का चुनाव करना पड़ता है और दूसरी ओर रंगों के आनुपातिक मिश्रण पर भी ध्यान देना पड़ता है।"[4]

विहारी का रंगपरिज्ञान तथा उचित रंगों के मिश्रण का प्रभाव 'सतसई' के प्रथम दोहे से ही होने लगता है :

मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परै स्याम हरित-दुति होइ ॥१॥

प्रस्तुत दोहे में कवि ने रंगमिश्रण का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है। "कवि जिस सम्प्रदाय का अनुयायी था, उसमें राधिकाजी ही प्रधान मानी जाती हैं। अतः उसने राधिकाजी ही से अपनी भव-बाधा हरने की प्रार्थना की है।"[5] कवि राधिकाजी के शरीर की गुराई की प्रशंसा करता है कि "वे ऐसे सुनहरे रंग की हैं कि उनकी आभा पड़ते ही श्रीकृष्णजी का श्याम रंग हरा हो जाता है।" पीले और नीले रंग के मेल से हरे रंग का निर्माण होता है। वर्णमिश्रण के

---

१. सोनजुही सी जगमगै, अंग-अंग जोवन जोति।
सुरंग कसूंमी, कंचुकी, दुरंग देह-दुति होति ॥१९०॥
२. तजि तीरथ, हरि-राधिका तन दुति कर अनुराग।
जिहि ब्रज केलि-निकुंज-मग पग पग होतु प्रयाग ॥२०१॥
३. देखिए, आर० डी० खन्ना, जयपुर के निजी संग्रह के १६ चित्रों में से एक
४. डॉ० बच्चनसिंह : रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना, पृ० ३९३
५. जगन्नाथ प्रसाद 'रत्नाकर' : बिहारी-रत्नाकर, पृ० २

आधार पर कवि ने राधा की शोभा, सौन्दर्य और अंगद्युति का जो अलौकिक स्वरूप अंकित किया है, वह उनके रंगतत्त्व-ज्ञान का परिचायक है। निश्चय ही चित्रकारों को रंग मिश्रित करते देख उपर्युक्त भाव कवि के मन में उत्पन्न हुआ होगा। इस दोहे पर १७वीं शती के मेवाड़ शैली के आधृत चित्र[1] में चित्रकार ने विहारी की कल्पना को तो साकार किया ही है, साथ ही अपनी सूझ-बूझ का भी परिचय दिया है। चित्र में एक साथ ही ४ भावों का अंकन किया है। प्रथम में भक्त द्वार पर खड़ा राधाजी से विनती कर रहा है, द्वितीय में कवि विहारी विचारमुद्रा में बैठे हुए हैं, तृतीय में सघन कुंज में राधा-कृष्ण आलिंगनपाश में बँधे प्रेमालाप कर रहे हैं और चौथे में भक्त पालकी में अपनी पत्नीसहित बैठा अपने उद्धार का संकेत कर रहा है। राधा के संसर्ग से कृष्णजी की प्रसन्न मुद्रा तथा हरे रंग की झाँई विशेष उल्लेखनीय है। नीले, पीले, लाल और हरे रंग से निर्मित यह चित्र चित्रकला की दृष्टि से उत्कृष्ट है। भवन के बाहर एक घोड़ा बँधा है, जो दोहे के किसी गूढ़ भाव का प्रतीक है या तत्कालीन संस्कृति का द्योतक है।

प्रस्तुत दोहे में बाँसुरी के हरे रंग पर ओठ का लाल, दृष्टि का श्वेत और काला तथा पीताम्बर का पीला रंग पड़ता है तो इन रंगों के सम्मिश्रण से वंशी इन्द्रधनुषी रंग की हो जाती है। निश्चय ही बिहारी की रंगयोजना की कल्पना कमाल की है। वर्णतरंगों के द्वारा कवि ने श्रीकृष्ण के रंगीले व्यक्तित्व तथा उनकी मोहक भाव-भंगिमा की जो व्यंजना की है, वह रंगतत्त्व की उत्कृष्ट कृति है। इस तरह के वर्णमिश्रण के और भी कितने ही उदाहरण 'विहारी सतसई' में हैं, जिनका सही मूल्यांकन चित्रकला के आधार पर ही हो सकता है।

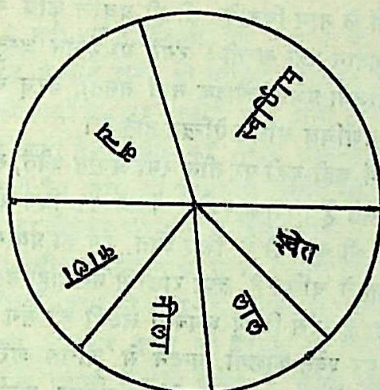
विहारी के उपर्युक्त वर्णचित्रों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि विहारी में रंगतत्त्व अत्यधिक प्रधान रहा है। इसके अधिकतर दोहे रेखाचित्रों और वर्णचित्रों के अनुपम उदाहरण हैं। रंगतत्त्व की गरिमा के कारण ही विहारी के दोहों में चटकीलापन है। उन्होंने अधिकतर श्वेत, पीला या स्वर्णिम, लाल, नीला आदि रंगों की योजना अपने काव्य में की है, जिनकी शब्दावली इस प्रकार है : १. पीला या स्वर्णिम : सोनजुही, दीपशिखा, गोरे मुँह, कनक-से गात, केशर, पीतपट, बीजुरी, चम्पकमाल, पावक-झर, दावानल की-ज्वाल, जातरूप आदि। २. श्वेत : सेत पंचतोरिया धोती, जरीकोर, गोरे वदन, कलानिधि, जुन्हाई, चन्दन, उज्ज्वल, जलचादर आदि। ३. लाल : सुरंग, मदलाली, अरुन, मौलश्री की माल, रोली, वारुनी, पीक, महावर, बिम्बाफल आदि। ४. नीला : नीला अंचल, कालिन्दी, नीला आकाश आदि। ५. काला : श्याम,

---

१. टाइम्स ऑफ इण्डिया एनुवल-१९६४, पृ० २८ पर प्रकाशित तथा एन० सी० मेहता आर्ट गैलेरी, अहमदाबाद में द्रष्टव्य.

अँधियारी रात, विथुरे-सुथरे वाल, अंजन, कालिन्दी, परछाईं आदि।

बिहारी ने उपर्युक्त रंगों के अतिरिक्त भी हरा, केशरिया, कसूमल, घूप-छाँह या ताफ्ता आदि का भी यथास्थान प्रयोग किया है। उनके प्रमुख रंगों के प्रयोग का अनुमानित अनुपात इस प्रकार अंकित किया जा सकता है :



रसिकप्रिया के वर्णचित्र

ओरछा के रंगीन दरवारी जीवन में रहनेवाले केशव की कल्पना रेखांकन की दृष्टि से उत्कृष्ट है, पर रंगयोजना की दृष्टि से शिथिल है। उन्होंने रंगों के लिए अपना आचार्यत्व अवश्य प्रदर्शित किया है,[1] किन्तु उनके काव्यगत वर्णचित्रों में सूर की-सी स्वच्छन्दता और चटकीलापन नहीं है। रंगों का ज्ञान होना एक वात है तथा रंगों के प्रति विशेष लगाव और ललक होना दूसरी बात। कवि और आचार्य केशव को रंगों का विस्तृत ज्ञान था। 'कविप्रिया' में उन्होंने वर्णालंकार के अन्तर्गत सभी रंगों का, उनके मिश्रण का तथा उनसे सम्बन्धित विभिन्न उपकरणों का विस्तृत विवेचन किया है।[2] किन्तु रंगों के प्रति जो ललक सूर, बिहारी, नागरीदास, मतिराम आदि कवियों में दृष्टव्य है, वैसी केशव में नहीं।

रंगों का विशेष सम्बन्ध प्रकृति से है। प्रकृति के विराट रंगमंच पर रंग बिखरे पड़े हैं। प्रकृति रंगों के माध्यम से ही पल-पल में अपना शृंगार करती है। आचार्यत्व की दृष्टि से केशव ने प्रकृति का आलम्बनरूप में भी विस्तृत चित्रण किया है। भूमि-भूषणवर्णन में उन्होंने वन, वाग, गिरि, आश्रम, सरिता, ताल,

---

१. देखिए : विश्वनाथ प्रसाद, केशव-ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० ११२
२. „ केशव-ग्रन्थावली, खण्ड १ (कविप्रिया), पृ० ११२-११७

सूर्योदय, चन्द्रोदय, षट्ऋतु, बारहमासा आदि का विस्तार से वर्णन किया है,[१] किन्तु प्रकृति के स्वच्छन्द रंगविरंगे वातावरण के प्रति केशव का कम लगाव रहा है। उनकी 'रसिकप्रिया' में यथास्थान प्रकृति का उद्दीपन हेतु नाममात्र का चित्रण हुआ है। दरबारी जीवन के रंगीन परिवेश का उद्दीपनरूप में जो चित्रण हुआ है, उसमें वस्तुओं के नाम गिनाने की ही प्रवृत्ति कवि की रही है जो रंग-योजना में विशेष योगदान नहीं करती। रंगों या रंगीन वस्तुओं के नाम गिना देने से काव्य में रंगयोजना प्रभावोत्पादक नहीं बनती, वरन् रंग का प्रभाव पैदा करने से ही काव्य के वर्णचित्र अधिक ऐन्द्रिय होते हैं।

केशव के काव्य में कहीं-कहीं पर तीन रंगों अर्थात श्वेत, स्वर्णिम और नीला के विशेष प्रयोग मिलते हैं। शुभ्र, श्वेत केशव का प्रिय रंग है। परम्परा के विपरीत उन्होंने कृष्ण की काछनी के लिए श्वेत रंग का प्रयोग किया है।[२] कृष्ण का सारा शरीर चन्दन से चर्चित है, तथा राधा से गलबाँही डाले कुंज से निकलते हुए वे ऐसे लग रहे हैं जैसे विष्णु भगवान लक्ष्मी को संग लिये क्षीरसमुद्र से निकल रहे हों। यहाँ पर श्वेत काछनी, चन्दन से चर्चित शरीर और क्षीरसमुद्र की कल्पना आदि सभी श्वेत आभा का वर्णचित्र अंकित करते हैं। 'कृष्ण जू के विभ्रम हाव"[३] में भी कवि ने कृष्ण के सौन्दर्य का चित्रण चन्दन के जल की छवि से अंकित किया है। बूंदीशैली में अंकित छन्द-सम्बन्धी चित्र[४] भावाभिव्यंजन एवं कला की दृष्टि से तो उत्कृष्ट है ही, साथ ही कृष्ण के वस्त्राभूषणों एवं शारीरिक सौन्दर्य में श्वेत रंग की आभा अंकित कर चित्रकार ने कवित्त के भाव को भी साकार कर दिया है। जुन्हाई की ज्योति में जलना,[५] चन्द्रमुखी नायिका की कमर का कच और कुचों के भार से लचक-लचक जाना,[६] चन्दन से शरीर चर्चित कर

१. देखिए, केशव-ग्रन्थावली, खण्ड १ (कविप्रिया) पृ० १३१-१३८ तथा १५७-१६०
२. कटि केशव काछनी सेत कहें सबही तन चन्दन चित्र किये।
निकसे छिति छीर समुद्र ही ते संग श्रीपति मानहु श्रीहिलिये ॥३६॥
—केशव-ग्रन्थावली खण्ड १, पृ० ३०
३. नन्दनन्दन खेलत है बने गात बनी छबि चन्दन के जल की।
—केशव-ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० ३५
४. देखिए, प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेंण्टिग, फलक-५
५. बासर बीस बिसै विष मीडिये राति जुन्हवई की ज्योति जरै जू।
—केशव-ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० ५१
तथा देखिए, १७वीं शती का मेवाड़शैली का चित्र, मिनियेचर पेंण्टिग्स फ्राम मोतीचन्द्र खजांची, फलक-३३
६. चलिहै क्यों चन्द्रमुखी कुचनि के भार भएँ।
कचनि के भार तो लचकि लंक जात है॥
—केशव-ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० ७१

फूलमाल पहिराना तथा कपूर आदि लगाना[1] केशव के श्वेत रंग के आकर्षण को प्रतिपादित करते हैं। केशव की 'रसिकप्रिया' में श्वेत रंग के अनेक उपकरण भरे पड़े हैं। उन्होंने 'कविप्रिया' में श्वेत वर्ण का सर्वप्रथम वर्णन किया है तथा लगभग ८० उपकरण श्वेत रंग-सम्बन्धी गिनाये हैं,[2] जो केशव के आचार्यत्व को प्रदर्शित करते हैं।

स्वर्णाभूषणों से लदी हुई नायिकाओं एवं सामन्तों के बीच रहनेवाले केशव की रुचि स्वर्णिम रंग के प्रति होनी ही चाहिए। स्वर्णिम रंग का प्रयोग उन्होंने राधा या अन्य नायिकाओं के अंग-प्रत्यंगों की शोभा के लिए या आभूषणों के लिए विशेष रूप से किया है। राधा का शरीर सोने-जैसा है[3], या वह सोने की शलाका-जैसी तन्वंगी है। चम्पे की माला-सी राधा को कृष्ण गले से लगा लेते हैं।[4] दामिनी-सी राधा दौड़कर घनश्याम से लिपट जाती है।[5] इस लिपटने में मद-हाव के साथ ही विरोधी वर्णसंयोजन का सुन्दर चित्रण हुआ है। चम्पा की कली-सी, रूप की मंजरी-सी, काम की कला-सी, चपला-सी राधा[6] अपने सोने-से शरीर को सँवारकर, सुगन्ध लगाकर, कृष्ण को वरबस ही रिझा लेती है।[7] उपर्युक्त सभी कार्य-व्यापारों के चित्रण में कवि केशव ने सोना, चम्पा, दामिनी, मंजरी आदि उपकरणों के माध्यम से स्वर्णिम रंगों का प्रयोग कर काव्य के वर्णचित्रों को मोहक एवं राजसी ठाठ-बाट के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया है।

नीले रंग का प्रयोग केशव ने कृष्ण के रूपचित्रण में या अन्य वस्त्रों के अंकन में कहीं-कहीं पर किया है। कृष्ण को घन की उपमा देना तथा राधा का नील निचोल की ओट में चन्द्रमुख छिपाना आदि नीले रंग के उदाहरण हैं, जिनमें विरोधी रंगसंयोजन का सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य है।[8]

---

१. देखिए, केशव-ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० ७६ तथा ललितकला ३-४
२. देखिए, केशव-ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० ११२
३. देखी है गुपाल एक गोपिका मैं देवता सी,
सोने सो शरीर सब सोंधे को सो वासु है ।।३४।।
—केशव-ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० १३
४. लोचन विलास चारु चिबुक कपाल चूमि,
चम्पे की सी माला, लाल लीनी उर लाइके ।।३१।।
—वही, खण्ड १, पृ० २६
५. ताही समय उठे घन घोरि-घोरि, दामिनी-सी,
लागी लौटि स्याम घन उर सौ लपकि कै ।।२८।। —वही, खण्ड १, पृ० ३४
६. केशव-ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० ८४
७. वही, पृ० ७६
८. नील निचोल दुराई कपोल विलोकति ही करि औलिक तोही।
—वही, पृ० ५२

यह बात निश्चित है कि कवि केशव के काव्य में सूरदास की भाँति रंगों की वर्षा नहीं होती, पर प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से उनके वर्णचित्रों में रंगों की सूचक अवस्था को त्यागकर संयोजक अवस्था का प्रभाव अवश्य देखने को मिलता है। सूर में लोककलात्मक रंगों का प्रभाव है तो केशव में सामन्ती स्वर्णिम आभा का। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि केशव की 'रसिकप्रिया' को आधार बनाकर बूंदीशैली, बीकानेरशैली और मेवाड़शैली में भी जो चित्र बने हैं, उनकी पृष्ठभूमि हेतु भव्य भवनों, बनों, उपवनों, पशु-पक्षियों, प्रातः, सन्ध्या, चाँदनी, रात आदि में तथा नायक-नायिकाओं की भावधाराओं के अंकन में रंगों का जो मनोहर चित्रण हुआ है, वह किशनगढ़शैली को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ है।[1] इसमें केशव की कितनी और शैली की विशेषता की कितनी देन है, यह अलग ही शोध का विषय है।

नागर-समुच्चय के वर्णचित्र

नागरीदास कवि और चित्रकार थे, इसलिए वे जानते थे कि शब्दचित्र किस प्रकार के होने पर कूँची से खींचे जाने योग्य हो सकते हैं और सतरंगे वातावरण का अंकन करने के लिए किस प्रकार के रंगों की योजना उचित है? चित्रकार होने के कारण वे रंगों के प्रति अधिक जागरूक थे। "उनके छन्दों में चित्रकला के अनेक उपकरण भरे पड़े हैं। उनका काव्य चित्रमय है।"[2] किशनगढ़ की चित्रकला को नवीन मोड़ देने का श्रेय भक्तवर नागरीदास को है। उनके काव्यगत रेखा-चित्रों एवं वर्णचित्रों के आधार पर निहालचन्द द्वारा बनाये गये चित्र अधिक भावपरक हैं। "नागरीदास का समय किशनगढ़ की चित्रकला का स्वर्णयुग था। उस समय के चित्रों में रंगों की अनोखी मनोमुग्धकारी छटा द्रष्टव्य है, जिसका श्रेय नागरीदास के काव्यगत वर्णचित्रों को जाता है।"[3]

किशनगढ़शैली में रंगों का अपना खेल है। राधा-कृष्ण के सुकोमल भावों को चित्रित करने के लिए कलाकार निहालचन्द ने अधिकतर हल्के रंगों का प्रयोग किया है। सफेद और गुलाबी यहाँ के प्रमुख रंग हैं। सलेटी और सिन्दूरी रंगों का प्रयोग भी बहुलता से हुआ है। इस प्रकार के रंगों का प्रयोग कलाकारों ने नागरीदास के काव्य से ही ग्रहण किया है, हो सकता है कि वह आदान-प्रदान पारस्परिक हो। नागरीदास के काव्य में अनुरूप वर्णसंयोजन ही अधिक है,

---

१. देखिए, प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेण्टिंग, फलक-५, '७ तथा एन० सी० मेहता : दि गोल्डन फ्लूट, फलक-४, ५, ६ और परिशिष्ट-ङ, चित्र संख्या ८
२. डॉ० फैयाजअली : भक्तवर नागरीदास, अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध, पृ० १९२
३. वही, पृ० १९३

इसलिए किशनगढ़ की चित्रकला में भी वर्णों की अनुरूपता विशेष उल्लेखनीय है। कुछ उदाहरण देकर नागरीदास के वर्णचित्रों का अध्ययन किशनगढ़शैली के तत्सम्बन्धी चित्रों के आधार पर करेंगे।

राधा और कृष्ण के रूपांकन के लिए श्वेत और गुलाबी वस्त्राभूषणों का अंकन कवि ने किया है :

कुंज ले आवत है जमुना तटि नागर नागरि संग लिये।
चंद की चाँदनी छाय रही, है तैंसेई स्वेत सिंगार किये।
गावत राग जमावत सहचरि आवत आसव प्रेम पिये।
देखि लगी नौका सरिता तट नागरिया आनन्द तिये ॥

(नागर-समुच्चय, पद मुक्तावली)

प्रस्तुत पद में कुंजों का हरा-भरा चित्रण और नागर-नागरी का यमुनातट की ओर आने का सुन्दर मन्द्रगत्यात्मक चित्र है। चन्द्रमा की श्वेत चाँदनी छिटकी हुई है तथा अभिसार हेतु वैसे ही श्वेत वस्त्राभूषणों का उन्होंने शृंगार सजा रखा है। किशनगढ़शैली का यह चित्र[1] कला की दृष्टि से उत्कृष्ट है। श्वेत और गुलाबी वस्त्राभूषणों की छटा अद्वितीय है, साथ ही प्रकृति का रंगीन वातावरण इस शैली की वर्णयोजना का अनुपम उदाहरण है।

नौकाविहार नागरीदास का प्रिय विषय है। रूपनगर[2] और किशनगढ़ में अनेक ऐसी झील और सरोवर हैं जो नौकाविहार हेतु उपयोगी रहे हैं। प्रकृति के सुरम्य स्वच्छन्द रंगीन वातावरण में राधा-कृष्ण का नौकाविहार वर्णचित्रण का प्रमुख आधार रहा है :

विहरत नवका बैठि बिहारी
जमुना जगमग जोन्ह जामिनी कमल कूल सुखकारी।

× × ×

वृन्दावन की तलहटीं डोले यमुना तीर-तीर।
जटिल स्वेत नभ नाव बैठि दोऊसांवल गौर शरीर ॥

श्वेत आकाश, साँवरे और गोरे शरीरों का चित्रण रंगयोजना के विरोधी वर्णसंयोजन का प्रतीक है, किन्तु जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है, किशनगढ़-शैली में मेवाड़ की भाँति लोककलात्मक रंगों का प्रयोग न होकर हल्के संवेगात्मक रंगों का प्रयोग हुआ है। नागरीदास के काव्य में स्थान-स्थान पर यही संवेदनात्मक रंगयोजना देखने को मिलती है, जिसका अध्ययन चित्रकला के आधार पर किया जा सकता है।

---

१. देखिए, महाराजा किशनगढ़ के निजी संग्रह में
२. अब यह रूपनगढ़ के नाम से विख्यात है

नागरीदास ने रंगों का चयन प्रकृति, मानवशरीर, वस्त्राभूषण तथा अन्य उपकरणों से किया है। प्रातः सन्ध्या, चाँदनी, कुंज, सरोवर, कमल आदि उनकी रंगयोजना के प्रतीक हैं।[१] राधा-कृष्ण के शारीरिक सौन्दर्य में नील-गौर शरीर तथा गुलाबी होंठ, ऐड़ी, हथेली आदि का चित्रण काव्य में यथास्थान हुआ है।[२] 'हाटक वेल सी', 'दुति ज्यों तन मोती', 'साँवल गौर शरीर', 'फूलझरी हास में' आदि प्रयोग शारीरिक रंगयोजना के सुन्दर उदाहरण हैं। रेखाचित्रों और वर्णचित्रों का सुन्दर समन्वय नागरीदास के काव्य में देखने को मिलता है। रेखाओं, वर्णों, प्रकृति-चित्रण तथा नायिका की चेष्टाओं के अंकन का एक उदाहरण प्रस्तुत है :

> कालिंदी के तट हाटक बेलि सी न्हाय कछू कढि ठाढ़िये होती।
> भींजिके बार लगे सटकारे औ ताय दिपै दुति ज्यों तन मोती।
> देखि गुपाल हिं वेरि लगावति नागर ऐसी प्रवीन है को ती।
> जोरत नैन मरोरत भौंहनि चीरत चित्त निचोरत धोती ॥
>
> (नागर-समुच्चय, छूटक कवित्त)

यह सद्यःस्नाता नायिका के रूपसौन्दर्य का तथा उसकी कार्य-विदग्धता का संवेगात्मक रंगीला लक्षित चित्र है। सटकारे भीगे बालों में से मोती की भाँति चमकती 'हाटक वेल सी' राधा की देह और नैन मिलाकर, भौहें मरोड़कर, धोती निचोड़ने की चेष्टा भला किसके चित्र को नहीं चीर डालेगी। उपर्युक्त चित्र में रंगयुक्त ऐन्द्रियता बरवस ही चित्त को मोह लेती है। अन्तिम पंक्ति में चार सबल तथा सुस्पष्ट रेखाओं में कवि ने राधा की कार्य-विदग्धता का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है।

वस्त्राभूषणों में भी हल्के रंगों का प्रयोग द्रष्टव्य है। लहरिया[३], चूनरी[४], जरतारी-सारी[५], तारकसी-वस्त्र, जवाहिर, मोती[६] आदि में कवि की रंगयोजना

---

१. देखिए, विहार-चंद्रिका, भोरलीला, पावस पच्चीसी, सांकी के कवित्त, चाँदनी के कवित्त, वन-विनोद आदि तथा ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेण्टिग, फलक-१, ७, ६

२. देखिए, नागर-समुच्चय-बिहार-चंद्रिका, जुगल-रस-माधुरी, ब्रजलीला आदि तथा ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेण्टिग, फलक ४, ६

३. चटक मटक कर टहरिया, ओढि लहरिया चीर।
गयी सहरिया करि टगनि पारि महरिया तीर ॥
—नागर-समुच्चय, छटक दोहा

४. कुहु कच चूनरी सितारेदार सोई नभ।
—वही, दीवारी के कवित्त

५. जरतारी की सारी को अंग जवाहिर। वही, उत्सवमाला

६. मोतिन की आग महताव उनहारी है। —वही, दीवारी के कवित्त

मोहक बन पड़ी है, जिसका अध्ययन किशनगढ़शैली के चित्रों के आधार पर सरलता से कर सकते हैं।[1] कृष्ण के वस्त्रों में पाग (फेंटा) के "अलवेले पेचों का लपेटा' नागरीदास के काव्य और निहालचन्द के चित्रों की विशेष देन है, जिसमें उसके बँधेज और सोफियानी हल्के रंगों की आभा दर्शनीय है। नागरीदास ने फेंटे के बँधेज का ऐसा चित्रण[2] कर किशनगढ़ की चित्रकला को मुगलप्रभाव से छुटकारा दिलाकर ठेठ राजपूती वेशभूषा से परिपूरित किया। फेंटे का पीत रंग, रत्नों के पेच की श्वेत आभा तथा किरणमण्डल का स्वर्णिम अंकन काव्य और चित्रकला में समानता से द्रष्टव्य है।[3] चन्द्र की-सी कान्ति, हीरों की झलमलाहट, मोरछल, सूरजमुखिया, पानदान-वीरा, धूपदान, कुंजभवन की शोभा, रंगमहल, छज्जे-छतरियाँ आदि उपकरणों के चित्रण में कवि नागरीदास एवं चित्रकार निहालचन्द ने अनुकूल रंगयोजना का सुन्दर समन्वय कर काव्य और चित्रकला को रंगीन बना दिया है।[4] निश्चय ही नागरीदास के वर्णचित्र अत्यधिक प्रभावशाली हैं, जिनके प्रभाव के कारण ही किशनगढ़ की चित्रकला भारतीय चित्रकला में उत्कृष्ट स्थान बना सकी है।

राजस्थान के त्यौहार, उत्सव रंगीले होते हैं। तीज, दीपावली, होली गणगौर आदि रंग और उमंग-भरे त्यौहार हैं। इनके चित्रण में कवि और चित्रकारों की रंगयोजना अनोखी एवं मनोहारी है। नागरीदास के दीपोत्सव, साँझीलीला एवं होली से पदों में रंगों की वर्षा होती है।[5] निहालचन्द ने भी अपने प्रिय स्वामी के भावचित्रों को रंगों में साकार कर दिया है। दीपावली के वर्णचित्रों में रंगों की अनुरूप वर्णयोजना दर्शनीय है :

सुन्दर सुघर स्याम राधा ठकुराइन जू,
जोरी जग भूषण सु आनन्द अगमगी।

---

१. देखिए, ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेण्टिग, फलक-३, ४, ७, १३
२. वैंना भाल वनाय वहुरि मुख कमल निहारत।
उत फैटा सिर पीत झुकत कछु प्रिया संवारत।
पेचन की चहुँ और मैंड ओडनि लचि ढों ही।
सुन्दर करन वनाय चन्द्रिका घरी टिढोही।
रतन पेच रचि बाध्यौं हरि के अति रंग मीनों।
छूटी किरन चहुँ फेर घेर छवि मंडल कीनों।
—नागर-समुच्चय
३. देखिए, ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेण्टिग, फलक-१, ३, ६, १२
४. ,, (भोर ही निकुंजते उठिचली है कुवरि राधिका) भक्तवर नागरीदास, चित्रसंख्या ५
५. नागर-समुच्चय, (उत्सवमाला, साँझी के कवित्त, होरी के कवित्त)

तारकसी बसन जवाहिर सी जेब लसी,
बैठे कुरसी पै प्रति नैनन जगमगी।
जरबफती समियाने समें दांन किस्त सोज,
नागर अगर धूमि धूंधरि रंगमगी।
दिपै दीपमाल छवि छूटे आन जन्त्र जाल,
अजव जलूस जोति जीनत जगमनी।।

(उत्सवमाला-अथदीपमालिका)

इस पद में मुगलदरवार के वैभव का अत्यधिक प्रभाव है। अनुरूप रंगों की करामात इतनी प्रचुर है कि सुनहरी लकदक में आँखें चुंधिया जाती हैं। तारकसी और वरबफ्ती के वस्त्र[1], जवाहिरातों से लदे राधा-कृष्ण, दीपावली पर छूटती हुई फुलझड़ियाँ आदि से वातावरण जीनत के समान जगमगा रहा है। उपर्युक्त पद पर आधारित निहालचन्द द्वारा निर्मित चित्र[2] को देखकर ही पद के राजसी वैभव को भली प्रकार समझा जा सकता है। किशनगढ़ के काव्य और चित्रकला में अत्यधिक समता रही है। काव्य की आत्मा चित्रों में वोलती है और चित्रों के रेखा और रंग काव्य में मुखर हो उठे हैं। साँझीलीला तो उत्सव ही रंगों का है। "आसौज मास' में पाँच दिवस तक लड़कियों द्वारा साँझीलीला करना, अर्थात अनेक रंगों से चौक पूरकर साँझी वनाना सतरंगे रंगों का रंगीला खेल है। नागरीदास ने साँझीलीला के अनेक पद लिखे हैं[3], जिनमें विभिन्न चटकीले रंगों का सुन्दर संयोजन द्रष्टव्य है। उन पदों के रंगसंयोजन को पदों पर आधारित चित्रों के द्वारा भली प्रकार समझा जा सकता है। निहालचन्द ने साँझीलीला के चित्र[4] में सिन्दूरी, हरे, केसरिया, श्वेत, गुलावी, सलेटी आदि रंगों का जो पैटर्न प्रस्तुत किया है, वह अत्यधिक सतरंगा है। साँझीलीला के पदों से ही प्रभावित होकर निहालचन्द जैसे कलाकारों ने किशनगढ़शैली में सन्ध्या का मोहक सतरंगा चित्रण किया है। निश्चय ही चित्रकला को काव्य की यह वहुत वड़ी देन है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि काव्य में भी अनेक प्रकार के चित्र होते हैं। हिन्दी कृष्णकाव्य अपनी चित्रोपयोगिता के

---

१. वे रेशमी वस्त्र, जिनमें सोने-चाँदी के तारों का तथा कलावतू के वेल-बूटों का काम हो
२. देखिए, ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेंण्टिग, फलक-११
३. ,, नागरीदास : नागर-समुच्चय, साँझीलाला के पद
४. ,, ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेंण्टिग, फलक-७

कारण शब्दचित्रों से भरा पड़ा है। काव्य के रेखाचित्रों एवं वर्णचित्रों का विस्तृत एवं गहन अध्ययन राजस्थानी चित्रकला के तत्सम्बन्धी चित्रों के आधार पर भली प्रकार से हो सकता है। मध्यकाल में हिन्दी कृष्णकाव्य ने रंगचयन के विश्लेषण एवं निरूपण में जो रुचि व्यक्त की है, उससे समकालीन अथवा परवर्ती चित्रकारों की रंगयोजना को विशेष अवसर प्राप्त हुआ। वैसे तो रंगरुचि के काव्यचित्रगत विकास में मुगलों और सामन्तों की जीवनपद्धति का विशेष योग है, फिर भी वैयक्तिक रुचि उपेक्षणीय नहीं है। सूरदास, केशव, बिहारी आदि को सामने रखकर इस तथ्य की अवगति हो सकती है। राजस्थानी चित्रकला में अनुरूप रंगसंयोजन तथा विरोधी रंगसंयोजन, दोनों की विशेषताओं को मध्य-कालीन हिन्दी कृष्णकाव्य के परिपार्श्व में परखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि वर्णरुचि एक सामाजिक शृंगारप्रवृत्ति के रूप में विकसित होकर काव्य और चित्रकला पर भी छा गयी। इसीलिए अनुरूप और विरोधी वर्णसंयोजन के दोनों क्षेत्रों में इतना महत्त्व पा लिया। निश्चय ही हिन्दी कृष्णकाव्य के रेखाचित्रों एवं वर्णचित्रों का अध्ययन राजस्थानी चित्रकला के परिपार्श्व में विस्तार एवं गम्भीरता से किया जा सकता है।

६

हिन्दी कृष्णकाव्य : भावांकन एवं चित्रांकन

मानसिक विकारों को 'भाव' अभिधा प्रदान की जाती है।[1] "जिसको हम हृदय कहते हैं वह भावों का ऐसा भण्डार है जिसमें सामान्यतः अनेक आन्दोलन होते रहते हैं और जिनका हम हर्ष, क्रोध, भय, घृणा आदि के रूप में अनुभव करते रहते हैं।"[2] कुछ भाव वीजरूप में प्रत्येक व्यक्ति के अन्तस्तल में सदैव विद्यमान रहते हैं। ऐसे भाव, जिनकी स्थिति को नित्य माना गया है, स्थायी भाव कहलाते हैं। रति, शोक, भय, उत्साह आदि नौ स्थायी भाव प्रमुख रूप से साहित्यशास्त्रियों ने स्वीकार किये हैं। भक्तिकाल में भक्तिकाव्य की धूम से 'भक्ति' को भी एक रस स्वीकार कर लिया गया।

भाव : काव्य और चित्रकला

कहने की आवश्यकता नहीं है कि स्थायी भाव ही विभावादि से पोषित होकर इस रसरूप में आस्वाद्यता को प्राप्त होता है। काव्य में भावों की स्थिति को प्रमुखता दी जाती है, क्योंकि स्थायी आदि भाव ही काव्य में निरूपित होने पर साकार होते हैं। वाह्य वर्णन भावों के वाहन मात्र होते हैं। भाषा भावों का माध्यम है। जहाँ भाव है, वहाँ काव्य है। हम किसी भावहीन काव्य की कल्पना नहीं कर सकते। काव्य में चार बातें प्रमुख होती हैं : चिन्तन, अनुभूति, कल्पना और अभिव्यंजना।

---

१. देखिए, साहित्यदर्पण—भावो प्रथम विक्रिया। अमरकोश—विकारो मानसो भावः

२. रामदहिन मिश्र : काव्यदर्पण, पृ० ५२

चिन्तन का क्षेत्र वस्तुपरक होता है, किन्तु अनुभूति का भाव स्वभावपरक। अभिव्यंजना में चिन्तन और भाव दोनों का समन्वित प्रतिफलन होता है जो कल्पना के द्वारा ही सम्भव है। कल्पना भावों और विचारों को भाषा में साकार करती है। भावों और विचारों का सम्वन्ध प्रस्थापित करानेवाली भी कल्पना ही होती है और कल्पना ही भावों और विचारों को कतर-छाँटकर व्यवस्थित रूप देती है। चाहे प्रवन्ध-कवि हो चाहे मुक्तक-कवि, चाहे उपन्यासकार हो चाहे नाटककार—कोई भी साहित्यकार हो, कल्पना के विना साहित्यसृष्टि नहीं कर सकता। कल्पना साहित्यकार या कवि की मानसिक कैंची भी है, जो कुरूप को काट-छाँटकर सुरूप वनाती रहती है।

चित्रों में भी करीव-करीव यही तत्त्व रहते हैं, किन्तु चित्रों की अभिव्यंजना-पद्धति काव्य की अभिव्यंजनापद्धति से भिन्न होती है। काव्य के भाव शव्दों में अंकित होते हैं, जवकि चित्रगत भाव रेखा-रंगों में व्यक्त होते हैं। इसके अतिरिक्त एक और अन्तर है, वह यह कि काव्य में भावों का निरूपण किया जाता है। उपमानों के माध्यम से निरूपित भाव मानसलोचनों में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, किन्तु चित्रों में भावों का निरूपण प्रत्यक्ष न होकर प्रच्छन्न होता है। केवल अनुभाव ही निरूपित होते हैं, क्योंकि रेखा-रंगों में वे ही प्रस्तुत किये जा सकते हैं। अनुभावों में भी केवल मुद्राओं और चेष्टाओं का ही निरूपण चित्रों में हो सकता है। हाँ, भावों की अवगति मुद्राओं और चेष्टाओं से भी हो सकती है, किन्तु वह कुछ कष्टसाध्य होती है। उसके लिए संस्कारों, अनुभवों और अभ्यासों की आवश्यकता है, फिर भी यह वहुत सम्भव है कि कभी-कभी सही अवगति वाधित हो जाये।

उद्दीपनों का अंकन भी चित्रों में होता है, किन्तु केवल व्यक्त तथा स्थूल उद्दीपनों का। वाणी को किसी रेखा और किसी रंग से अंकित नहीं किया जा सकता, जवकि काव्य में इनका मानसचित्र प्रस्तुत करना सरल है। स्पष्ट है कि यह अन्तर अभिव्यक्ति के माध्यम का है, भावों और विचारों का नहीं, कल्पना का भी नहीं।

कल्पना के सम्वन्ध से भी काव्य और चित्र भिन्न-भिन्न होते हैं। काव्य और साहित्य की अवगति के लिए हम कल्पना को दो भूमिकाओं पर देखते हैं : प्रथम तो कवि या चित्रकार की कल्पना, द्वितीय पाठक, श्रोता या द्रष्टा की कल्पना। काव्य में कवि और पाठक दोनों की कल्पना को कुछ अधिक परिश्रम करना पड़ता है। भाव की आकृति की व्यवस्था करने के लिए कवि की कल्पना ही तो उपमानों को खोजकर लाती है और वही उपमानों के संयोजन से एक चित्रात्मक व्यवस्था करती है। पाठक या श्रोता कल्पना की आँखों से ही उस चित्रव्यवस्था का आकलन करता है। चित्र में रूप प्रस्तुत करने अथवा उसके स्थूलबोध के लिए कल्पना को इतना परिश्रम नहीं करना पड़ता।

दुहराने की आवश्यकता नहीं कि काव्य एवं चित्रकला में भाव की स्थिति महत्त्वपूर्ण है। भावरहित काव्य कोरा शाब्दिक खिलवाड़ है और भावरहित चित्र रंग और रेखाओं की कलाबाजी। काव्य के पढ़ने अथवा सुनने से जिस प्रकार रसानुभूति होती है, उसी प्रकार चित्रों को देखने से भी मन में रसोद्रेक होता है। सभी कलाओं में कलाकार अनुभूति को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए चित्रयोजना से काम लेता है। आकारहीन अनुभूति को शब्दचित्रों में सुनियोजित करना ही कविकर्म है, इसलिए काव्य के भावाभिव्यंजन में चित्र और बिम्बों की निर्मिति एक सहज और प्रमुख प्रक्रिया है। ऐसा करने पर ही कवि अपने गूढ़तम भावों को प्रेषणीय बनाने में समर्थ होता है। "चित्रमयता, काव्य के भाव में प्रभविष्णुता उत्पन्न करने के लिए, एक आवश्यक एवं प्रधान उपादान है। सामान्य उक्ति में दृश्य या क्रिया का वह प्रभाव नहीं पड़ता, जो उसके चित्ररूप में उपस्थित कर देने में पड़ता है।"[१] भाव की अभिव्यंजना कला का साध्य है, इसलिए कलाकार अभिव्यक्ति के विभिन्न साधनों के माध्यम से अभीप्सित भाव को प्रकट करने का यथासाध्य प्रयत्न करता है। कवि संश्लिष्ट चित्रनिर्माण कर भाव को प्रेषणीय ही नहीं बनाता वरन उसे इन्द्रिय बोधगम्य भी बना देता है।

हिन्दी कृष्णकाव्य में भाव

मध्यकालीन हिन्दी कृष्णकाव्य का वर्ण्य विषय भक्ति एवं शृंगार से विशेष सम्बन्धित रहता है। कृष्ण और राधा की प्रेम-केलियों से सम्पूर्ण मध्यकालीन हिन्दी कृष्णकाव्य प्रभावित होने के कारण भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन कृष्ण-काव्य का प्रमुख एवं केन्द्रित स्वर रतिभाव है। भगवद्विषयक रति, वात्सल्यरति एवं दाम्पत्यरति रतिभाव के प्रमुख पोषक अंग हैं। रति अथवा अनुरक्ति एक भाव है, भक्तिरस एवं शृंगार जिस पर आधारित है। भक्तिरस में स्थायी भाव भगवान के प्रति अनुराग है।[२] "रूपगोस्वामी ने भक्तिरस को माधुर्य अथवा उज्ज्वल रस माना है।" श्रीकृष्ण श्यामवर्ण होते हुए भी शुचिमेध्य तथा उज्ज्वल हैं। वैष्णव भक्ति में उज्ज्वल रस तक पहुँचने के लिए पूर्व के कतिपय सोपानों को काम में लिया गया है, जिसमें प्रेम-स्नेह, मान, प्रणय और राग के पश्चात अनुराग का सोपान आता है और वहाँ उज्ज्वल रस में परिणत होता है।[३] भक्तिकालीन कृष्णकाव्य का मुखर स्वर इसी भक्ति की शृंगारमयी भावधारा से सिंचित है। भक्तिकालीन कवियों ने लौकिक शृंगार की पृष्ठभूमि पर

१. देखिए, डॉ० मुंशीराम शर्मा : सूर का काव्यवैभव, पृ० ७९
२. ,, वही, पृ० ८१
३. ,, वही, पृ० ८२

अलौकिकता का अंकन किया है। भक्तिरस से सिंचित कविता का सम्बन्ध वैष्णव धर्म से है। प्रेम और भक्ति की कविता रतिभाव के अन्तर्गत होने के कारण शृंगाररस में ही आ जाती है। रीतिकालीन काव्यधारा का प्रमुख आधार ही नायक-नायिकाभेदपरक एवं स्वच्छन्द लौकिक शृंगार की भावभूमि प्रस्तुत करना रहा है। राधा-कृष्ण के बहाने शृंगारकाल के कवियों ने रतिभाव का जी खोलकर चित्रण किया है, जिसका विस्तृत विवेचन यथास्थान हो चुका है।

रतिभाव के अतिरिक्त मध्यकाल में वीररस और शान्तरस को भी विशेष महत्त्व दिया गया। शेष रसों की स्थिति गौण ही रही। राधा-कृष्ण की सौन्दर्योपासना में भक्त एवं कवि इस प्रकार लीन रहे कि राधा-कृष्ण के चरित्र में अन्य रसों के समावेश को शृंगार के अन्तर्गत ही समाहित कर दिया।[1]

राजस्थानी चित्रकला में भाव

राजस्थानी चित्रकला का मूल स्वर शृंगार है। संस्कृत के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों तथा मध्यकालीन हिन्दी कृष्णकाव्य के प्रमुख भाव रति या अनुराग को आधार बनाकर चित्रित की गयी शृंगारकालीन राजस्थानी चित्रकला (१६०० से १९०० ई०) में तत्कालीन सामन्ती वर्ग की शृंगारिकता तथा जनमानस की राधा-कृष्ण-सम्बन्धी लोकात्मक माधुर्यभावना का जितना विस्तृत चित्रण हुआ है, उतना अन्य किसी भाव का नहीं। राजस्थानी चित्रकला रसप्रधान है। उसे अधिक संयत, शास्त्रीय एवं भावमय बनाने का श्रेय काव्य को है। काव्यात्मक भावनाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रांकन इसमें विशेष रूप से हुआ है। यदि रस की दृष्टि से राजस्थानी चित्रकला का मूल्यांकन किया जाये तो इसमें शृंगाररस की प्रधानता ही सामने आयेगी। १६०० ई० से १९०० ई० तक ३०० वर्षों में निरन्तर शृंगाररस की प्रधानता का कारण दरबारी संस्कृति और वैष्णव सभ्यता का प्रसार जान पड़ता है।[2] राजदरबारों के आश्रय में पनपनेवाली चित्रकला में एक ओर ऐश्वर्य की अभिव्यक्ति और शृंगारभावना की व्याख्या हुई तो दूसरी ओर वल्लभ-सम्प्रदाय तथा अन्य सम्प्रदायों की राधा-कृष्ण-सम्बन्धी माधुर्यभावना ने जनमानस के चित्रकारों को धार्मिक भावना से दूर नहीं जाने दिया।[3] इस प्रकार राजस्थानी चित्रकला में राधा-कृष्ण की प्रेममयी लीलाओं का धार्मिक एवं सामन्ती वातावरण में उन्मुक्त चित्रण किया गया।

कृष्णकाव्य-सम्बन्धी राजस्थानी चित्रकला में शृंगार के उपरान्त वीररस

---

१. देखिए, केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० १
२. „ रणधीर सिन्हा : कविवर बिहारीलाल और उनका युग, पृ० १३३
३. „ नाथद्वारा उपशैली के अनेक चित्र एवं पिछवाइयाँ आदि

को महत्त्व मिला, किन्तु वीररसप्रधान प्रसंगों का आधार प्रमुखतया 'श्रीमद्-भागवत' ही रहा। श्रीकृष्ण की असुरसंहारक लीलाओं का चित्रण भागवत के आधार पर ही हुआ,[1] किन्तु ऐसे चित्रों के परिपार्श्व में तत्सम्बन्धी हिन्दी कृष्ण-काव्य के भावांकन का भी सूक्ष्म अध्ययन किया जा सकता है।

वीररस के बाद शान्तरस की प्रतिष्ठा हुई है। शेष रसों की स्थिति गौण रही है। शृंगाररस की तुलना में अन्य रसों का अंकन बहुत कम है। राजदरबारों के आश्रय के कारण वीररस को तो पोषण मिला, पर अन्य रसों की स्थिति दयनीय ही रही। शृंगाररस राजदरबारों के अतिरिक्त लोकजीवन और धार्मिक पीठों में भी परिप्लावित होता रहा।

काव्य और चित्रकला में भावसाम्य

मध्यकाल में शृंगार की भावधारा लोकसमाज तथा धार्मिक पीठों में भक्ति के नाम पर तथा सामन्ती वैभव में राधा-कृष्ण के बहाने नायक-नायिकाभेद के रूप में कृष्णकाव्य और राजस्थानी चित्रकला में एक साथ बहने लगी। इस भावसाम्य के कारण भक्तिकाव्य और रीतिकाव्य के भावगाम्भीर्य और वैचित्र्य को समझने के लिए तत्सम्बन्धी राजस्थानी चित्रों का अवलोकन भी आवश्यक है। भारतीय कला एक प्रकार के साहित्य की ही मार्मिक व्याख्या है। सत्य तो यह है कि ऐसे चित्रों में आकृति, भाव एवं विचारों का निवासस्थान है। "अतएव उस काल के चित्रावलोकन के बिना मध्यकालीन हिन्दी साहित्य का अध्ययन अधूरा ही रहेगा। उस समय कवि जो लिखता था, चित्रकार उसे अंकित करता था। इतना ही नहीं, अनेक बार चित्रकार जो अंकित करता था, उसे कवि की वाणी कविता में अनूदित करती थी। कितनी ही बार कवि जिस भाव का संकेत देता था, उसे चित्रकार अपनी अनुभूति एवं कल्पना से आकृतियों द्वारा अधिक स्पष्ट करके दिखलाता था। कविता के अनेक भाव, जिनके अर्थ विवादग्रस्त हैं, इन चित्रों की सहायता से स्पष्ट हो सकते हैं।"[2] संक्षेप में, काव्य और चित्रकला के भावसाम्य के कारण काव्यगत विभिन्न भावों का अध्ययन विस्तार एवं गम्भीरता से किया जा सकता है।

भावांकन

कवि और चित्रकार के कर्मविधान के दो पक्ष होते हैं : विभावपक्ष और

---

१. देखिए, असुरसंहार-सम्बन्धी अनेक चित्र, राजकीय संग्रहालय, कोटा, भारत कलाभवन, बनारस आदि में दर्शनीय

२. रायकृष्णदास : कलाभवन, बनारस का सूचीपत्र (भूमिका से)

भावपक्ष। कलाकार एक ओर तो ऐसी वस्तुओं का चित्रण करता है जो मन में कोई भाव उठाने या उठे हुए भाव को जगाने में समर्थ होती है, और दूसरी ओर उन वस्तुओं के अनुरूप भावों के अनेक स्वरूप अंकित करता है। एक विभाव-पक्ष है और दूसरा भावपक्ष।[1] कहने की आवश्यकता नहीं कि काव्य और चित्र-कला में दोनों अन्योन्याश्रित हैं, अतः दोनों रहते हैं। जहाँ एक ही पक्ष का अंकन होता है, वहाँ दूसरा पक्ष भी अव्यक्त रूप में रहता है। जैसे, नायिका के नख-शिख-सौन्दर्य का चित्रण लें तो उसमें भी आश्रय का रतिभाव अव्यक्त रूप में वर्तमान रहता है।[2] विभाव और अनुभाव के बिना स्थायी भाव रस की स्थिति को प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिए स्थायी भाव जब विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का पोषण पाकर आस्वाद्यता की स्थिति प्राप्त कर लेता है तभी 'रस' अभिधा का अधिकारी होता है। विभाव स्थायी भाव का कारण है। इसके दो भेद हैं—१. आलम्वन और २. उद्दीपन। जिस पर स्थायी भाव अव-लम्बित होता है, वह आलम्बन और जिसमें स्थायी भाव उद्दीप्त होकर आधिक्य को प्राप्त हो, उसे उद्दीपन कहते हैं। जब आन्तरिक भाव कर्मेन्द्रियों द्वारा बाह्य रूप से प्रकट होते हैं, तब वे अनुभाव कहलाते हैं। अनुभाव अगणित होते हैं जिन्हें सात्विक, मानसिक और कायिक तीन कोटियों में रखा जाता है। स्वाभा-विक रूप से प्रकट होनेवाले सात्विक, मन के उद्वेग आदि मानसिक और शारीरिक गतिसूचक क्रियाएँ कायिक अनुभाव कहलाते हैं। भावांकन के लिए अनुभाव विशेष उपयोगी होते हैं। चित्रकला के तो ये प्राण हैं, जिनका विस्तार से आगे विवेचन करेंगे। जल की भाँति अस्थायी रूप से तरंगित होनेवाले संचारी भावों के काव्य-गत महत्त्व का संकेत कर चुके हैं, किन्तु चित्रकला में संचारियों का चित्रण करना कठिन कार्य है। मध्यकालीन चित्रकला भावनामूलक होते हुए भी अधिकतर वहिर्मुखी (आब्जेक्टिव) ही रही है। अन्तर की पीड़ा या मनोविकारों को अभिव्यक्ति देने का कार्य आधुनिक कला ने किया है। आज की चित्रकला शारी-रिक सौन्दर्य या गठन पर उतना ध्यान नहीं देती, जितना कि अन्तर की मनो-व्यथा को संकेतित करने पर ध्यान देती है। मध्यकालीन चित्रकला प्रमुखतया वाह्यमुखी और आधुनिक चित्रकला अन्तर्मुखी (सब्जेक्टिव) अधिक है। आज की चित्रकला में संचारियों को अधिक खोजा जा सकता है, मध्यकालीन चित्रकला में कम। इसलिए राजस्थानी चित्रकला में भाव, विभाव एवं अनुभावों का चाक्षुषीकरण कर काव्यगत भाव, विभाव, अनुभाव आदि का विस्तृत एवं गहन-तम अध्ययन किया जा सकता है।

---

१. देखिए, रामचन्द्र शुक्ल : सूरदास, पृ० १५२
२. ,, वही, पृ० १५२

काव्य की भाँति राजस्थानी चित्रकला में भी यत्र-तत्र नवरसों की व्याप्ति उपलब्ध है, किन्तु काव्य की ही भाँति चित्रकला के स्वर में भी रसराज शृंगार ही प्रमुख रूप से व्याप्त रहा है। रतिभाव या रसराज शृंगार की व्यापकता के कारण केशव-जैसे महान् कवि ने तो शृंगार में नवरस की व्याप्ति मानी है, जिसमें व्रजराज कृष्ण उन नवरसों के नायक हैं। 'रसिकप्रिया' में श्रीकृष्णवन्दना के अन्तर्गत उन्होंने नायक श्रीकृष्ण के परिप्रेक्ष्य में सभी रसों का सुन्दर समावेश किया है।[1] तत्सम्वन्धी छप्पय पर आधारित मेवाड़शैली के चित्र[2] में कविता के भाव का चित्रांकन अत्यधिक रसात्मक बन पड़ा है। इस लघुचित्र के ऊपरी भाग में छप्पय अंकित है तथा नायक कृष्ण की नवरसलीला का अंकन नौ भागों में किया गया है। वृषभानुकुमारी राधा के लिए श्रीकृष्ण रसराज शृंगार का रूप धारण करते हैं। चीरहरणलीला द्वारा हास्यरस तथा माता यशोदा द्वारा अपने हाथ बँधवाकर वे करुणरस उत्पन्न करते हैं। केशी के प्रति क्रोध करके रौद्ररस, वत्सासुर का वध करने में वीररस और दावानलपान कर भयानकरस उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार बक की चोंच चीरकर वीभत्सरस, ब्रह्मा की बुद्धि को छलने में अद्भुतरस और सन्तों के विचारमग्न होने पर उनके हृदयों में बसने-वाले कृष्ण शान्तरस से युक्त होते हैं। चित्रकार ने श्रीकृष्ण की लीलाओं के परिप्रेक्ष्य में नौ रसों का जो अंकन किया है, वह नवरस के चित्रित उदाहरणों को समझने के लिए सुन्दर आधार है। विभिन्न रसों की उद्भावना के लिए चित्रकार ने कृष्ण की वेशभूषा तथा चेष्टाओं का भावानुकूल अंकन किया है। भागवत के आधार पर बने चित्रों में कृष्णलीलाओं का जैसा अंकन हुआ है, उसी की समता में चित्रकार ने इस चित्र का अंकन किया है। केशीवध, वकासुरवध, दावानलपान आदि के चित्रण में जो रूढ़ शैली बन गयी थी, उसका अनुकरण प्रायः सभी शैलियों के चित्रों में किया गया है।

रसराज शृंगार

नायक और नायिका के पारस्परिक प्रेमभाव को रति कहते हैं। उन प्रेमियों के मन में संस्काररूप से वर्तमान रति या प्रेम रसावस्था को पहुँचकर जब

---

१. श्री व्रषभानु-कुमारि-हेत सृंगार-रूप मय।
बास ह्रास-रस हरे, मातु-बंधन करुणामय।
केसी-प्रीति अति रौद्र, वीर मारो वत्सासुर।
मय दावानलपान, पियो वीभत्स बकी-उर।
अति अद्भुत बंचि बिरंचि-मति, सांत संततै सोच चित।
कहि केसव सेवहु रसिक जन, नवरसमय ब्रजराज नित ।।२।।

२. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्र संख्या ७

आस्वादनयोग्यता को प्राप्त करता है, तब उसे श्रृंगाररस कहते हैं। नौ रसों में श्रृंगाररस की प्रधानता है। इसे आदिरस भी कहते हैं और रसराज भी। संयोग और वियोग—जैसे दो पक्षों में फैले होने से श्रृंगाररस की व्यापकता और भी बढ़ जाती है। हिन्दी साहित्य की ही नहीं वरन् प्रायः सभी भारतीय कलाओं की प्रमुख विशेषता श्रृंगारपरकता रही है। अलौकिक एवं लौकिक जीवन को भारतीय कलाजगत के श्रृंगाररस में युगों-युगों से रसमग्न रखा है। हिन्दी कृष्ण-काव्य एवं राजस्थानी चित्रकला की प्रमुख भावना ही श्रृंगारपरकता है, जिसका विस्तृत विवेचन पीछे किया जा चुका है।

संयोग

नायक-नायिका की मिलनावस्था को संयोग कहते हैं। हिन्दी कृष्णकाव्य संयोगश्रृंगार का अनन्त भण्डार है। सूरदास, हरिदास, व्यास, श्रीभट्ट, नागरीदास, केशव, मतिराम, विहारी आदि मध्यकालीन कवियों ने राधा-कृष्ण के संयोग का भक्तिपरक विस्तृत भावांकन किया है, जिनके कतिपय पदों को आधार बनाकर राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियों में भावनामूलक चित्रण हुआ है। उन चित्रों के परिपार्श्व में भक्तिश्रृंगार तथा रीतिश्रृंगार की संयोगावस्था का सही मूल्यांकन किया जा सकता है। संयोगश्रृंगार विभिन्न क्रीड़ाविलास के द्वारा नित्य नवीन रूप धारण करता है। सुविधा के लिए राधा-कृष्ण के नित्यप्रति के क्रीड़ाविलास को निम्नांकित भागों में विभाजित कर राधा-कृष्ण के संयोग-श्रृंगार का राजस्थानी चित्रकला के परिपार्श्व में विस्तृत अध्ययन किया जा सकता है :

१. जलक्रीड़ा, २. हिण्डोलक्रीड़ा, ३. वनविहार या कुंजलीला ४. लीला-विलास, ५. वसन्तलीला, ६. होली आदि।

१. जलक्रीड़ा

राधा-कृष्ण के रतिभाव को उद्दीप्त करने के लिए जलक्रीड़ा का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। यमुना ब्रज के जीवन का केन्द्रस्थल है। उसके स्वच्छ जल में कृष्ण, राधा और अन्य गोपियों के साथ जलक्रीड़ा कर, संयोगश्रृंगार का सुख लेते हैं।[1]

रासलीला से थककर वे सभी गोपियों-सहित यमुनाजल में श्रम मिटाते हैं। गोपियों के बीच में कृष्ण सुशोभित हैं तथा सभी मिलकर जलक्रीड़ा करते हैं। कभी राधा उन पर जल छींटती हैं, कभी बिहारी राधा के गलबाँही डालकर

---

१. देखिए, सूरसागर, खण्ड १, पद १७७४-१७८६

आनन्द उपजाते हैं। कोई गोपी पानी में खड़ी है तो कोई जल में तैरकर एक-दूसरी से छेड़खानी कर रति उपजा रही है। कभी कृष्ण जल में ही श्यामा को अंक में भरकर आलिंगनसुख देते हैं। कहीं वे यमुना में स्नान करती हुई गोपियों के वस्त्रों को चुराकर चीरहरणलीला कर रस उपजाते हैं[1], तो कहीं वैशाखमास में माधव और लाडली जमुनाजल में क्रीड़ा करते हैं।[2] चीरहरणलीला को आधार बनाकर राजस्थानी की लगभग सभी शैलियों और उपशैलियों में अनेक चित्र बने हैं,[3] जिनमें कृष्ण वस्त्राभूषण चुराकर कदम्ब पर चढ़े बैठे हैं और गोपियाँ जल में अपने उरोजों को हाथों से ढाँपे लज्जित खड़ी हैं। चीरहरण के लगभग सभी चित्र भागवत-प्रसंग के आधार पर एक ही ढंग के बने मिलते हैं। रासलीला, कालिय नागदमनलीला आदि की भाँति प्रसंग भी अत्यधिक प्रचलित रहा है।

अलवरशैली में चित्रित बारहमासा की चित्रावली के अन्तर्गत वैशाख के चित्र[4] में कृष्ण और राधा तथा गोपियों की जलक्रीड़ा का चित्रण आनन्दराम कवि के सवैये के आधार पर हुआ है, जिसमें चित्रकार ने काव्य के भाव के अनुरूप चित्र अंकित कर जलक्रीड़ा का संयोगसुख सहज रूप में प्रदर्शित कर दिया है। एक दोहा एवं सवैया चित्र के ऊपरी भाग में इस प्रकार लिखा हुआ है :

उडि पराग जर अलि अवलि, फूले सरस पलास।
मन हूं मैन तंबूतने बने घनै चहु पास ॥१॥
फूली है कुंज पतासथली, तहां अली अलि गूंज सुहाई।
चंदन सौ चरचै चहूं अंग सुडोलत संग दिये गरबाहीं।
कंज गुलाब के फूलन की रचि सेज सुगंध कदंब की छाहीं।
माधव मास में माधव लाडिली क्रीड़त है जमुना जल माहीं ॥

वैशाखमास में गरमी तेज हो जाती है। पलाश-वन दहकने लगता है। आम्र-बौर के कारण भौरे गुंजारने लगते हैं। ऐसे समय में चन्दन से चर्चित अंगवाले राधा-कृष्ण गलबाँही डाले यमुनाजल में क्रीड़ा करते हैं। चित्र में राधा-कृष्ण गलबाँही डाले यमुनाजल में खड़े अन्य गोपियों की जलक्रीड़ा को देखकर प्रसन्न होकर संकेत कर रहे हैं। गोपियाँ नग्न होकर जलक्रीड़ा में मग्न हैं। उनकी मुद्राएँ एवं चेष्टाएँ रतिभाव को उद्दीप्त करती हैं। एक गोपी किनारे के घाट पर

---

१. चीरहरणलीला, सूरसागर, खण्ड-१, पृ० ५२४-५३८
२. देखिए, राजकीय संग्रहालय, अलवर में वैशाखमास का चित्र, संख्या १६५८ तथा प्रस्तुत ग्रन्थ, चित्रसंख्या १७
३. लगभग सभी संग्रहालयों और संग्रहकर्त्ताओं के पास उपलब्ध हैं
४. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या १७

बैठी चकित है। प्रकृति-परिवेश भाव को उद्दीप्त करनेवाला है। पृष्ठभाग में कुंजभवन है, जिसमें कमल और गुलाब के फूलों से सुसज्जित पर्यंक बिछा है। भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से उस चित्र को व्यतिरिक्त चित्र कह सकते हैं, क्योंकि काव्य के भावों से भी अधिक चित्रण इसमें हुआ है।

२. हिण्डोलक्रीड़ा

संयोगश्रृंगार के रूप को पुष्ट करने में राधा-कृष्ण की हिण्डोलक्रीड़ा का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिण्डोल के श्रृंगारिक वर्णन में झूला झूलते हुए नायक-नायिका राधा-कृष्ण की कामोद्दीपक लीलाओं का विशेषतया भावाभिव्यंजन हुआ है। श्रावणमास के सुरम्य वातावरण में हिण्डोले में झूलने की लीला का कृष्णभक्ति-परम्परा में विशेष महत्त्व है। श्रावण में हिण्डोललीला मन्दिरों में बड़ी धूम-धाम से मनायी जाती है, इसीलिए सूरदास और अन्य कृष्णभक्त कवियों ने हिण्डोललीला का विस्तार से चित्रण किया है।[1] ऐसे काव्यचित्रों में तीन बातें प्रमुख हैं—प्रथम, प्रकृति का सुरम्य उद्दीपन वातावरण, द्वितीय, स्वर्णखचित रेशमी डोरों से निर्मित झूले का अंकन और तृतीय, राधा-कृष्ण और अन्य गोपियों की मुद्राओं और चेष्टाओं का वर्णन। सूर के पदों में उपर्युक्त तीनों बातें काव्यात्मक ढंग से अभिव्यक्त हुई हैं। श्रावणमास में चारों ओर हरी-हरी भूमि होती है, काले कजरारे बादलों में बिजली दमकती रहती है तथा श्वेत बकपंक्तियाँ और मोर, पपीहा, सुआ, कोकिल आदि प्रकृति के सुरम्य वातावरण की शोभा बढ़ाते रहते हैं।[2] राधा-कृष्ण के झूलने के लिए हिण्डोला विश्वकर्मा ने बड़े परिश्रम से निर्मित किया है। सोने का बना अनेक प्रकार के मोतियों से जड़ा तथा अनेक रंगों के रेशमी कपड़ों से लिपटा झूलना है।[3] उस पर रंग-बिरंगे वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर राधा-कृष्ण बैठे हैं। अन्य गोपियाँ तथा परिचारिकाएँ उनकी सेवा में खड़ी हैं, कोई तानपूरा लेकर हिण्डोल राग सुना रही हैं और कोई उन्हें झुला रही हैं। अलवरशैली के बारहमासा के श्रावणमास-सम्बन्धी चित्र[4] में आनन्दराम कवि के बारहमासा-सम्बन्धी पदों के आधार पर जो झूलने का चित्र बना है, उसमें सूरदास की उपर्युक्त सभी कल्पनाओं का सुन्दर चित्रांकन हुआ है। प्रकृति-परिवेश, हिण्डोल तथा राधा-कृष्ण और गोपियों का अंकन ऐसा है कि जिसके आधार पर सूर के झूलना-सम्बन्धी पदों का अध्ययन

---

१. देखिए, सूरसागर, खण्ड-२, पद ३४४७ से ३४६१
२. ,, वही, पद ३४४९
३. ,, वही, पद ३४५०
४. ,, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट, चित्रसंख्या १८

भावांकन, कलांकन, रंगतत्व आदि की दृष्टि से सहज हीं किया जा सकता है। मध्यकाल में सामन्ती वर्ग में झूला कैसा बनता था, इसका ज्ञान काव्य से उतना नहीं होता जितना चित्रकला के अवलोकन से होता है।

राजस्थानी चित्रकला में राग-रागिनियों के स्वरूपों का चित्रण उसकी निजी विशेषता है। राग हिण्डोल, मेघ, मेघ-मलार आदि के स्वरूप चित्रांकित करने में चित्रकारों ने उपर्युक्त कल्पना को ही आधार बनाया है, इसलिए ऐसे चित्र राजस्थान की विभिन्न शैलियों में विशेष रूप से उपलब्ध हैं[1], जिनके परिपार्श्व में काव्य के भाव को और राग के स्वरूप को भली प्रकार समझा जा सकता है।

३. वनविहार या कुंजलीला

वनविहार, कुंजलीला, नौकाविहार आदि ऐसे प्रसंग हैं जो नायक-नायिका की संयोगावस्था में कामोद्दीपन करते हैं। हिन्दी कृष्णकाव्य में ऐसे प्रसंगों का यथास्थान वर्णन हुआ है।[2] कृष्ण और राधा की रंगरेलियाँ अधिकतर यमुनातट, वंशीवट, निकुंज, कछार आदि स्थानों पर हुई हैं, अतः प्रकृति के स्वच्छन्द परिवेश में संयोगलीलाओं का जो वर्णन हिन्दी कृष्णकाव्य में हुआ है उसके आधार पर राजस्थानी चित्रकला में प्रमुखतया किशनगढ़, बूंदी, मेवाड़ और जयपुर शैलियों में, विशेष चित्रण हुआ है। राधा-कृष्ण का सहेट-स्थल ही निकुंज है, जिसमें वे गलबाँही डालकर विहार करते हैं।[3] किशनगढ़शैली में नागरीदास के वनविहार तथा नौकाविहार के पदों पर आधारित जो चित्र मुसव्विर निहालचन्द ने बनाये हैं, वे चित्रकला एवं काव्य के भावांकन के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।[4] इस चित्र में नागरीदास के निम्नांकित पद को आधार बनाकर जो अंकन हुआ है, वह काव्य के भाव से व्यतिरिक्त चित्रण का अनुपम उदाहरण है :

> जमुना जगमग जोन्ह जामिनी कमल कूल सुखकारी।
> मिलवत वीन प्रवीन सहचरी गावत परम पियारी॥
> कबहुंक नीरज नीर कर लेत है मामिनि स्याम सहारी।

काव्य की सी वर्णनात्मकता लाने के लिए तथा अनेक भावों की अभिव्यक्ति के लिए चित्रकार चित्र की पृष्ठभूमि को एकाधिक भागों में विभाजित कर भावां-

---

१. देखिए, इतिहास संशोधक मण्डल, पूना का संग्रहालय तथा सिटी पैलेस म्युजियम, जयपुर
२. देखिए, सूरसागर, खण्ड-२, यमुनागमन-प्रसंग, पृ० ९२६-९३७ तथा नागर-समुच्चय में वनविहार एवं नौकाविहारलीला
३. देखिए, श्रीभट्ट के पद पर आधारित जयपुरशैली का चित्र, प्रस्तुत ग्रन्थ, चित्र संख्या १५
४. देखिए, ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेण्टिग, फलक-९

कर करता है। किशनगढ़शैली के इस चित्र में भी सघन कुंजभवन के पास राधा-कृष्ण को प्रेमालाप करते अंकित किया गया है एवं उससे ऊपर जमुनाजल का विशाल परिवेश एवं किनारे पर लगी नौका और उसमें बैठे राधा-कृष्ण का मन-मोहक अंकन हुआ है। उससे भी ऊपर की पृष्ठभूमि में दूर-दूर तक फैला प्रकृति-परिवेश, सन्ध्या की सतरंगी आभा का चित्रण अत्यधिक भावपरक वन पड़ा है, जिसका श्रेय नागरीदास की काव्यगत कल्पना को जाता है। किशनगढ़शैली में नागरीदास से पूर्व तक के चित्र वास्तविकतामूलक हैं। उनके सम्पर्क में आते ही निहालचन्द की चित्रांकन की पद्धति वास्तविकता से आदर्श एवं भावनामूलक चित्रण की ओर झुक गयी। नागरीदास के काव्य में उसे भावनामूलक एवं चित्र-कला सम्मत विषय भी वहुलता से प्राप्त हो गये।

कुंज में विहार करने के कारण कृष्ण का नाम ही भक्तों ने कुंजविहारी रख लिया है। वे राधा के गले में गलबाँही डालकर वृन्दावन की कुंज वीथियों में मदमस्त होकर विहार करते हैं।[1] हरिदास के कुंजविहार के पद पर आधारित नाथ द्वारा शैली के चित्र[2] में प्रकृति के उद्दाम वातावरण का जो लोककलात्मक चित्रांकन हुआ है, वह राधा-कृष्ण के गलवाँही डाले संयोगसुख को और भी मादक बना देता है। इस चित्र में दो सखियाँ आश्रयरूप में कुंजविहार का रस ले रही हैं। राधा और कृष्ण का सुसज्जित वेश में गले में बाँहें डाले आत्मविभोर होकर एक-दूसरे को देखना सुन्दर अनुभावों की अभिव्यक्ति करता है। राजस्थानी चित्रकला की यह विशेषता है कि ऐसे संयोग एवं संयोगपरक चित्रों में, जो भक्तिशृंगार के पदों पर आधृत हैं, नायक-नायिका की सामान्य दृष्टि के परे एक अलौकिक छटा अन्तरव्याप्त रहती है जो लौकिक शृंगार की वजाय अलौकिक भाव, भक्तिरस और कलात्मक दृष्टि को अभिव्यक्त करती है। श्रीभट्ट के पदों पर आधारित चित्रों[3] में अंकित कुंजविहार-सम्वन्धी भावधारा का अध्ययन भी इसी श्रेणी में विस्तार से किया जा सकता है। सहेट-स्थल एवं कुंजनिर्माण की सामन्ती शृंगारकालीन प्रवृत्ति का अनुमान भी इन चित्रों से सहज ही लगाया जा सकता है।

४. लीलाविलास

लीलाविलास में कृष्ण की शृंगारपरक सभी लीलाएँ आ जाती हैं, जिनमें रासलीला, दानलीला, पनघटलीला आदि प्रमुख हैं। भक्तिमार्ग की विशेषता

---

१. सूरसागर, खण्ड १, पद १८०५ तथा वृन्दावनविहार-प्रसंग
२. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ६
३. वही, चित्रसंख्या ८, १५, १६

हरिलीला में चरितार्थ होती है। कृष्ण की लीला आनन्दमयी है, रसमयी है। हिन्दी कृष्णकाव्य कृष्ण की लीलाओं से ओतप्रोत है। उनकी शृंगारमयी लीलाओं में रासलीला सर्वोपरि है। "रास शब्द रस से बना है।" 'रसो व सः' अर्थात भगवान स्वयं रसरूप हैं, आनन्दरूप हैं।"[1] एक विचार से यह लीला शुद्ध रूप से अध्यात्मक्षेत्र की घटना है। आध्यात्मपक्ष में कृष्ण परमात्मा हैं और राधा तथा गोपियाँ अनेक जीव। मुक्त जीव परमात्मा के साथ क्रीड़ा-हेतु उसकी लीला में भाग लेते हैं। गोपिकाएं भी कृष्ण के साथ शरत्-पूर्णिमा की चटक चाँदनी में यमुना के पुलिन पर रास रचती हैं, जिसका भागवतपुराण की कल्पना के आधार पर सूरदास[2] तथा अन्य भक्त कवियों ने यथास्थान चित्रण किया है। लीलाविलास के चित्रों में रासलीला की कल्पना को आधार बनाकर राजस्थानी शैलियों में बहुतायत से चित्र बने हैं,[3] जिनके आधार पर रासलीला की शृंगारपरकता, गत्यात्मकता, लयात्मकता तथा आध्यामिकता का चाक्षुषीकरण किया जा सकता है। ऐसे चित्रों में रंगबिरंगे वस्त्राभूषण, चाँदनी रात का मादक प्रभाव, कृष्ण की बहुस्यामिता (एकोहं बहुस्यामि) तथा प्रकृति के उद्दीपक वातावरण की रसात्मकता का सहज ज्ञान हो जाता है।

संयोगशृंगार में दानलीला का प्रसंग अत्यधिक रत्यात्मक है। कृष्ण दधिदान लेने के बहाने गोपियों से रोज मार्ग में 'अचगरी' करते हैं।[4] कभी उनसे जोवनदान माँगते हैं[5] तो कभी हार तोड़ देते हैं और कंचुकी फाड़ देते हैं। कभी दही की मटकी छीन लेते हैं तो कभी हार। कभी उनका आँचल पकड़कर दही छीनते हुए सभी सखाओं के साथ प्रेमपूर्वक दही खाते हैं। दानलीला-प्रसंग को लेकर न जानें कितनी ही कल्पनाओं को कृष्णभक्त एवं रीतिपरक कवियों ने अपने काव्यांकन द्वारा अभिव्यक्ति दी है। राजस्थानी शैली के विभिन्न चित्रकारों ने दानलीला-प्रसंग को आधार बनाकर जो चित्र बहुलता से बनाये हैं, वे काव्य के भावों के अध्ययन-हेतु विशेष सहायक हैं।

मेवाड़शैली के एक चित्र[6] में दयासखी के पद को आधार बनाकर जो दानलीला का चित्र अंकित किया गया है, उसमें सूरदास की कल्पनाओं का भी सहज संयोग

---

१. डॉ० मुंशीराम शर्मा : सूरदास का काव्यवैभव, पृ० १७१
२. सूरसागर, खण्ड-१, पृ० ६४९-६५६
३. देखिए, जयपुरशैली का राजा प्रतापसिंह के समय का रासलीला-सम्बन्धी प्रसिद्ध चित्र, सिटी पैलेस म्युजियम, जयपुर। बूँदीशैली एवं मारवाड़शैली में कुँ० संग्रामसिंह के निजी संग्रह के चित्र
४. सूरसागर, खण्ड-१, पद २०८०, २०९६
५. वही, पद २०८७, २०९३
६. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्र संख्या २०

द्रष्टव्य है। चित्र के ऊपरी भाग में पद स्पष्टरूप से इस प्रकार अंकित है :

हमारौं दान देहुं व्रज नारी।
मदमाती गजगामिनी डोले तू दधी वेचन हारी।।
रूप तोही विधना ने दीनों ज्यों चन्दा उजियारी।
मटुकी सीस कटीले नहना मोतियन माँग सवांरी।।
हार हमेल गले में राजे अलकें घूंघर वारी।
या व्रज में जेती सूंदर है सब हम देखी भारी।।
श्याम सूंदर तेरी या छवी पर बार-बार जात वलीहारी।।

पद का भाव स्पष्ट है। काछनी काछें तथा वैजन्तीमाला धारण किये कृष्ण अपने एक सखा के साथ गोपी से दान माँग रहे हैं। तीनों गोपियों की तथा कृष्ण और सखा की आंगिक चेष्टाएँ अत्यधिक सजीव एवं भावोत्तेजक बन पड़ी हैं। कृष्ण का एक हाथ से गोपी का आँचल पकड़ना तथा दूसरे से इशारा कर दान माँगना तथा गोपी का उँगलियों के इशारे से कुछ कहना गत्यात्मक अनुभावों की सुन्दर सृष्टि करते हैं। निश्चय ही ऐसे चित्रों के आधार पर दानलीला के अचगरी-पूर्ण कार्यकलापों का सहज अध्ययन किया जा सकता है।

केशव की 'रसिकप्रिया' के सवैये[1] पर आधारित बूंदीशैली का गोपी द्वारा कृष्ण को छकाने की भाव भंगिमा का एक अत्यधिक सुन्दर दानलीला का चित्र[2] राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में 'रसिकप्रिया फ्रॉम बूंदी, कोटा' में विशेष द्रष्टव्य है। यह चित्र प्रकृति-परिवेश तथा कृष्ण और गोपी के रूपांकन की तथा काव्यगत भावांकन की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व का है। गोपी भी बड़ी चालाक है। आज वह कृष्ण को ही छकाना चाहती है, इसलिए झूठ-मूठ ही दूध के छींटे लगाकर खाली मटका लिये जा रही है। कृष्ण न आव देखते हैं न ताव, शीघ्र ही गोपी के सर पर रखे मटके से ही 'पतूखी' में दही उडेलना चाहते हैं, पर उन्हें निराश होना पड़ता है। पतूखी वहीं पटक करके खिसियाकर चल देते हैं और गोपी मुस्कराकर व्यंग्य कसती है, "अरे, दधिदान तो लेते जाओ!" चित्रकार ने इस भाव को अत्यधिक कुशलता से चित्रांकित किया है। उसने कृष्ण के अनुभावों को दो भागों में विभाजित कर काव्य के भाव का अंकन सहज ही में कर दिया

---

१. सखि बात सुनो इक मोहन की निकसी मटुकी सिर री हलकै।
पुनि बोधि लई सुनिये नत-नारू, कहूँ कहूँ बुंद करी छलकै।
निकसीं उहि गैल हुते जह मोहन लीनी उतारि जबै चलकै।
पतुकी धरि स्याम खिसाइ रहे उत ग्वारि हँसी मुख आंचर कै।।१७।।
—केशव-ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० ८३

२. देखिए, प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेण्टिग, फलक-७

है। प्रथम भाग में कृष्ण को मटके से पतूखी में दूध उड़ेलते तथा दूसरे में पतूखी पटककर खिसियाकर जाते हुए कृष्ण का अंकन है। ऐसी वर्णनात्मकता का अंकन करने के लिए चित्रकार दोनों चित्रों के बीच में अधिकतर पेड़ का अंकन कर अलगाव दिखाता है। ग्वालिन दूध-दही बेचने प्रातःकाल जाती है, इसलिए चित्रकार की विशेषता यह है कि उसने नदी में कमलों को खिलता हुआ तथा आकाश में सूर्योदय की सतरंगी आभा को अंकित कर वातावरण को अधिक सरस एवं रंगीला बना दिया है। पेड़-पौधों के अंकन में बूंदीशैली की भव्यता दर्शनीय है। चित्र की सबसे बड़ी विशेषता है कृष्ण की वेशभूषा का अंकन। सर पर जरीकोर की पगड़ी, श्वेत अंगरखा, सुनहरा दुपट्टा और कमरबन्द, लाल जामा तथा पैरों में सुनहरी खड़ाऊँ उनकी सहज शोभा को और भी बढ़ा रहे हैं। निश्चय ही चित्रगत भाव काव्यगत भाव से होड़-सी लगा रहे हैं। ऐसे व्यतिरिक्त चित्रों के आधार पर काव्य का भाव और भी सरस एवं प्रभावोत्पक बन जाता है।

५. वसन्तलीला

ऋतुराज वसन्त में रसराज शृंगार की कामोत्तेजक उद्दाम भावनाएँ अधिक मुखर हो उठती हैं। नवीन कोपलों तथा फूलों के अपार रंगविरंगे वैभव से प्राकृतिक परिवेश महक उठता है। भक्तिशृंगार एवं रीतिशृंगार के उद्दाम मांसल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में वासन्ती वातावरण का योगदान कम महत्त्व का नहीं है। सूर[१]—जैसे कृष्ण भक्त कवियों एवं केशव[२]—जैसे आचार्य और बिहारी[३]—जैसे रीतिपरक कवियों ने वसन्त के मादक वातावरण में राधा-कृष्ण की संयोगलीलाओं का जी भरकर भावांकन किया है। उनके काव्य के तत्सम्बन्धी पदों को आधार बनाकर राजस्थानी चित्रकला में जो चित्रण हुआ है, वह उद्दीपक प्रकृति-सौन्दर्य की दृष्टि से व्यतिरिक्त चित्रावली का सुन्दर उदाहरण है। किशनगढ़[४] और बूंदी[५] शैलियों में तो वासन्ती वातावरण को जैसे साकार कर दिया है।

१८वीं शती के बूंदीशैली के चित्र में केशव की 'कविप्रिया' के चैत मास-सम्बन्धी छन्द के आधार पर जो चित्रण[६] हुआ है, वह वसन्त के मादक सौन्दर्य को

---

१. देखिए, सूरसागर, खण्ड-२, वसन्तलीला, पद ३४६२-३५४०
२. ,, केशव-ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० १३६, १५७
३. ,, बिहारी-रत्नाकर, दोहा-८४, ४९६
४. ,, ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेंण्टिग, फलक-९, १२
५. ,, प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेण्टिग, फलक-५, ७ तथा प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ८
६. देखिए, कैटलॉग ऑफ मीनियेचर पेण्टिग इन बड़ौदा म्युजियम, फलक-सी

साक्षात अंकित कर देता है। चित्र के ऊपरी भाग में छप्पय इस प्रकार से है :

फूली लतिका ललित तरूनितर, फूले तरुवर।
फूली सरिता सुभग, सरस फूले सब सरवर।
फूली कामिनि, कामरूप करि कंतनि पूजहिं।
सुक सारी कुल हसैं, फूली कोकिल कल कूजहिं।
कहि 'केसव' ऐसी फूल महं सूल न फूलहिं लाइये।
पिय आप चलन की का चली चित्त न चैत चलाइये ॥२४॥[1]

इस चित्र के वासन्ती वातावरण को भावांकनात्मक एवं कलांकनात्मक अध्ययन के लिए दो भागों में विभाजित किया जा सकता है : प्रथम, प्रकृति का स्वच्छन्द वातावरण, द्वितीय, राजपूतशैली का सामन्ती स्थापत्यवैभव, उसमें वार्तालाप करते हुए राधा-कृष्ण का अंकन, पतझड़ के उपरान्त कुसुमित तरुलताओं, सरोवरों में विकसित कमलों, हरिण, मोर, शुक, कोकिल आदि जीवों, कामवाण प्रक्षेपण आदि से सम्बन्धित प्रकृति-परिवेश का चित्रण काव्यगत प्रकृतिचित्रण से कहीं अधिक बढ़-चढ़कर हुआ है। बूंदीशैली का स्थापत्य, कला की दृष्टि से, सर्वोत्तम होता है जिसका अनुमान इस चित्र के स्थापत्य से भलीभाँति हो सकता है। राधा ऐसे वासन्ती मादक वातावरण में कृष्ण को चैतमास में विदेश जाने से वर्जित कर रही है। राधा एवं अन्य नारियों के आंगिक अनुभावों का अंकन चित्र में कविता के अनुरूप है।

वसन्त के वातावरण में प्रकृति जिस प्रकार सोलहशृंगार सजाकर रोमांचित हो उठती है, उसी प्रकार राधा, कृष्ण और अन्य गोप-गोपियाँ भी अनेक प्रकार के शृंगार सजाकर नाच उठते हैं। कृष्ण का नृत्यगोपाल का स्वरूप या तो रासलीला में ही देखने को मिलता है या वसन्त में ही। वसन्त में उनकी मुरली मुखर हो उठती है। गोपियाँ डफ और मंजीर बजाती हैं तथा अन्य लोग ढोल, मृदंग, शहनाई आदि बजाते हैं। ऐसे में कृष्ण का नृत्य करना गोपियों को मुग्ध कर लेता है। 'सूरसागर' में ऐसे प्रसंग, वसन्तोत्सव एवं होली के पदों में, भरे पड़े हैं।[2] सूर के पद पर आधारित १६५०-५१ ई० के मेवाड़शैली के एक चित्र[3] में वसन्त के वातावरण एवं वसन्त के समय के कार्यकलापों का पद के अनुरूप अंकन हुआ है। चित्रकार ने चित्र की पृष्ठभूमि को तीन भागों में बाँटकर मानो पद की वर्णनात्मकता का ही अनुरूपण किया है। प्रथम भाग में राधा और अन्य

---

१. केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० १५७
२. देखिए, सूरसागर, खण्ड-१, पद ११३१-११७४
३. ,, गोपीकृष्ण कानोड़िया, कलकत्ता के निजी संग्रह में तथा डॉ० मोतीचन्द्र : मेवाड़ पेण्टिंग, फलक-३

दो गोपियाँ कृष्ण के प्रति अनुराग की चर्चा कर रही हैं। दूसरे में छः कलावन्त ढोल, मृदंग, शहनाई आदि बजा रहे हैं और तीसरे में यमुना किनारे फूलों से सुसज्जित पेड़-पौधों की छाया में कृष्ण मुरली बजाते हुए नाच रहे हैं तथा गोपियाँ डफ और तालियाँ बजा रही हैं। एक सखी रंग घोलने की मुद्रा में अंकित की गयी है। पद के भाव का इतना सुन्दर समन्वय अन्यत्र दुर्लभ ही है और लोककलात्मक लाल, पीले, नीले रंगों की आभा विशेष दर्शनीय है। सारा वातावरण एवं कृष्ण और गोपियों तथा कलावन्तों की आंगिक चेष्टाएँ संयोग-शृंगार के भाव को मुखर कर देती हैं। गीत-संगीत (रागरागिनी) के चित्रों में वसन्त के स्वरूप को अधिकतर इसी रूप में अंकित किया गया है।[१] अतः वसन्त राग के चित्रों के आधार पर ऐसे पदों की भावपरकता का अध्ययन भी भली प्रकार किया जा सकता है।

६. होली

होली का त्यौहार भारतीय त्यौहारों में सर्वाधिक रंगीन, रोचक और कामोत्तजक है। इसमें सारी मर्यादाएँ भंग हो जाती हैं। एक तो वसन्त का मादक वातावरण, दूसरे रंग खेलने की उन्मत्तता। यही कारण है कि होली का त्यौहार अधिक सरस, मादक एवं ऐन्द्रिय (सेन्सुअस) हो उठता है। शृंगार की संयोग-परक भावना स्वच्छन्दता के कारण अधिक मुखर हो उठती हैं। कृष्णभक्त कवियों ने राधा, कृष्ण और गोपियों की होली का विस्तार से वर्णन किया है।[२] रीति-परक काव्य में भी राधा-कृष्ण के वहाने नायक-नायिकाओं की होली-सम्बन्धी लीलाओं का यथास्थान वर्णन उपलब्ध है। वसन्त से ही होली की तैयारियाँ प्रारम्भ हो जाती हैं। सर्वत्र रंग-ही-रंग व्याप्त हो जाता है। गोप और गोपियों का 'टोल' फाग खेलने के लिए ब्रज की वीथियों में निकल जाता है।[३] कंचन के माट में अनेक प्रकार के रंग घोले जाते हैं। वे चोवा, चन्दन, अगरू, अरगजा आदि छिड़कते फिरते हैं।[४] कृष्ण रत्नजटित सोने की पिचकारी लिये फाग खेलते फिर रहे हैं। पचासों रंग की गुलाल है, जिसके कारण सारा वातावरण लाल हो उठा है।[५] सभी लोग डफ, चंग, मंजीर, ढोल, शहनाई आदि बजाते हैं और धम्मार

---

१. देखिए, गीतगोविन्द पर आधारित वसन्त राग का चित्र, डॉ० मोतीचन्द्र : मेवाड़ पेण्टिग, फलक-५
२. देखिए, सूरसागर, खण्ड-२, पद ३४७०-३५४०
३. वही, पद ३४८८
४. वही, पद ३४९२
५. उडत गुलाल लाल भये बादर,
रंगि गये सिगरे अटा अटारी। —वही, पद ३४९०

गाते तथा स्वाँग भरकर नाचते फिरते हैं।

राजस्थानी चित्रकला की सभी शैलियों में होली के रंगीले त्यौहार में फाग खेलने, धम्मार गाने और नाचने का वहुलता से चित्रण हुआ है। चित्रकारों को रंगों का खेल खेलने का अवसर भी फाग के चित्रांकन में ही रहता है। होली से सम्बन्धित फागलीला के सारे ही चित्र समूहचित्रों की श्रेणी के हैं जिनमें भावाकुलता, उन्मत्तता, उद्दाम श्रृंगारिकता एवं रंगमिश्रण और अनुभावों की विविधता प्रचुर मात्रा में चित्रांकित हुई है।

दयासखी के पद[1] पर आधारित मेवाड़शैली के इस चित्र[2] में फागोत्सव के क्रीड़ाविलास की कल्पना अंकित की गयी है जिसके आधार पर श्रृंगारकाल में होली खेलने की सामन्ती रीति का सहज ही ज्ञान हो जाता है। भावांकन एवं कला की दृष्टि से यह चित्र व्यतिरिक्त चित्र कहा जा सकता है, क्योंकि पद इतना काव्यात्मक नहीं, जितना चित्र कलात्मक है। राधा अन्य गोपियों की मण्डली के साथ ऊपर छज्जों में खड़ी होकर कृष्ण पर पिचकारी से रंग एवं 'बूका' भरकर गुलाल डाल रही हैं। नीचे से कृष्ण कनकपिचकारी से राधा पर रंग बरसा रहे हैं तथा अन्य गोपियाँ डफ और ढोलक वजा रही हैं। चित्र में अनुभावों की बहुलता के कारण गत्यात्मकता अधिक है। मौलिक चित्र[3] में रंगयोजना भी कमाल की है।

संक्षेप में राधा, कृष्ण और गोपियों के क्रीड़ाविलास का जो भावांकन एवं चित्रांकन हिन्दी कृष्णकाव्य एवं राजस्थानी चित्रकला में हुआ है, वह संयोगश्रृंगार की दशाओं का अध्ययन करने के लिए पारस्परिक सहयोग का विषय बन सकता है। ऐसा करने पर काव्य एवं चित्रकला की अनेक भावपरक एवं अर्थपरक गुत्थियाँ सुलझ सकती हैं।

सम्भोग

जहाँ नायक और नायिका की संयोगावस्था में पारस्परिक रति रहती है वहाँ सम्भोगश्रृंगार होता है। इसमें विप्रलम्भ और संयोग ही अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। विप्रलम्भ की विरह-उद्विग्नता तथा संयोग की क्रीड़ाविलासलीलाओं के मूल में भी सम्भोगसुख की आकांक्षा रहती है। प्रेम की चरम परिणति और जगत का

---

१. होरी रे मोहन रंग होरी ।। काल हमारे आँगन गारी दे गयौ सो कोरी ।। आज अचानक हमरे द्वारे खेलत रंग होली ।। गाल गुलाल दृगन में अंजन बेंदी भाल लगाऔ री ।। धनि गोकुल धनि वृन्दावन जह यह फाग रचौरी ।। दयासखी या नीठुर नन्द को कीनी मोसो जोरा जोरी ।।
२. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या १९
३. „ राजकीय संग्रहालय, जयपुर

विस्तार करनेवाली सम्भोगलीला ही है। यही प्रेम का साध्य है। इसी में शारीरिक और मानसिक दोनों ही धरातल पर प्रेमी-प्रेमिका की अभिन्नता होती है। इस अभिन्नता के ब्रह्मानन्द को प्राप्त करने के लिए माधुर्यभावना के पोषक भक्त कवियों ने राधा-कृष्ण के सम्भोगसुख का बार-बार चित्रण किया है। कृष्णभक्ति-साहित्य में सम्भोगशृंगार का विशेष चित्रण हुआ है।[१] "ऐसा प्रतीत होता है कि वे भक्तकवि कामशास्त्र की परम्परा से पूर्ण परिचित थे। उनके काव्य का आधार यदि एक ओर भक्ति रही है तो दूसरी ओर कामशास्त्र से भी उन्होंने प्रेरणा ग्रहण की है।"[२]

सम्भोग के अंग : वात्स्यायन के कामसूत्र के अनुसार सम्भोग के आठ अंग मानेग ये हैं—१. आलिंगन, २. चुम्बन, ३. नखच्छेदन, ४. दशनछेदन, ५. संवेशन, ६. प्रहणन, सीत्कार और विरूत, ७. पुरुषायिताचरण, ८. औपरिष्टक।

इसमें से सूरदास ने आलिंगन, चुम्बन, नखच्छेदन, दशनछेदन आदि का उन्मुक्त एवं सविस्तार प्रतिरूपण किया है।[३] वे आलिंगन, चुम्बन आदि रत्यात्मक क्रियाओं की अभिव्यक्ति करते हुए अघाते नहीं। कृष्ण कभी प्रेम के वशीभूत होकर प्रिया राधिका को आलिंगनपाश में कसते हैं, कभी उसे वस्त्रहीन कर भुजाओं में भरकर सम्भोग हेतु उलट देते हैं, कभी अपने हाथ के नखों से कोमल शरीरांगों को कुरेदते हैं। मुख मोड़कर प्रेमपूर्वक चुम्बन देना, अधरों को दशनों से काटना, 'नवल-नवला' का नवल कुंजगृह में रतिविहार करते हुए नहीं अघाना आदि ऐसे सम्भोगजनित अनुभाव हैं जिनका सूर ने विस्तार से अंकन किया है।[४]

---

१. देखिए, सूरसागर, पद २६०४, २६०६, २७४९, ३४४५

२. डॉ० मिथिलेश कान्ति : हिन्दी भक्तिशृंगार का स्वरूप, पृ० १३३

३. बिहँसि राधा कृष्ण अंक लीन्ही।
अधर सों अधर जुटि नैन सों नैन मिलि हृदय सो हृदय लगि हरष कीन्ही॥
—सूरसागर, पद २५६६

४. हरिपि पिय प्रेम तिय अंक लीन्ही।
प्रिया बिनु वसन करि, उलटि धरि भुजनि भरि।
सुरति रति पूरि अति निबल कीन्ही।
अपने कर नखन अलख कुरवारहीं।
कबहुँ बाँधे अतिहि लगत सोभा।
कबहुँ मुख मोरि चुम्बन देत हरष ह्वै,
अधर भरि दसन वह उनहि सोभा।
बहुरि उपज्यो काम राधिका पति स्याम,
मगन रस ताम नहि तनु सुम्हारें।
सूर प्रभु नवल नवला, नवल कुंज गृह,
अन्त नहीं लहत दोउ रति बिहारें। —सूरसागर, पद २६०७

राजस्थानी चित्रकला में इस प्रकार सम्भोगजनित अनुभावों का मुक्त चित्रण हुआ है। कामशास्त्र की परम्परा के इस प्रकार के चित्र कलाभण्डारों एवं व्यक्तिगत संग्रहालयों में भरे पड़े हैं।[1] गलबाँही डाले चलना[2], अधरपान करना[3], आलिंगन-पाश में कसना[4], रतिरण में जूझना[5] आदि का अंकन काव्य के अनुकूल तथा काव्य से भी बढ़-चढ़कर हुआ है, जिसके आधार पर सूर, केशव, विहारी आदि कवियों के रत्यात्मक अनुभावों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन सही प्रकार से किया जा सकता है।

सम्भोग-विभाग

अध्ययन की सुविधा के लिए सम्भोगप्रक्रिया को तीन भागों में 'विभाजित किया जा सकता है।

१. **सम्भोगपूर्व क्रियाएँ** : जिसमें आलिंगन, चुम्बन आदि आंगिक क्रियाओं का समावेश होता है। हिन्दी कृष्णकाव्य की कुछेक क्रियाओं का राजस्थानी चित्र-कला के परिपार्श्व में संकेत किया जा चुका है, शेष का अनुभावों के अध्ययन में विवेचन करेंगे।

२. **सम्भोग** : इसके मुख्य तीन रूप हैं : रति, विपरीतरति एवं रतिरण। काव्य में तीनों का विस्तृत भावांकन उपलब्ध है, पर राजस्थानी चित्रकला में रति और विपरीतरति के ही उदाहरण विशेषतया प्राप्त होते हैं। रतिरण में जो कल्पना और उपमाएँ हैं, उनका चित्रांकन देखने में नहीं आया।

३. **सुरतान्त** : यह सम्भोग के अवसान का स्वरूप है। इसमें सम्भोगप्रभाव का अंकन होता है।

मिलन हेतु शृंगार और विपरीतरति

शृंगार की रीति ही अनोखी है। जिस सम्भोग में स्त्री-पुरुष को समस्त लज्जा का परित्याग कर वस्त्रविहीन होना पड़ता है, उसी के लिए नायक और विशेषतया नायिका सुन्दर वस्त्राभूषणों से सजायी जाती है। प्रारम्भ में सूर की

---

१. देखिए, रामगोपाल विजयवर्गीय का निजी संग्रह
२. ,, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ६, १५
३. ,, वही, सं० ५
४. ,, वही, सं० ५
५. ,, वही, सं० ५

राधा परकीया है, अतः स्वयं ही शृंगार सजाती है।[1] विपरीतरति में, जो कि सम्भोग के प्रमुख आसनों में सामान्य आसन के बाद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आसन है, नायिका राधा सक्रिय होकर नायकवत आचरण करता है। विपरीतरति में सूर[2], बिहारी[3] आदि कवियों ने विशेष रस लिया है और उनके काव्य के आधार पर राजस्थानी चित्रकला में अनेक चित्र बने हैं।[4] विपरीतरति के लिए राधा और कृष्ण दोनों ही विपरीत शृंगार सजाते हैं। राधा की इच्छा है कि वह विपरीतरति करे, अतः कृष्ण से अपनी इच्छा व्यक्त करती है :

तिहारी लाल मुरली नैंकु वजाऊँ।
जो जिय होति प्रीत कहिवे की, सो धरि अधर सुनाऊँ ॥
× × ×
तुम्हरे आभूषण मैं पहिरौं, अपने तुम्हें पिन्हाऊँ ॥
तुम बैठो दृढ मान साजि कै, मैं गहि चरण मनाऊँ ॥
तुम राधे, हों माधौ, माधौ ऐसी प्रीति जनाऊँ।
यह अभिलाष बहुत मेरें जिय नैननि यह दिखाऊँ।
सूर स्याम गिरधरन छवीले, भुज भरि कंठ लगाऊँ ॥[5]

उपर्युक्त पद के आधार पर बने मेवाड़शैली के इस चित्र[6] को ८ भागों में विभाजित कर पद के अभिलाषभाव का अर्थात विपरीतरति की प्रक्रिया का सुन्दर अंकन किया गया है। प्रथम भाग में राधा कृष्ण से अपनी अभिलाषा अभिव्यक्त करती है। दूसरे में वे एक-दूसरे के वस्त्राभूषण पहिनकर कुंज में बैठते हैं। तीसरे में कृष्णवेश में राधा मुरली वजाती हैं और कृष्ण अचम्भें में खड़े हैं।

---

१. प्यारी अंग सिंगार कियौ।
वेणी रच सुभग कर अपने टीका भाल दियौ ॥
मोतिन माँग सँवारि प्रथम ही केशर आड़ सँवारि।
लोचन आँजि, स्रवन तरिवन छवि को कवि कह निवारि ॥
—सूरसागर, खण्ड २, पद २६४६

२. देखिए, सूरसागर, खण्ड २, पद २६५२

३. राधा हरि राधिका बनि आये संकेत।
दम्पति रति विपरीत-सुख सहज सुरत हूँ लेत ॥१५५॥
—विहारी-रत्नाकर, पृ० ६८
परयौ जोरू विपरीत रति रूपी सुरत रणवीर।
करत कुलाहल किंकिनी गही मौन मंजीर ॥

४. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ५

५. वही, सूरसागर, खण्ड २, पद २७६०

६. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ५

चौथे में कृष्ण, राधा के कहने पर, मान साज कर बैठे हैं और कृष्णवेशी राधा उनके पैर पकड़कर मनौती कर रही है। पाँचवें में कृष्ण मान किये ऐंठे-से बैठे हैं। छठे में राधा कृष्ण को मनाकर ले जा रही है। सातवें में वे कुंज में आलिंगन-पाश में बँधे हैं और आठवें में विपरीतरति के आसन का, अर्थात सम्भोगरत कृष्ण और राधा का, अंकन चित्रकार ने किया है। सब कुछ मिलाकर चित्र में विपरीतरति की सभी प्रक्रियाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रांकन हो गया है। चित्र के अवलोकन से विपरीतरति की प्रक्रियाओं अर्थात वस्त्राभूषण परिवर्तन करना, राधा का कृष्णवत कार्य-व्यवहार करना और सम्भोग हेतु भी राधा का ऊपर रहना आदि बातों का तो ज्ञान होता ही है, साथ ही राधा की चतुराई, उसकी रति हेतु अगुवाई, कृष्ण का अचम्भित होना आदि अनुभावों की भी जानकारी होती है। चित्र में सुन्दर कुंजों का अंकन हुआ है जिससे तत्कालीन समाज में कुंज, उपवन आदि में सहेट-स्थल बनाने की विधि का भी परिचय मिलता है। प्रकृति का यह सुन्दर सहेट-स्थल रतिभाव को और अधिक उद्दीप्त करता है। नीचे कोने में एक ओर सूरदासजी भजन गाने की मुद्रा में अंकित किये गये हैं। काव्य-शास्त्रों में प्रायः आश्रय का अलग स्थान बताकर आलम्बन में ही स्थिति बतायी गयी है, किन्तु चित्रकला में आश्रय का अंकन भी हुआ है जो अध्ययन के नये आयाम खोलता है, जिसका विस्तार से आगे अध्ययन करेंगे। भारतीय कला कितनी ही शृंगारपरक क्यों न हो, पर उसके अंकन में ऐसी विशेषता होती है कि उसमें वासनाजन्य चित्रण पर भी आध्यात्मिक अमिट छाप व्याप्त रहती है। इस चित्र में विपरीतरति-जैसे प्रसंग का खुलकर चित्रण करने पर भी अलौकिक सात्विक वातावरण की अनोखी छाप नायक-नायिका के अनुभावों में अनायास ही अंकित हो गयी है। भारतीय कला में यह बात नयी नहीं है। "संस्कृत और हिन्दी साहित्य में भक्त कवियों ने लौकिकशृंगार के दमन को शमन में परिवर्तित कर भगवान के प्रति केन्द्रीभूत कर अलौकिक बना दिया है।"[१] लौकिक शृंगार में भटकती हुई प्रकृति परमपुरुष में लीन होने के लिए भक्तिशृंगार में आमूलचूल सराबोर हो गयी है। यही माधुर्यभक्ति की घोर शृंगारिकता का मूल रहस्य है। अजन्ता के चित्रों से लेकर खजुराहो एवं कोणार्क की मिथुन-मूर्तियों तथा राजस्थानी, पहाड़ी आदि चित्रकला तक में यह परम्परा विस्तार से अंकित हुई है। ऐसे चित्र कुल मिलाकर अलौकिक कलात्मक परिवेश की निर्मिति करते हैं, न कि घोर वासनाजन्य भावधारा की।

१. देखिए, डॉ० सरनामसिंह : साहित्य सिद्धान्त और समीक्षा, भूमिका

विप्रलम्भ शृंगार

जिसमें नायक और नायिका का परस्परानुराग तो प्रगाढ़ हुआ करता है किन्तु परस्पर मिलन नहीं हो पाता, उसे विप्रलम्भ शृंगार कहते हैं।[१] यह विप्रलम्भ इन चार रूपों में व्यक्त हुआ है : पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण। हिन्दी कृष्णकाव्य में संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का समान रूप से भावांकन हुआ है। भक्तिकाल में विप्रलम्भ की दृष्टि से वल्लभ-सम्प्रदाय सबसे महत्त्वपूर्ण रहा है। इसमें शुद्ध पूर्वराग, मान और प्रवासविरह मिलते हैं। रीतिकालीन कृष्णकाव्य में भी विरह की भक्तिकाल-जैसी घनीभूत पीड़ा भले ही न हो, पर यथास्थान लक्षण-ग्रन्थों में उदाहरणों की दृष्टि से और स्वतन्त्र रूप से विरहभाव की अभिव्यक्ति प्रचुर मात्रा में हुई है। राजस्थानी चित्रकला में राधा-कृष्ण की संयोगावस्था से सम्बन्धित प्रसंगों का चित्रण जितनी बहुलता से हुआ है, उतना विरहजन्य स्थलों का नहीं। इसका कारण चित्रकला की अपनी सीमा-रेखा और तत्कालीन समाज की रुचि ही हो सकती है। विरहजन्य स्थिति को अंकित करने में चित्रकार अपने चमत्कार का कौशल इतना नहीं दिखला सकता, जितना संयोगावस्था में दिखला सकता है। फिर भी विप्रलम्भशृंगार के चित्रण के जो उदाहरण उपलब्ध हैं, उनके आधार पर हिन्दी कृष्णकाव्यगत विरहभावना का अध्ययन सूक्ष्मता से किया जा सकता है।

पूर्वानुराग

नायिका की अधीरता और कृष्णमिलन की उत्सुकता पूर्वानुराग सूचित करती है। प्रथम मिलन से पूर्व नायक या नायिका के रूप, गुण आदि को जानकर जो पूर्वानुराग जगता है तथा एक-दूसरे के दर्शनार्थ व्याकुलता और बेकली रहती है, उसमें पूर्वराग का समावेश होता है। दर्शन के भी चार भेद होते हैं : प्रत्यक्ष दर्शन, चित्रदर्शन, स्वप्नदर्शन और श्रवणदर्शन।

साक्षात दर्शन

साक्षात दर्शन में लज्जावश नायक को देखते ही न जाने क्या मनोदशा होती है कि विप्रलम्भ का भाव आ घरता है।[२] केशव की 'रसिकप्रिया' के दो छन्दों

---

१. देखिए, साहित्य दर्पण : अनु० डा० सत्यव्रतसिंह, पृ० २३२

२. नींद, भूख दुति देह की गयी सुनत हीं जाहिं।
को जाने ह्वै है कहा 'केसव' देखें ताहिं ॥३॥
—केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० १६

अर्थात 'श्री राधिकाजू को प्रकाश साक्षात दर्शन'[1] और श्री कृष्णजू को प्रच्छन्न साक्षात दर्शन' के आधार पर बने मेवाड़शैली के चित्र[2] में साक्षात दर्शन का जो चित्रांकन हुआ है वह छन्द के भावांकन को स्पष्टतया समझने के लिए अत्यधिक उपयोगी है। चित्रकार ने दोनों पदों के भाव को दो भागों में अर्थात ऊपर-नीचे विभाजित कर अंकन किया है। प्रथम भाग में राधिका चौकी पर बैठकर सखी से सम्भाषण करती हुई अंगराग लगाने की प्रक्रिया में है। एक सेविका चँवर ढुला रही है और दूसरी दर्पण दिखा रही है। तीसरी, सेविका पद में वर्णित अनेक उपकरण (जैसे अंगोछा, कस्तूरी, घनसार, पान आदि) लिये खड़ी है। राधा कह रही है कि 'आलस्य त्यागकर आरसी देखी, घनसार लगाया, मुख को अच्छे अंगोछे से भली प्रकार पोंछकर फुलेल लगाया, फिर छिपकर नायक को देखा तो क्या देखती हूँ कि आँखों में लज्जा तो फिर भी रह ही गयी है ?" इस चित्र में नायिका और अन्य सेविकाओं की भाव-भंगिमा देखते ही बनती है। नायिका के एक हाथ में पान-जैसा या अन्य कोई शृंगार उपकरण है जो घनसार, कस्तूरी, फुलेल आदि उपकरणों के लगाने के भाव को अभिव्यक्त करता है। दूसरे छन्द का चित्रांकन और भी अधिक भावपरक एवं प्रकृति-परिवेश के कारण अधिक मादक एवं उद्दीपक बन पड़ा है।[3] काव्य में जैसी वेशभूषा एवं दर्पण देखने का जो रूपांकन हुआ है वैसा ही चित्र में है। राधा हाथ में डण्डीदार दर्पण लिये शृंगार का अवलोकन कर रही है। पीछे खड़े कृष्ण उसकी कायिक चेष्टाओं को देख रहे हैं। राधा दर्पण में कृष्ण का प्रच्छन्न साक्षात दर्शन कर लज्जा और आश्चर्य से चौंक-सी जाती है। केशव की उपमामूलक कल्पना का चित्रकार ने जो निर्वाह किया है, उससे तत्कालीन राजस्थानी चित्रकारों की विद्वत्ता का परिचय भी मिलता है। दर्पण में अंकित राधा-कृष्ण की छवि ने 'सूरजमण्डल में ससिमण्डल मध्य घसी जनु जाई त्रिवेणी' की जो उपमा दी है,

---

१. पहिलें तजि आरस आरसी देखि घरीकु घसे घनसारहिं लै।
पुनि पोंछि गुलावति लोंछि फुलेल अंगोछे में आछे अगौछनि के।
कहि 'केशव' भेद जुबाद सौ माँजि इते पर आजे में अंजन दै।
बहुरयो दुरि देखौ तो देखौ कहा सखि लाज तो लोचन लगिय है ॥५॥
—केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० २०

२. देखिए, एन० सी० मेहता : दि गोल्डन फ्लूट, फलक-४

३. माल गुही गुनलाल लटै लपटीं लट मोतिन की सुख देनी।
ताहि विलोकति आरसि ले कर आरस सों इक सारस नैनी।
केशव कान्ह दुरें दरसी परसी उपमा गति की अति पैनी।
सूरजमण्डल में ससिमण्डल मध्य घसी जनु जाइ त्रिवेनी ॥६॥
—केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० २०

उसे चित्रकार ने दर्पण में ही चित्रांकित कर समता ला दी है। नीचे नदी बहती हुई अंकित कर चित्रकार ने भाव को समझने में और भी सहायता दी है। इस चित्र में कृष्ण का अंकन भागवत-परम्परा से हटकर मेवाड़ी राजसी वेशभूषा में ही हुआ है। राजकुमार की वेशभूषा में कृष्ण सरु, केले आदि के गाछ के पास खड़े हैं। इस छन्द पर आधारित १८वीं शती पूर्व का बूँदीशैली का चित्र भी देखा जा सकता है।[१]

स्वप्नदर्शन और चित्रदर्शन

मारवाड़शैली के चित्र[२] में नायिका के विरह का श्रवण, स्वप्न और चित्र-दर्शन के आधार पर सुन्दर चित्रांकन हुआ है। मतिराम के 'रसराज'[३] पर आधारित इस चित्र को मुसव्विर ने चार भागों में विभाजित किया है। प्रथम भाग में नायक कृष्ण, विरहदशा में वैठे हैं। द्वितीय में नायिका दूती से नायक के सम्बन्ध में वार्तालाप कर श्रवणदर्शन का भाव प्रदर्शित कर रही है। तृतीय में स्वप्नदर्शन की वात दूती को सुना रही है और चौथे में नायिका राधा के हाथ में कृष्ण का चित्र है, वह मुग्ध होकर चित्र का अवलोकन कर रही है। दूती हाथ जोड़े खड़ी है। चित्र में आँखों की विस्फारितता और नायक का श्रवण-स्वप्न-चित्र-दर्शन कर विरहजन्यता का जो चित्रण हुआ है, उसके आधार पर पूर्वराग-सम्बन्धी अन्य काव्य-स्थलों का भी अध्ययन किया जा सकता है। रीतिकालीन कवियों ने अपने लक्षण-ग्रन्थों में लगभग एक ही प्रकार के उदाहरण दिये हैं, जिनके पठन-पाठन में ऐसे चित्रों से सहायता मिलती है। चित्र के ऊपरी भाग में 'रसराज' के तत्सम्बन्धी दोहे अंकित हैं।[३]

स्वप्नदर्शन से नायक या नायिका के मन में जो विरह उद्दीप्त हो उठता है, वह स्वप्नद्रष्टा को व्याकुल कर देता है। चित्रकारों ने इस बेकली का मनोवैज्ञानिक भावांकन किया है। बूंदीशैली में केशव की 'रसिकप्रिया' के आधार पर 'श्रीकृष्ण जू को प्रच्छन्न स्वप्न दर्शन'[४] का जो भावपूर्ण चित्रण हुआ है, वह अनेक दृष्टियों से अध्ययन का विषय है।[५] स्वप्न अधिकतर रात्रि को नीलाकाश में अंकित किया है। बूंदीशैली की छतरियाँ, भव्य महल, प्रांगण, फव्वारा आदि सामन्ती वैभव का चित्र वड़ी सूक्ष्मता से अंकित किया गया है। स्वप्न के उपरान्त

---

१. देखिए, मिनियेचर पेण्टिंग फ्रॉम मोतीचन्द्र खजाँची, फलक-४१
२. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या १२
३. रसराज, दोहा सं० २७४, २७५, २७९, २८१
४. देखिए, केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पद १४, पृ० २२
५. देखिए, एन० सी० मेहता : दि गोल्डन फ्लूट-५

कृष्ण जाग गये हैं और व्याकुलता से स्वप्न की कथा पास में खड़े हुए सेवक को सुना रहे हैं कि "वह द्रौपदी, उरवसी, पुलोमजा, तिलोत्तमा, मेनका आदि की तुलना में अत्यधिक सुन्दर थी। न जाने वह सुन्दरी कौन थी जो मुझे जगा गयी।" चित्र में उद्दीपक परिवेश के अतिरिक्त रतिभाव के विप्रलम्भपक्ष की वेकली कृष्ण के अनुभावों में देखते ही बनती है। सेवक स्वप्न सुनकर भौंचक्का-सा खड़ा है। कला की दृष्टि से यह चित्र अत्यधिक सुन्दर है। बूंदीशैली की सभी प्रमुख विशेषताएँ इस चित्र में अंकित हैं। वैभव और विलास का रंगीलापन आँखों को बरबस अपनी ओर खींचता है। चित्र के ऊपरी भाग में पीली धरती पर तूलिका से ही काले रंग में सम्बन्धित पद अंकित हैं।

मान

प्रेम के वियोगपक्ष में 'मान-विरह' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रतिभाव को और अधिक उद्दीप्त करने के लिए तथा संयोग की समरसता को सरस बनाने में मान सहायक होता है। मान विप्रलम्भ का अंग है, क्योंकि मान करने पर विरहजन्य भाव आ घेरते हैं। मान के भी गुरुमान, मध्यमान और लघुमान भेद किये गये हैं।[१] हिन्दी कृष्णकाव्य में मान का विस्तृत अंकन मिलता है। वल्लभ-सम्प्रदाय में मान का विशेष उल्लेख है। यह मान प्रणयजन्य और ईर्ष्याजन्य दोनों ही प्रकार का है।[२] 'सूरसागर' में तो मान को लीला मानकर विस्तार से भावांकन हुआ है।[३] केशव और मतिराम-जैसे कवियों ने अपने लक्षण-ग्रन्थों में मान के लक्षणों का सुन्दर उदाहरणों-सहित विवेचन किया है। बिहारी के दोहों में भी यथास्थान मान का अंकन हुआ अवश्य है,[४] किन्तु सामग्री की अनुपलब्धता के कारण विस्तार से अध्ययन करना कठिन है। उपलब्ध उदाहरणों में ही मान का जहाँ जो चित्रांकन हुआ है, वही हमारे अध्ययन का विषय है।

सूरदास ने विपरीतरति में भी मानलीला का खेल खेलने का बहाना किया है, जिसमें राधा कृष्ण से अपने (राधा के) वस्त्राभूषण पहनकर मान करने को कहती है और स्वयं पैर पड़कर मनाती है, यथा—

---

१. देखिए, केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० ५५-५६
२. डा० मिथिलेश कान्ति : हिन्दी भक्तिशृंगार का स्वरूप, पृ० १९९
३. देखिए, सूरसागर, दूसरा खण्ड, पृ० १०१५ से ११२०
४. बीकानेर दरबार की निजी संग्रह की सचित्र रसिकप्रिया एवं हीरा-मानक अमरीका के संग्रह में रसराज के अनेक चित्रों में से मान के चित्र

तुमरे आभूषण मैं पहिरों, अपने तुम्हें पिन्हाऊँ।
तुम बैठो दृढ़ मान साजि के, मैं गहि चरण मनाऊँ।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों के आधार पर १७वीं शती के मेवाड़शैली के चित्र[2] में राधावेशी कृष्ण का कुंजभवन में पान किये बैठना तथा कृष्णवेशी राधा का पैर पकड़कर मनाना आदि मान की क्रियाओं का जो अंकन हुआ है, वह मान करने और मनौती करने की स्थिति को स्पष्टतः अभिव्यक्त करता है।

वास्तव में नायिका के मन में मान करने का भाव तब उठता है, जब वह नायक को अन्य किसी नायिका में अनुरक्त देखती है। ऐसी दशा में वह कृष्ण को झिड़कती है :

मोहि छुवो जनि दूर रहौ जू।
जाको हृदय लगाई लियो है, ताकी बाँह गहौ जू॥[3]

कृष्ण परकीया के यहाँ से प्रातःकाल लौटते हैं तो उनकी वेशभूषा देखकर राधा कहती है कि "जहाँ रातभर रहे, वहीं जाओ। अब मेरा जी जलाने क्यों आये हो ? तुम्हारे वस्त्राभूषण रत्युपरान्त की स्थिति को प्रदर्शित कर रहे हैं। वसन सुगन्ध से भरे हैं, माला मरगजी हुई है, अधरों में काजल, लोचनों में अरुणाई, पलकों में पीक आदि तुम्हारी दशा बताते हैं। जरा दर्पण लेकर तो देखो।"[4] खण्डिता नायिका राधा की वचन-विदग्धता में मान, ऐंठ और व्यंग्य भरा हुआ है। 'सूर-सागर' इस प्रकार के चित्रों का भण्डार है जिसमें राधा-कृष्ण की लघुमानलीला, मध्यमानलीला और गुरुमानलीला का विस्तार से भावांकन हुआ है।

प्रवास

शाप, भय, और कार्यवश नायक के विदेश जाने पर प्रवास-विप्रलम्भ की स्थिति आती है। प्रवास अथवा देशान्तर-विरह का ही हिन्दी कृष्णकाव्य में सर्वाधिक विस्तार मिलता है। राधा, गोपियों तथा अन्य बाल-गोपालों से बिछुड़कर कृष्ण मथुरा चले जाते हैं। उनके प्रवास के कारण गोपियों की जो दशा होती है, उसका वर्णन अष्टछाप के कवियों ने सामान्य विरह एवं भ्रमरगीत-प्रसंग में विस्तार से किया है। सूरदास, नन्ददास आदि कवियों ने विरहवर्णन में अपना हृदय खोलकर रख दिया है। विस्तारभय के कारण भ्रमरगीत-प्रसंग के कुछ उदाहरणों को ही देकर कृष्णकाव्यगत एवं राजस्थानी चित्रकलांकित विरह का

---

१. देखिए, सूरसागर, खण्ड-२, पद २७६०
२. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट, चित्र संख्या ५
३. देखिए, सूरसागर, खण्ड-२, पद ३०३४
४. वही, खण्ड-२, पद ३१२०

विवेचन करेंगे।

जैसाकि ऊपर कह चुके हैं, चित्रकला में विरह-प्रसंग इतनी तीव्रता एवं विस्तार से अंकित नहीं किया गया है जितना संयोग। सूरदास के भ्रमरगीत-प्रसंग पर आधारित कुछेक चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में उपलब्ध हैं जो १७वीं शतीमध्य के मेवाड़शैली के उत्कृष्ट चित्रों में से हैं। उनके आधार पर भ्रमरगीत-सम्बन्धी पदों एवं विरहजन्य अन्य काव्य की विभिन्न दशाओं का अध्ययन किया जा सकता है। सही बात तो यह है कि विरहजन्य भावों के अध्ययन में आनन्द वही ले सकता है, जिसने विरह की पीर सही हो, अन्यथा चित्रकला के आधार पर विरह की तल्लीनता, गहराई और भावात्मकता का अध्ययन प्रायः नहीं हो सकता, क्योंकि चित्रकला की भी अपनी सीमारेखाएँ हैं।

राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली के भ्रमरगीत-सम्बन्धी चित्रों में अधिकतर उद्धव को बैठे अंकित किया है तथा पाँच-सात गोपियाँ उनके सम्मुख बैठकर वार्तालाप करती रहती हैं। ऐसे चित्रों में कायिक अनुभावों द्वारा ही भावाभिव्यक्ति करने का प्रयत्न चित्रकार करता है। एक चित्र[1] में तीन गोपियाँ उद्धव के सामने बैठकर हाथों के इशारों से कह रही हैं कि "ऊधो भली करी तुम आये।" उनकी चेष्टाओं से ज्ञात होता है कि वे वाकपटु हैं और उद्धव को मूर्ख बना रही हैं, साथ ही अपनी विरहव्यथा भी व्यक्त कर रही हैं। प्रकृति के सुन्दर परिवेश में भौंरे, चिड़ियाँ, यमुनातट आदि का अंकन विरहभाव को और भी उद्दीप्त करने में सहायक है। चित्र के ऊपर केवल शीर्षकरूप में एक पंक्ति अंकित है :

"उधो भली करी तुम आये : स्याम सषा हीत जान पठाए।"

दूसरे चित्र[2] में प्रकृति के सुन्दर परिवेश में वे रूवाँसी होकर हाथ और उँगलियों के इशारे से अपनी विरहव्यथा उद्धव को कह रही हैं। चित्र में शीर्षक-स्वरूप पंक्ति अंकित है, 'ता दिन तैं सपने नहीं देखे' जिसके आधार पर एक गोपी को चित्र के एक भाग में सोते हुए भी अंकित किया गया है। उद्धव और गोपियों के हाव, भाव, चेष्टाओं का अंकन चित्रकार ने भवानुकूल ही किया है। इस चित्र में अभिलाषदशा का सुन्दर अंकन हुआ है।

तीसरे चित्र[3] में उद्धव लौटकर कृष्ण के पास आ गये हैं और गोपियों की दशा का वर्णन कर रहे हैं। कृष्ण जड़वत् खड़े हैं एवं उद्धव के वचनों को ध्यानपूर्वक सुन रहे हैं। चित्र के ऊपरी भाग में व्याकुल एवं विरह में डूबी हुई गोपियों को अंकित किया गया है। मेवाड़शैली के उन चित्रों में मेवाड़ी वेशभूषा का पूर्ण प्रभाव

---

१. देखिए, राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली, चित्रसंख्या ५९-७३
२. वही, चित्र संख्या ५९-७४
३. वही, चित्रसंख्या ५९-९७

है। कृष्ण का अंगरखा, कमरबन्द, जामा आदि पहनना तथा ढाल, तलवार धारण करना और पीछे सेवक का चँवर लेकर खड़े होना आदि उनके मथुरा के राजसी वैभव को प्रदर्शित करते हैं।

भ्रमरगीत के अन्य चित्रों के आधार पर मेवाड़शैली की विशेषताओं के साथ ही भ्रमरगीत में अभिव्यक्त विरहव्यथा का अध्ययन किया जा सकता है।

'बिहारी-सतसई' में भी कृष्ण-सम्बन्धी कुछ ऐसे प्रसंग हैं जिनमें प्रवासजनित विरह का सुन्दर भावाभिव्यंजन हुआ है।[1] 'बिहारी-सतसई'-सम्बन्धी चित्रों में प्रवासजन्य विरह के अनेक चित्र उपलब्ध हैं।[2] मेवाड़शैली के एक चित्र[3] में 'बिहारी-सतसई' का निम्नांकित दोहा ऊपर लिखा हुआ है तथा नीचे उसके भाव का चित्रांकन चित्रकार ने बड़ी तन्मयता से किया है :

गोपिन के अँसुवन बही सदा असोस अपार।
डगर डगर नै ह्वै रही बगर बगर के बार॥

प्रस्तुत दोहे में उद्धव श्रीकृष्णचन्द्र से कहते हैं कि 'गोपियाँ आपके विरह में इतनी व्याकुल होकर आँसू बहा रही हैं कि घर-घर के द्वार पर डगर-डगर में आँसुओं से भरी हुई कभी न सूखनेवाली नदी हो रही है, इसलिए कृपा कर आप चलिए और उनका कष्ट निवारण कीजिए।" निर्गुणपन्थी उद्धव भी गोपियों की विरहजन्य दशा से इतने व्याकुल हो उठे हैं कि श्रीकृष्ण से उनकी रक्षा करने की प्रार्थना करते हैं। चलकर कष्टनिवारण करने की बात का पता चित्र को देखने पर ही लगता है। बिहारी की समाहार-शैली के कारण चित्रकार ने भी चित्र को कई भागों में विभाजित किया है। तीन घरों में गोपियों को कृष्ण के विरह में आँसू बहाते हुए तथा प्रत्येक घर में आँसुओं का नाला बहते हुए अंकित किया है जो एक नदी का रूप धारण कर बीच में बह रहा है। नदी के पार द्वार पर हाथी, घोड़े सजे हुए खड़े हैं और महल में श्रीकृष्णचन्द्र चौकी पर मसनद लगाये बैठे हैं तथा उद्धवजी उनसे गोपियों की दशा का वर्णन करते हुए सुसज्जित हाथी-घोड़ों पर शीघ्र चलने की प्रार्थना कर रहे हैं। निश्चय ही इस प्रकार का प्रसंग 'बिहारी-सतसई' के तत्कालीन राजस्थानी चित्रों को देखकर ही जाना जा सकता है।

वियोगदशाएँ

नायक-नायिका एक-दूसरे से मिलने के लिए अकुलाते रहते हैं। यदि नहीं

---

१. बिहारी-रत्नाकर, दोहा १८२, २२७, २९२, २९३, ४६९ आदि
२. देखिए, सरस्वती-भण्डार, जयपुर में मेवाड़शैली के बिहारी-सतसई के चित्र तथा आर० डी० खन्ना, जयपुर के निजी संग्रह के बूंदीशैली के चित्र
३. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्र संख्या ११

मिल पाते हैं तो उनकी दशा अजीब हो जाती है। लक्षण-ग्रन्थकारों ने ऐसी दस दशाओं का वर्णन किया है[1], जिनमें से उद्वेग और जड़ता के चित्रगत उदाहरण देकर स्पष्ट करेंगे कि राजस्थानी चित्रकारों ने इन दशाओं का काव्य से भी अधिक सजीव चित्रांकन कर काव्य के भाव को अधिक उजागर कर दिया है।

उद्वेग : सुखदायक प्रसंग भी जहाँ नायक-नायिका के लिए दुखदायक हो जाता है, उसे केशव ने दुसह मानकर उद्वेग कहा है।[2] 'रसिकप्रिया' के पद पर आधारित १७वीं शती के मेवाड़शैली के चित्र[3] में 'राधिका जू को प्रकास उद्वेग' का जो चित्रण हुआ है, वह कला की दृष्टि से ही नहीं वरन् भावांकन की दृष्टि से भी अत्यधिक सुन्दर बन पड़ा है। चित्र के ऊपरी भाग में निम्नांकित पद अंकित हैं :

केसव काल्हि विलोक मजी वह, आजु विलोकें बिना सु मरै जू।
वासर बीस जिसे विष मींडियै राति जुन्हाई की जोति जरै जू।
पालिक तें भुव, भूमि तें पालिक आलि करोरि कलालि करै जू।
भूषण देहु कहु व्रज भूषण दूषण देह को हेरि हरै जू ॥३२॥[4]

प्रस्तुत पद में दूती नायक से नायिका के विरहजनित उद्वेग का वर्णन करती है तथा कोई आभूषण माँगने का भाव अभिव्यक्त करती है, किन्तु चित्र में चित्रकार ने सभी स्थितियों का भावानुकूल या यों कहें कि काव्य के भावों से भी बढ़-चढ़कर चित्रांकन कर दिया है। प्रस्तुत चित्र एक ही पृष्ठभूमि पर दो भागों में बाँटा हुआ है। ऊपर नायिका की विरहजन्य उद्विग्नता तथा बेकली का चित्रांकन है। सेविका व्यजन कर रही है, पर फिर भी राधा पर्यंक पर तिलमिला रही है। बेकली इतनी है कि वह पर्यंक से भूमि पर व्याकुल होकर लेट जाती है और सेविकाएँ अधीर होकर उसके हाथ-पैर मीड़ रही हैं। उसकी बेकली को असह्य समझकर दूती अधीर होकर नायक कृष्ण के पास दौड़कर जाती हुई अंकित की गयी है। नीचे श्रीकृष्ण उसे मोतियों की माला देते हुए अंकित किये गये हैं, जिससे प्रिय की दी हुई वस्तु से नायिका को ढाढस बंधे और उद्वेग कम हो।

---

१. अभिलाषसु, चिन्ता, गुनकथन, स्मृति, उद्वेग प्रलापु।
उन्माद, व्याधि, जड़ता, भये होतु मरन पुनि आप ॥६॥
—केशव-ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० ४७

२. दुखदायक ह्वै जात जहैं सुखदायक अनयास।
सो उद्वेग देसा दुसह जानहु केशवदास ॥३०॥
—केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० ५१

३. मोतीचन्द्र खजांची, बीकानेर के निजी संग्रह में तथा दि मिनियेचर पेण्टिग फ्रॉम दि श्री मोतीचन्द्र खजांची कलैक्शन के चित्रसंख्या ३३ में अंकित

४. केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० ५१

चित्र में कायिक एवं मानसिक अनुभावों का तो गत्यात्मक चित्रण हुआ ही है, साथ ही उद्दीपक प्रकृति-परिवेश भी अत्यधिक कलात्मक ढंग से चित्रित किया गया है। राजस्थानी स्थापत्य और सरू तथा केले के पेड़, सप्तमी या अष्टमी की चन्द्रिका में चमक रहे हैं जो नायिका को विरह में अधिक जला रहे हैं। विरह में यही उद्दीपक उपकरण अधिक उद्विग्नता उत्पन्न कर रहे हैं। निश्चय ही विरह की दशा 'उद्वेग' के चित्रण का यह उत्कृष्ट काव्यात्मक उदाहरण है।

जड़ता

विरहवेदना में नायक या नायिका जहाँ सुध-बुध विसराकर सुख और दुख को समान समझने की-सी दशा में हो जाते हैं वहाँ जड़ता की स्थिति होती है। विरहवेदना इतनी तीव्र एवं घनीभूत होती है कि विरही जड़वत होकर अपलक देखने लगता है और गुम-सुम हो जाता है।

केशव की 'रसिकप्रिया' के 'श्रीकृष्ण जू की प्रच्छन्न जड़ता' के लक्षण उदाहरण के आधार पर वने वीकानेरशैली के चित्र[1] में राधा के विरह में जड़ता की स्थिति को प्राप्त होनेवाले श्रीकृष्ण का जो अंकन हुआ है, वह अत्यधिक मनोवैज्ञानिक एवं पद के भाव की अर्थवत्ता को स्पष्ट करनेवाला है। वीकानेर के राजा अनूपसिंह के समय में १६६१ ई० में नुरूद्दीन अर्थात 'नूरे' नामक राजदरबारी मुसव्विर द्वारा चित्रित इस चित्र में ऊपर 'रसिकप्रिया' का निम्नांकित पद अंकित है :

> पल ही पल सीलत होत सरीर विचारे सबै उपचार निदाने।
> जो करिये तन खण्डन-मण्डन चित्त कछु सुख दुःख न आनै।
> केसव कान्ह सुने समुझे नहिं, वूझिये को नहिं को पहिचाने।[2]
> जोगलियो के वियोग है काहू को लोग कहा इनि रोगनि जाने॥५१॥

राधा के विरह में जड़ीभूत होनेवाले कृष्ण अर्थात नायक की मनोदशा का जो भावांकन उपर्युक्त सवैये में हुआ है, उसको चित्रकार ने बड़ी तल्लीनता से चित्रित किया है। चित्र में महल के सामने के प्रांगण का दृश्य है। लाल झालरदार पीला चँदोवा और उसकी छाया में सुनहरी चौकी पर जड़ीभूत मुद्रा में श्रीकृष्णचन्द्र वैठे हुए हैं। उन्होंने मुकुट और पीताम्वर धारण कर रखा है। वे अपलक गुमसुम मुद्रा में ऐसे वैठे हुए हैं जैसे अभी उनका सत्व ही निकल जायेगा। अपलक देखना तथा गुमसुम की स्थिति ऐसे अनुभाव हैं जो चित्र में जड़ता की दशा को

---

१. देखिए, एन० सी० मेहता आर्ट गैलेरी, अहमदावाद में प्रदर्शित एवं एन०सी० मेहता की दि गोल्डन फ्लूट नामक पुस्तक में प्रकाशित, फलक-६
२. केशव-ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० ५४

स्पष्टतया अभिव्यक्त करते हैं। मोरछल डुलाती हुई एक सेविका ठीक उनके पीछे स्तम्भित-सी खड़ी है तथा सम्मुख दो सेविकाएँ श्रीकृष्ण की जड़वत स्थिति को देखकर दयाद्र-सी तथा स्तम्भित-सी ठगी खड़ी हैं। चित्र में गहरे एवं गम्भीर (सोवर) रंगों का प्रयोग कर तथा पार्श्व की वाटिका में सरू आदि पेड़ों का अंकन कर जो गम्भीर वातावरण प्रस्तुत किया गया है, वह काव्यभाव से कहीं बढ़-चढ़कर है। चित्रकार को काव्य का सूक्ष्म ज्ञान होना और प्रमुखतया मुसलमान कलाकार का केशव के काव्य को आधार बनाकर सुन्दर चित्रांकन करना राजा अनूपसिंह की कलाप्रियता तथा चित्रकार की काव्य के सूक्ष्म अध्ययन की प्रवृत्ति के परिचायक हैं। निश्चय ही इस प्रकार के चित्रों के परिपार्श्व में काव्य का सूक्ष्म ज्ञान एवं काव्य के भाव की अर्थवत्ता का पता चलता है।

'श्री राधिका जू की प्रच्छन्न जड़ता' का अध्ययन भी चित्र[1] के आधार पर किया जा सकता है जिसमें राधा की ज़ड़ता एवं शीलता का सुन्दर एवं भावानुकूल अंकन किया गया है।

संक्षेप में, निष्कर्षस्वरूप यह कह सकते हैं कि रसराज श्रृंगार की विस्तृतता एवं सूक्ष्मता का गहनतम अध्ययन चित्रकला के माध्यम से भली प्रकार कर सकते हैं। संयोग एवं वियोग का जो शास्त्रीय स्वरूप हिन्दी कृष्णकाव्य में उपलब्ध है, उसकी शास्त्रीयता का सही मूल्यांकन तत्सम्बन्धी चित्रों के चाक्षुषीकरण से और भी सरल एवं स्पष्ट हो जाता है। निश्चय ही राजस्थानी चित्रकला के परिपार्श्व में रसराज श्रृंगार के वैविध्य का गहन अध्ययन इस दृष्टि से होना चाहिए।

विभावांकन

काव्य के दो पक्षों, भावपक्ष और विभावपक्ष, में विभाग का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। बिना विभाव के भाव की स्थिति नहीं है। वे एक-दूसरे के अन्योन्याश्रित हैं। अन्तस्तल की प्रसुप्त भावनाओं को जो विशेष रूप से प्रवर्तित करे, उसे विभाव कहते हैं। विभाव स्थायी भाव का कारण होता है और वह रस की उत्पत्ति में विशेष सहायक होता है। इसके दो भेद हैं : आलम्बन और उद्दीपन।

१. आलम्बन : जिस पर रति आदि स्थायी भाव अवलम्बित है, उसे आलम्बन-विभाव कहते हैं। हिन्दी साहित्य में कृष्ण, राधा आदि आलम्बन-विभाव के अन्तर्गत आते हैं। स्थायी भाव को धारण करनेवाला आश्रय होता है। मध्यकालीन हिन्दी कृष्णकाव्य में आलम्बन-विभाव का जो चित्रण हुआ है,

---

१. देखिए, वसुदेव एस० अग्रवाल : दि हैरिटेज ऑफ इण्डियन आर्ट, पृ० १५,४, फलक-३२

वह दो रूपों में हुआ है : १. स्वच्छन्द रूप में और २. नायक-नायिका भेदरूप में। हिन्दी भक्ति-कृष्णकाव्य में नायक-नायिका-भेद का यथास्थान चित्रण अवश्य मिलता है, किन्तु वह रीतिकालीन काव्य की भाँति लक्षण-ग्रन्थों के रूप में नहीं हुआ है। रीतिकाल में तो नायक-नायिकाभेदपरक लक्षण-ग्रन्थ बहुलता से लिखे गये, जिनमें प्रमुखतया कृष्ण और राधा को आधार बनाकर रसराज शृंगार का विस्तृत अंकन किया गया है।

जिस प्रकार भक्तिशृंगार एवं रीतिशृंगार में राधा-कृष्ण आदि आलम्बन रहे हैं, उसी प्रकार राजस्थानी चित्रकला में भी राधा-कृष्ण ने ही भावों के भार को वहन किया है। राजस्थानी चित्रकला तो इस दृष्टि से और भी आगे बढ़ गयी है। 'बिहारी-सतसई' जैसे ग्रन्थों में जहाँ कवि ने सामान्य नायक-नायिकाओं को आलम्बन बनाकर भावांकन किया है, वहाँ उन दोहों के आधार पर बने चित्रों में राजस्थानी चित्रकारों ने राधा-कृष्ण का ही अंकन कर भावाभिव्यंजन को और भी सरल बना दिया है।[1] यह बात दूसरी है कि राधा-कृष्ण के छविअंकन में कलाकारों ने सामयिक सामन्ती प्रभाव को अवश्य ला रखा है, इसलिए उनके राधा-कृष्ण किसी रानी और राजा से कम नहीं हैं।[2]

भाव को वहन करनेवाले नायक और नायिका का दो रूपों में अर्थात वस्तुरूप में और अलंकाररूप में रूपचित्रण कर कवि और चित्रकार भाव को जाग्रत करता है, जिसका रेखांकन के अन्तर्गत विस्तार से विवेचन कर चुके हैं तथा आलम्बन और आश्रय में जो बाह्य पारस्परिक चेष्टाएँ या व्यापार होते हैं, वे रति की पुष्टि में एक-दूसरे के सहायक होते हैं जिनका अनुभावांकन के अन्तर्गत विवेचन करेंगे। यहाँ पर आलम्बन-विभाव के प्रमुख अंग नायक और नायिका का जो शास्त्रीय स्वरूप है और जिसको आधार बनाकर काव्य और चित्रकला में भावांकन हुआ है, वही हमारा विवेच्य है। हिन्दी कृष्णकाव्य के नायक और नायिकाओं के विभिन्न प्रकारों का अध्ययन राजस्थानी चित्रकला के परिपार्श्व में विस्तार एवं गम्भीरता से कर सकते हैं।

नायक

रूप-गुणसम्पन्न पुरुष को नायक कहते हैं। कार्यानुसार नायक अनुकूल, दक्ष, शठ, और धृष्ट होता है।[3] स्वभावानुसार नायक के धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीर-

---

१. देखिए, बिहारी-सतसई-सम्बन्धी मेवाड़शैली के २३६ चित्र, सरस्वती-भण्डार, उदयपुर
२. देखिए, प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेण्टिंग, फलक-५
३. केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० ५-७

ललित और धीरप्रशान्त नामक चार भेद होते हैं। हिन्दी कृष्णकाव्य में प्रमुखतया नायक बाल गोपाल, रसिकविहारी एवं प्रवासी रूपों में अभिव्यक्त श्रीकृष्ण हैं, वे माता यशोदा, नन्द आदि के लिए वात्सल्य के, राधा और अन्य गोपियों के लिए रतिभाव के और भक्त, गोप, सखा आदि के लिए असुरसंहारक स्वरूप उत्साहभाव के आलम्बन हैं। निश्चय ही भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन हिन्दी कृष्णकाव्य में कृष्ण का शृंगारी स्वरूप ही प्रमुख आलम्बन रहा है, किन्तु उनके जो बाल और असुरसंहारक स्वरूप भी सूरसागर आदि ग्रन्थों में उभरे हैं, वे कम महत्त्व के नहीं हैं। रेखांकन और रूपांकन में उनके इन स्वरूपों का विवेचन हम कर चुके हैं। यहाँ काव्याधृत राजस्थानी चित्रकला के परिपार्श्व में नायक श्रीकृष्ण की आलम्बन और आश्रयगत स्थिति का संक्षिप्त विवेचन करेंगे।

सूर के नामकरण-सम्बन्धी[1] भाव पर आधारित इस जहाँगीरकालीन चित्र[2] में बालकृष्ण आलम्बन हैं जिनको आधार बनाकर प्रसन्नता के आश्रय नन्द और यशोदा आदि उनका नामकरण-संस्कार करवा रहे हैं। ऋषि का आगमन, उनका स्वागत तथा ग्रह-गोचर आदि बताकर दूब, हल्दी, दही आदि आलम्बन (कृष्ण) के सर पर बाँधकर ऋषि उनका नामकरण-संस्कार कर 'विप्र, सुजन, चारन, बन्दीजन' आदि को आनन्दित करते हैं। चित्र को कलाकार ने एक ही पृष्ठभूमि पर दो भागों में विभाजित किया है। द्वार पर नन्द बाबा और यशोदा हाथ जोड़कर ऋषि का स्वागत कर रहे हैं और भीतर आँगन में नन्द, यशोदा, बलराम और कृष्ण बैठे हैं तथा ऋषि उनके सामने बैठे पत्रे में से नामकरण-सम्बन्धी विचार अभिव्यक्त कर रहे हैं। दो दासियाँ हाथों में भेंट-सामग्री लिये खड़ी हैं। उपर्युक्त सारी क्रियाएँ बालकृष्ण को आधार बनाकर की गयी हैं, अतः आलम्बन कृष्ण के रूपांकन एवं भावांकन में चित्रकार ने काव्य से भी अधिक व्यतिरिक्त चित्र बनाया है। इन चित्रों की, कला एवं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से, उत्कृष्ट चित्रों में गिनती होती है। नन्द बाबा के अंकन में मेवाड़ी पगड़ी, अंगरखा, जामा, कमरबन्द आदि का चित्रण परम्परागत नहीं होकर सामयिक प्रभाव का परिचायक है। अन्य के चित्रण में परम्परागत चित्रण हुआ है।

इसी प्रकार प्रस्तुत-ग्रन्थ में संलग्न चित्रावली के आधार पर काव्य और चित्रकला में चिन्नित नायक कृष्ण के नायकत्व का सूक्ष्म अध्ययन किया जा सकता है।

नायिका

रूप-गुणवती स्त्री को नायिका कहते हैं। जिस रमणी को देखते ही चित्त में

---

१. सूरसागर, खण्ड-१, पृ० ७०३-७०५
२. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या २

शृंगाररस का संचार हो, उसे नायिका की संज्ञा दी गयी है। शृंगाररस के आलम्बन-विभाव में नायिकाभेद का कथन किया जाता है। नायिकाभेद के व्यापक प्रभाव का कारण भी शृंगार की व्यापकता ही है। नायिकाभेद का सम्पूर्ण विषय ही शृंगार से सम्बन्धित है। मध्यकालीन हिन्दी कृष्णकाव्य में स्वतन्त्र रूप से तथा लक्षण-ग्रन्थों के रूप में नायिकाभेद का विस्तृत अंकन हुआ है, जिसका प्रमुख आधार राधा और अन्य गोपियाँ रही हैं। राजस्थानी चित्र-कला में नायिकाभेद भी चित्रण का प्रमुख विषय रहा है, इसलिए उसके आधार पर मध्यकालीन हिन्दी कृष्णकाव्यगत नायिकाभेद के अध्ययन की समस्याओं को सहजता से सुलझाया जा सकता है।

नायिकाभेद-परम्परा

काव्यशास्त्र की परम्परा के साथ ही नायिकाभेद का वर्णन सर्वप्रथम भरत-मुनि के नाट्शास्त्र में मिलता है।[1] संस्कृत के अनेक आचार्यों ने नायिकाभेद-सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे, जिनमें धनंजयकृत 'दशरूपक', विश्वनाथकृत 'साहित्य-दर्पण', भानुदत्तकृत 'रसमंजरी' आदि प्रमुख हैं। "कृपारामकृत 'हित-तरंगिनी' व्रजभाषा के रीतिसाहित्य एवं नायिकाभेद की सबसे प्राचीन उपलब्ध रचना है।"[2] हिन्दी साहित्य में केशव रीति ग्रन्थों के प्रवर्त्तक एवं आचार्य कहे जाते हैं। उनकी 'रसिकप्रिया' की चर्चा यथास्थान कर चुके हैं। मतिराम व्रजभाषा साहित्य के सुप्रसिद्ध शृंगारी कवि और नायिकाभेद के सर्वमान्य आचार्य थे। उनका 'रसराज' नायिकाभेद का सर्वप्रधान ग्रन्थ है। पद्माकर का 'जगद्विनोद' भी इस कड़ी का प्रमुख ग्रन्थ है, जिसमें विस्तार से नायिकाभेद का वर्णन हुआ है।

नायिकाभेद

आलम्बन के अन्तर्गत आचार्यों ने नायिकाओं के असंख्य भेद बताये हैं, जिन्हें सुविधा के लिए संक्षेप में निम्नांकित पाँच वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :

१. जात्यानुसार—पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी।
२. धर्मानुसार—स्वकीया, परकीया और सामान्या।
३. दशानुसार—गर्विता, अन्य सम्भोग दुःखिता और मानवती।
४. अवस्थानुसार—स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा, उत्कण्ठिता, अभिसारिका, विप्रलब्धा, खण्डिता, कलहान्तरिता, प्रवत्स्यत्पतिका, प्रोषित-

१. देखिए, प्रभुदयाल मित्तल : व्रजभाषा का नायिकाभेद, पृ० २९
२. वही, पृ० ३५

पतिका और आगतपतिका।

५. गुणानुसार—उत्तमा, मध्यमा और अधमा।

हिन्दी कृष्णकाव्य में उपर्युक्त नायिकाभेद को ध्यान में रखते हुए स्वतन्त्र रूप से तथा लक्षण-ग्रन्थों के रूप में विशेष अंकन हुआ है। 'सूरसागर' में भी यथास्थान राधा और अन्य गोपियों का अंकन नायिकाभेद की कोटि में हुआ है। सूर की राधा परकीया काव्यभेद के अन्तर्गत आती है। कृष्ण का उनसे तथा-कथित विवाह रासप्रकरण में हुआ है,[1] अतः रास से पूर्व तक का वर्णन अधिकतर परकीया के अन्तर्गत ही आयेगा। परकीया होने के कारण राधा स्वयं ही शृंगार सजाती है और कृष्ण से अभिसार करने जाती है।[2] कुंजभवन में वह अभिसार हेतु उनका पन्थ निहारती है। उत्कण्ठिता राधा का जो स्वरूप सूर ने अंकित किया है, वह आलम्बन का सुन्दर काव्यात्मक चित्र है।[3] वह रच-रचकर कुंज-भवन में फूलों से सेज सँवारती है। राधा के क्रियाकलापों का अंकन सूर ने अपने काव्य में वासकसज्जा नायिका का शव्दचित्र अंकित कर दिया है।[4] राधा भोली नहीं है, वह ज्ञातयौवना है। भाल पर विन्दी लगाती है, रोज ही नैनों में कजरा आँजती है, अपने गोरे अंगों के उभार को देखती रहती है, चमकती और बदन मटकाकर चलती है। भला ऐसी राधा को भोली कौन कह सकता है?[5] कहने का तात्पर्य यह है कि सूर-जैसे भक्त कविवों ने अपनी नायिकाओं का जो वस्तु-रूप में या उनके क्रियाकलापों के रूप में अंकन किया है, वह स्वच्छन्द रूप से नायिकाभेद की परम्परा में अंकित हुआ है।

राजस्थानी चित्रकला में केशव की 'रसिकप्रिया' एवं मतिराम के 'रसराज' को आधार वनाकर जो चित्रण हुआ है, उसमें नायिकाभेद के विभिन्न रूप वहुलता से अंकित किये गये हैं जिनमें प्रमुख रूप से राधा और गौण रूप से अन्य गोपियों को आलम्बन एवं आश्रय बनाकर चित्रण किया है। निश्चय ही उन चित्रों के

---

१. देखिए, सूरसागर, खण्ड-१, पद १६८९-१७०३
२. वही, पद, २६४५, २६७०
३. नागरिनागर पंथ निहारे।
उदै बाल ससि अस्त भयो रवि, जिय जिय यहै विचारै॥
—सूरसागर, खण्ड-२, पद २६४६
४. राधा रचिरचि सेज सँवारति।
तापर सुमन सुगन्ध बिछावति, बारम्बार बिहारति।
—सूरसागर, खण्ड-२, पद २६४७
५. बेंदीभाल नैन नित आँजति निरखि रहति तनु गोरी।
चमकति चलै, बदन मटकावै ऐसी जोबन जोरी॥
—सूरसागर, खण्ड-२, पद २६६९

आधार पर हिन्दी कृष्णकाव्य के आलम्वनपक्ष का एवं नायिकाभेद के शास्त्रीय स्वरूप का सहज ज्ञान हो सकता है तथा पदों की अर्थवत्ता एवं चित्रोपमता की अनेक अवस्थाएँ सरल हो सकती हैं। नायिकाभेद-सम्बन्धी सब उदाहरण देना सम्भव नहीं है, इसलिए कुछेक सचित्र उदाहरण प्रस्तुत हैं :

वासकसज्जा

प्रिय का निश्चित मिलन जानकर साज, शृंगार और सम्भोग-सामग्री एकत्र करनेवाली नायिका वासकसज्जा कहलाती है। राजस्थानी चित्रकला में वासकसज्जा के उदाहरण अभिसारिका की भाँति सर्वाधिक मिलते हैं। 'रसिकप्रिया' के आधार पर अंकित एक चित्र[1] में प्रकाश वासकसज्जा का जो अंकन हुआ है, वह नायिका के शास्त्रीय एवं सामयिक काव्यगत स्वरूप को भली प्रकार अभिव्यक्त करता है। बूंदीशैली के इस प्रसिद्ध चित्र में नायिका राधा उपवन में केलिस्थल को सुसज्जित कर नायक का इन्तजार कर रही है। लता, वृक्ष, कुंज, पशु-पक्षी, पत्र-शैया, फूलमाला आदि का चित्रण बूंदीशैली के अनुकूल है। ऐसे सुन्दर परिवेश में गोपवधू कुंजकुटी में बैठी नायक कृष्णचन्द्र का इन्तजार करती ऐसी लग रही है, मानो वह मूर्तिमान तुलसी हो अथवा तुलसीवन में रति हो। कुंजों में सुशोभित वह गोपवधू ऐसी ज्ञात होती है, मानो कुंजकुटी में लक्ष्मी ही शोभायमान है। चित्र रंगतत्त्व, कला, प्रकृतिचित्रण एवं नायिका के रूपांकन आदि की दृष्टि से उत्कृष्ट है। तूलिका से सुन्दर अक्षरों में 'रसिकप्रिया' का पद इस प्रकार अंकित है :

भाषति है सुख-वैन सखी सहुलास हिये अभिलाषनि जो है।
कोमल हासनि नैंन विलासनि अंग-सुवासनि भै मन मोहे।
मूरतिवंति किधों तुलसी तुलसी-वन में रतिमूरति को है।
कुंज विराजति गोपवधू कमला जनु कुंज-कुटी महिं सोहे ।।१२।।[2]

अभिसारिका

कामार्त होकर स्वयं नायक के पास जानेवाली या प्रियतम को अपने पास बुलानेवाली नायिका को अभिसारिका कहते हैं। परकीया, मध्या एवं प्रौढ़ा नायिका रात के समय में अकेली भयकारी वातावरण में नायक से मिलने चल पड़ती है। कामुकता तथा प्रियतम की मिलनेच्छा के सामने पैरों में लिपटे हुए सर्प, काली अँधियारी रात, भूत-पिशाचों का डर आदि उसके लिए कुछ नहीं है।

---

१. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ८
२. ,, केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पद १२, पृ० ४१

वातावरण के अनुकूल वस्त्राभूषण पहनकर वह घर से जंगल में सहेट-स्थल पर जाती है।[१] दूसरी ओर मुग्धा नायिका लाज के कारण स्वयं नहीं जाती है वरन् उसकी दूती एवं सखियाँ नायक को ही स्वयं बुलाने जाती हैं। 'रसराज' के पद[२] पर आधारित चित्र[३] में 'पियही बुलावै आपुकै' का मारवाड़शैली में भावानुकूल चित्रण हुआ है। चित्र के ऊपरी भाग में पद इस प्रकार अंकित है :

दुहा— पिय ही बुलावै आपुकै। पिय पै आपुहि जाय ॥
ताहि कहत अभिसारिका। जै प्रवीण कविराय ॥

मुग्धा अभिसारिका उदाहरण—

सवैया— वातन जात लगाई लई रस ही रस मे मनु हाथ के लीनो।
लाल तिहारे बोलावन कों मतिराम में बोल कह्यो परवीनो ॥
वेगि चलो न विलंब करो लख्यो वाल नवेलि को नेह नवीनो ॥
लाज भरी अंखियाँ विहसी बलि वोल कह्यो चित्त उत्तर दीनों ॥६८॥

प्रस्तुत चित्र में मुग्धा अभिसारिका नायिका के भाव को चित्रकार ने पद की अनुरूपता में चित्रित कर सुन्दर बना दिया है। कृष्णजी अपने सहज रूप में मसनद लगाये बैठे हैं। उनकी दूती लज्जावती मुग्धा नायिका का हाथ पकड़े उनके सम्मुख खड़ी उपर्युक्त पद के भाव को अभिव्यक्त करती-सी ज्ञात होती है। राधा लज्जावश कृष्णजी की ओर से मुँह फेरकर पीछे खड़ी दो सेविकाओं की ओर निहार रही है। पद के अनुसार चित्रकार को राधा का अंकन नहीं करना चाहिए था, किन्तु दूती ने राधा को किस प्रकार फुसलाकर अभिसार हेतु तैयार किया है, इस वात का अंकन भी चित्रकार ने चित्र में भली प्रकार कर दिया है। कृष्ण की उत्कण्ठा एवं मुग्धा अभिसारिका राधा की लज्जा का अंकनं अत्यधिक भावपरक बन पड़ा है। राजस्थानी चित्रकला में मध्या एवं प्रौढ़ा अभिसारिकाओं के चित्र एक ही रूढ़ शैली में वने हैं, जिनको आधार बनाकर पहाड़ी शैली के चित्रकारों ने भी वैसे ही चित्र बनाये हैं।[४] कृष्णपक्ष की रात में काले वस्त्राभूषण धारण कर अभिसार हेतु जानेवाली कृष्णाभिसारिका एवं श्वेत वस्त्राभूषण धारण कर जानेवाली शुक्लाभिसारिका नायिका का चित्रण काव्य के भाव को अधिक स्पष्ट एवं व्यापक वना देता है।[५]

---

१. देखिए, रसराज, पद १९०-१९१
२. „ एम० एस० रन्धावा : कांगड़ा पेण्टिग ऑन लव, फलक-७
३. „ प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या १३
४. „ एम० एस० रन्धावा : कांगड़ा पेण्टिग ऑन लव, फलक-७
५. वही, फलक-८

प्रवत्स्यत्पतिका

नायक के भविष्यत-वियोग की आशंका से व्याकुल होनेवाली नायिका प्रवत्स्यत्पतिका कहलाती है।[1] परकीया प्रवत्स्यत्पतिका के सामने और भी कठिनाई है। वह नायक का विदेशगमन सुनकर अत्यधिक व्याकुल होती हुए भी अपनी व्यथा सबके सामने प्रकट नहीं कर सकती। चलते-चलते नायक के दर्शनार्थ वह बहाना ढूंढ़ती है। रसराज के आधार पर चित्रित मारवाड़शैली के इस चित्र[2] में परकीया प्रवत्स्यत्पतिका के भाव को चित्रकार ने दो भागों में विभाजित कर अंकित किया है। पद इस प्रकार से अंकित है :

मोहनलाल को सुन्यो चलनि विदेस भयो
बाल मोहनी को चित्त निपट उचाट में
परी तल बेली तन मन में छबीली राखै
छिति पर छिनकु छिनकु पाँव खाट में
प्रीतम नयन-कुबलयन की चंद धरी
एक मैं चलैंगो मतिराम जिहिं बाट में।
नागरी नवेली रूप आगरी अकेली रीती
गागरी लै ठाढी भई बाट ही के घाट में ॥२१२॥[3]

नायिका राधा ने जब से कृष्ण के विदेशगमन की वात सुनी है, तब से उसके तन-मन में व्याकुलता और तलवेली व्याप्त हो गयी है। चित्र में नायिका को महल में चौकी पर व्याकुल अवस्था में वैठे बतलाया है। दूसरे भाग में एक ओर कृष्ण रथ में वैठने को तत्पर हैं और वही नायिका उनके दर्शनों हेतु बहाना बनाकर खाली घड़ा लेकर उस स्थल पर आ खड़ी हुई है। खाली घड़ा अपशकुन का प्रतीक भी होता है, जिसमें यह भी भाव है कि खाली घड़ा सम्मुख पाकर नायक विदेशगमन न करे।

विप्रलब्धा नायिका

जिसका प्राणाधार स्वयं संकेतस्थान बताकर भी न आये उस निराश नायिका (उसी संकेतस्थान पर आयी हुई) को विप्रलब्धा कहते हैं। केशव की 'रसिक-

---

१. चलन चहै परदेस को जा तिय को जव कंत।
ताहि प्रवतसित प्रयसि कहत महत मति वंत ॥२४७॥
—जगद्विनोद, पृ० ३५

२. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या १४

३. मतिराम : सं० कृष्णविहारी मिश्र, पृ० २४६

प्रिया' के उदाहरण पर आधारित १७वीं शती के मध्य के मेवाड़शैली के एक चित्र[1] में विप्रलब्धा नायिका राधा की व्यथा एवं व्याकुलता का काव्य की अनुरूपता में चित्रण हुआ है। पद उस चित्र में ऊपर इस प्रकार से लिखित है :

सूल से फूल सुबास कुबास सी भाकसी से भए भौन सभागे।
'केसव' बाग महाबन सो जुर सी चढ़ी जोन्ह सबै अंग दागे ॥
नेह लग्यो उर नाहर सो निसि नाह घरीक कहूँ अनुरागे।
गारी से गीत बिरी विष सी सिगरेई सिंगार अंकार से लागे ॥२३॥[2]

चित्र में पद के भाव के वातावरण को एवं आलम्बन राधा की मनोदशा को चित्रकार ने चतुराई से अंकित किया है। राजपूतशैली के स्थापत्य से सुसज्जित महल में नायिका कुर्सी पर बेकल-सी बैठी है। उसके मन में उचाँट का भाव है जो उसके कायिक अनुभावों से अभिव्यक्त होता है। एक ओर दो गायिकाएँ ढोलक और स्वरमण्डल वजा रही हैं, किन्तु संगीत का प्रभाव विपरीत देखकर अचम्भित हैं। नीचे उपवन है, जिसमें केले के गाछ अंकित हैं और एक कोने में शेर बैठा है, जो उपवन को भी महावन में परिवर्तित करता है और 'नेहलग्यो उर नाहर सो' के भाव को भी प्रदर्शित करता है। वातावरण पर चाँदनी की चासनी चढ़ी हुई है, जो विरहिन को सता रही है।

नायिकाभेद के पदों को आधार बनाकर राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियों में अनेक चित्र बने हैं। निश्चय ही ऐसे चित्रों के आधार पर काव्य का तथा नायिकाभेद की परम्परा का विस्तृत अध्ययन किया जा सकता है। सामन्ती वातावरण की प्रवृत्ति एवं नायिकाओं की रूप-सज्जा का अवलोकन भी इन चित्रों के माध्यम से किया जा सकता है।

२. उद्दीपन : जो रति आदि स्थायी भावों को उद्दीप्त करते हैं—उनकी आस्वादनयोग्यता बढ़ाते हैं, वे उद्दीपन-विभाव हैं। इनके द्वारा स्थायी भाव उद्दीप्त होकर आधिक्य को प्राप्त होता है। शृंगार के सखा, सखी, दूती, वन, उपवन, चन्द्र, चाँदनी, नदीतट, षड्ऋतु, बारहमासा आदि उपकरण उद्दीपन-विभाव होते हैं। उद्दीपन-विभाव के दो भेद होते हैं[3] : एक विषयगत और दूसरा बहिर्गत। इन्हें पात्रस्थ और बाह्य भी कह सकते हैं। पात्रस्थ उद्दीपन पात्र के गुण, चेष्टाएँ, हाव-भाव आदि और अलंकरण होते हैं। प्रकृति के अन्य उपकरण बाह्य उद्दीपन-विभाव हैं।

---

१. देखिए, सं० कार्ल खण्डालवाला : मिनियेचर पेंण्टिंग्स फ्रॉम दि श्री मोतीचन्द्र खजांची कलेक्शन, फलक-३२
२. देखिए, केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० ४२
३. ,, रामदहिन मिश्र : काव्यदर्पण, पृ० ५७

चित्रकला में उद्दीपन-विभाव को अंकित करने का अधिक अवकाश रहता है। काव्य में कितनी ही बार आलम्बन के रूप-सौन्दर्य के लिए या बाह्य उपकरणों के अंकन के लिए स्थान नहीं होता, किन्तु चित्रकार को आलम्बन के रूपांकन हेतु वस्त्राभूषणों तथा प्रकृति-परिवेश का पृष्ठभूमि (बैकग्राउण्ड) हेतु चित्रांकन करना ही होता है, इसलिए उद्दीपन-उपकरणों का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष अंकन चित्र-कला की अपनी निजी विशेषता है। चित्रकला में नायक-नायिका के रंगबिरंगे वस्त्र, अनेक प्रकार के अलंकरण तथा पृष्ठभूमि का भावानुकूल चित्रण उद्दीपन-विभाव के सजीव उदाहरण हैं। काव्य में उद्दीपनों का जहाँ वर्णन आया है, वहाँ चित्रकारों ने बड़े मनोयोग से उनका अंकन चित्रों में किया है।

राजस्थानी चित्रकला और उद्दीपन

सामन्ती संस्कृति की दाय होने के कारण राजस्थानी चित्रकला में पात्रस्थ और बाह्य उद्दीपनों का बहुलता से अंकन हुआ है। राधा, कृष्ण और अन्य गोप-गोपियों के रंगबिरंगे जरीकोर, कलाबत्तू, सलमे-सितारे आदि के वस्त्र एवं सैकड़ों प्रकार के स्वर्णिम तथा मणिमाणिक्य के अलंकरण पात्रस्थ उद्दीपनों तथा महल, बारहदरियाँ, कुंज, वन, उपवन आदि प्रकृति-परिवेश एवं दास-दासियाँ, सखी, दूतियाँ आदि बाह्य उद्दीपनों के प्रभावोत्पादक उदाहरण हैं। उपर्युक्त उद्दीपनों का जितना विस्तृत, बारीक एवं रंगीन चित्रण राजस्थानी चित्रकला की बूँदी[1] एवं किशनगढ़[2] शैलियों में हुआ है, उतना अन्य किसी तत्कालीन भारतीय शैली में नहीं हुआ। सूरदास ने अपने पद[3] में 'आजु राधिका भोर ही जसुमति गृह आई' कहकर छुटकारा पा लिया, किन्तु चित्रकार के सामने बड़ी कठिनाई उपस्थित हो गयी। उसने भोर का जैसा सजीव एवं सतरंगा चित्रण किया है, वह पद के भाव को सैकड़ों गुना उद्दीप्त करता है।[4] भोर की ललाई, आकाश और महल की छतरियों पर रंगीन आभा, पशु-पक्षियों की सक्रियता आदि का चित्रण चित्रकलागत उद्दीपन का सुन्दर उदाहरण है। चित्रकार को पृष्ठभूमि का निर्माण करना आवश्यक होता है। कवि का कार्य बिना पृष्ठभूमि का वर्णन किये भी चल जाता है। चित्रकार यदि नायिका के रतिभाव का अंकन करना चाहता है तो वह नायक-नायिका के आंगिक लावण्य, उनकी भावानुकूल चेष्टाओं और

---

१. देखिए, प्रमोदचन्द्र: बूंदी पेण्टिंग, फलक-२, ५, ७ तथा परिशिष्ट चित्रसंख्या ८
२. „ ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेण्टिंग
३. „ सूरसागर, खण्ड-१, पद १३३३
४. „ बूंदीशैली का विभ्रम-हाव का चित्र, दि टाइम्स ऑफ इण्डिया एनुवल-१९६३, फलक-२ तथा प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ४

उनके उचित वस्त्राभूषणों का विस्तृत अंकन करेगा।[१] उद्दीपनों के अंकन में चित्रकार अपने परिवेश का विशेष ध्यान रखता है। राजपूत संस्कृति में जिस प्रकार के वस्त्राभूषण प्रयोग में लाये जाते थे, उन्हीं का प्रमुखतया अंकन राजस्थानी चित्रण में उपलब्ध है।[२] प्रकृति-परिवेश में भी कलाकार अपने वातावरण से सम्बन्धित लता-वृक्ष, फल-फूल, पशु-पक्षी आदि का ही विशेष अंकन करता है। किशनगढ़शैली के चित्रों में तालाब, कमल, केला, बत्तख, जलमुर्गावी आदि का विशेष अंकन हुआ है।[३] इसी प्रकार बूंदीशैली में खजूर के वृक्ष, केला, कमल, सारस, बगुला, मोर, बन्दर आदि का अंकन उद्दीपनगत विभाव में हुआ है।[४] काव्य में सखा, सखी, दूती, सेविका आदि का उल्लेख नाममात्र को होता भी है और कितनी ही बार पद में संकेतित (अण्डरस्टूड) भी होता है, किन्तु चित्रकार चित्र को अधिक सारगर्भित एवं प्रभावपूर्ण बनाने के लिए उन सबका विस्तार से अंकन करता है। इसलिए काव्यगत उद्दीपनों का विस्तृत अध्ययन तत्सम्बन्धी चित्रों के माध्यम से सही प्रकार से हो सकता है।

ऋतुवर्णन एवं बारहमासा

जिस प्रकार काव्य में उद्दीपन के अन्तर्गत ऋतुवर्णन और बारहमासा का प्रमुख स्थान है, उसी प्रकार चित्रों में भी। काव्य एवं चित्रकला में ऋतुवर्णन एवं बारहमासा का अंकन राधा-कृष्ण अथवा नायक-नायिका के भावों को उद्दीपन करने में ऋतुचित्रण का प्रमुख योगदान रहा है। मध्यकालीन हिन्दी कृष्णकाव्य के ऋतुवर्णन एवं बारहमासा के प्रमुख पदों को आधार बनाकर राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियों में अंकन हुआ है,[५] जिसके आधार पर उसके भावों एवं उद्दीपनपक्ष का सही तथा सूक्ष्म अध्ययन किया जा सकता है। उदाहरण के लिए ऋतुवर्णन-सम्बन्धी कुछ पद प्रस्तुत किये जाते हैं, जिनको चित्रकारों ने भी अंकित किया है।

---

१. देखिए, विभ्रम-हाव, बूंदीशैली, प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेण्टिग, फलक-५
२. लहँगा, चीर, चोली, हार, हमेल, चौकी, बाजूबन्द, कड़ा, झूमक, कंगण आदि का विशेष अंकन, देखिए, बूंदीशैली एवं किशनगढ़शैली के अनेक चित्र
३. देखिए, ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेण्टिग, फलक-५, ६, ९
४. ,, प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेण्टिग, फलक-५, ७ तथा प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ८
५. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ८, ९, १७, १८

चैत्रमास

चैत्रमास में वसन्त अपने यौवन पर होता है, अतः ऋतुराज वसन्त का चित्रण भी इसी मास में किया जाता है। षड्ऋतुवर्णन एवं बारहमासे में क्रमशः वसन्त एवं चैत्र का काव्य एवं चित्रकला में एक-सा ही भावांकन एवं चित्रांकन होता है, जिसमें उद्दीपन-तत्त्वों का सतरंगा अंकन विशेष द्रष्टव्य है। बूँदीशैली के इस चित्र[1] में केशव की 'कविप्रिया' के चैत्रमास-सम्बन्धी पद[2] को आधार बनाकर जो उद्दीपन हेतु पात्रस्थ एवं बहिर्गत लुभावना चित्रण हुआ है, वह कला एवं काव्य के भावांकन की दृष्टि से उत्कृष्ट है। चित्र में परम्परानुसार ऊपर पद इस प्रकार अंकित है :

फूली लतिका ललित तरुनितर, फूले तरुवर।
फूली सरिता सुभग, सरस फूले सब सरवर।
फूली कामिनि, काम रूप करि कन्तनि पूजहिं।
सुक सारो कुल हंसे, फूलि कोकिल कल कूजहिं।
कहि 'केसव' ऐसी फूल महँ सूल न फूलहिं लाइयै।
पिय आप चलन की का चली चित्त न चैत चलाइयै ।।२४।।

चित्रकार ने प्रस्तुत पद पर आधारित चित्र को दो भागों में विभाजित कर उद्दीपक वातावरण का कलात्मक एवं काव्यभाव से भी अधिक चित्रण किया है, जिसका हम विस्तार से पहले विवेचन कर चुके हैं।[3] निश्चय ही प्रकृति का रंगीला वातावरण अत्यधिक उद्दीपक है एवं राधा, ऐसे ऋतुराज के चैत्रमास में, कृष्ण को विदेश जाने से बरजती है। नायिका की कायिक चेष्टाएँ एवं उसके वस्त्राभूषण आदि पात्रस्थ उद्दीपन-विभाव के एवं प्रकृति का सतरंगा मोहक पदानुकूल चित्रण तथा राजपूती बूँदीशैली के राजसी महलों का अंकन बहिर्गत उद्दीपन-विभाव के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। निश्चय ही ऐसे चित्रों के परिपार्श्व में तत्सम्बन्धी काव्य का अध्ययन सूक्ष्मता से किया जा सकता है।

बैशाखमास

वैशाख में गर्मी पड़ने लगती है, अतः यमुनास्नान एवं कुंजों में विश्राम लेने से ही तपन मिट सकती है। आनन्दराम कवि के बारहमासा-सम्बन्धी पद पर आधारित अलवरशैली के इस चित्र[4] में अन्य गोपियों के साथ जमुना में स्नान

---

१. देखिए, कैटलॉग ऑफ मिनियेचर पेण्टिंग ऑफ बड़ौदा म्युजियम, फलक-सी
२. ,, केशव-ग्रन्थावली, भाग-१, पृ० १५७
३. ,, प्रस्तुत ग्रन्थ, अध्याय ५
४. ,, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या १७

करना, राधा से गलबाँही डाले जल में खड़े रहकर जलविहार देखना एवं फूलों की सेज, महकता हुआ उपवन आदि उद्दीपन-विभाव हैं। चित्र एवं पद का विस्तृत विवेचन पीछे हो चुका है।

श्रावणमास

श्रावणमास में प्रकृत्ति अपना नवीन शृंगार सजाती है। चारों ओर हरी-हरी भूमि, काले-कजरारे वादल, चमकती हुई बिजली, बरसती फुहार एवं मणि-माणिक्यजड़ित स्वर्णिम झूला झूलते हुए राधा-कृष्ण आदि का अंकन श्रावणमास को रंगीला तथा मोहक बना देता है। उपर्युक्त सारे ही उपकरण राधा-कृष्ण के रतिभाव को उद्दीप्त करने के लिए पर्याप्त साधन हैं। अलवरशैली के इस चित्र[1] में श्रावणमास का जो चित्रण हुआ है, उसमें आनन्दराम कवि के तत्सम्वन्धी पद के भाव का अंकन विस्तार एवं सूक्ष्मता से हुआ है। दासियों का गायन भी उद्दीपन-विभाव के ही अन्तर्गत आयेगा। पद इस प्रकार है :

श्रीगणेशायेनमः अथ वारामासा लिख्यतेः दोहा ॥
श्री गुरु सारद गणेस हर हरि ब्रह्मादि मुनीस।
ब्रज विनोद रस मोद की करो कछुक वकसीस ॥१॥
नव निकुंज ब्रज वननि में विहरत स्यामा स्याम।
द्वादस मास विहार कछु बरनत आनन्द राम ॥२॥
प्रथम मास सावन सरस छहरिति को सिर मोर।
हरी भूमि द्रुम कदम्भ तरु झूलत है तिहि ठौर ॥३॥

कार्तिकमास

वारह मासों के चित्रण में कार्तिक मास का चित्रण भी कला एवं भावांकन की दृष्टि से कमाल का हुआ है। बूंदीशैली के एक चित्र[2] में केशव की काव्यकला की कल्पना को चित्रकारों ने जिस व्यतिरिक्तता से अंकित किया है, वह कला, भावांकन एवं विस्तृत पृष्ठभूमि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस चित्र के सम्मुख कवि की कल्पना एवं शब्दों की सीमारेखा का सहज ही ज्ञान हो जाता है। उद्दीपनतत्त्वों का इतना विस्तृत अंकन वहुत कम चित्रों में देखने को मिलता है। केशव का पद इस प्रकार है :

---

१. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या १८
२. ,, प्रिन्स ऑफ वेल्स म्युजियम, बम्वई, आर्ट गैलेरी, सं० २२-८४ तथा प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट, चित्रसंख्या ९

बन, उपवन, जल, थल, आकाश, दीसंत दीपगन ।
सुख ही सुख सुखराति जुवा खेलत दम्पति-जन ।
देव चरित्र विचित्र चित्र-चित्रित आँगन चर ।
जगति जगत जगदीश-जोति, जगमगत नारि नर ।
दिन दान न्हान गुनगान-हरि जनम सुफल करि लीजिये ।
कवि 'केशवदास' बिदेश-मति कन्त न कातिक कीजिये ।।३१।।[1]

प्रस्तुत चित्र को चित्रकार ने एक ही पृष्ठभूमि पर अंकित कर भाव, विभाव, अनुभाव आदि का मनोवैज्ञानिक एवं विस्तृत अंकन कर दिया है। निरभ्र आकाश एवं वन-उपवन में कन्दीलें प्रकाश फैला रही हैं। राधा-कृष्ण दम्पति वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर जुआ खेल रहे हैं। आँगन, घर एवं मन्दिर अनेक चित्रों से मण्डित हैं तथा भक्तगण जगदीशजी (चारभुजा) की पूजा-अर्चना में निमग्न हैं। नीचे स्त्रियाँ सरोवर या नदी में स्नान कर रही हैं। कोई भक्तिन उपदेश दे रही है, और स्त्रियाँ ध्यानपूर्वक सुन रही हैं। नायिका राधा ऐसे कार्तिक मास के मादक एवं उद्दीपक वातावरण में कृष्ण को परदेश जाने से वर्जित करती है। चित्र में रतिभाव प्रमुख है, राधा-कृष्ण आलम्बन हैं, तारों-भरा एवं दीपित कन्दीलों से युक्त आकाश, फल-फूलों से युक्त वन-उपवन, नायक-नायिका का जुआ खेलना, नारियों का कार्तिकस्नान करना आदि उद्दीपन-विभाव हैं एवं जुआ खेलने की मुद्रा, भजनकरने, उपदेश देने, ध्यानपूर्वक सुनने एवं जलविहार करने की कायिक चेष्टाएँ अनुभाव हैं। एक स्त्री स्नानोपरान्त नग्न है और लहँगा पहनते हुए अंकित की गयी है, जो चित्र की आत्मा को और भी संवेदक बना देती है।

बारहमासा एवं ऋतुवर्णन राजस्थानी चित्रण का प्रमुख विषय रहा है। केशव, जनराज, आनन्दराम आदि कवियों के तत्सम्बन्धी पदों को आधार बनाकर जो अंकन हुआ है,[2] वह हिन्दी कृष्णकाव्य एवं अन्य बारहमासा तथा ऋतुवर्णन-सम्बन्धी पदों के विस्तृत एवं सूक्ष्म अध्ययन के लिए विशेष उपयोगी है। उद्दीपन-विभाव का विस्तृत अध्ययन तो इन चित्रों के आधार पर भलीभाँति किया जा सकता है।

अनुभाव

'अनुभावयन्ति इति अनुभावा'[3]—स्थायी भावों का अनुभव कराने में जो

१. देखिए, केशव-ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० १५९
२. ,, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ
३. ,, अमरकोश, अनुभाव शब्द

समर्थ हों, वे अनुभाव हैं। जब आन्तरिक भाव कर्मेन्द्रियों द्वारा बाह्य रूप से प्रकट होते हैं, तब वे अनुभाव कहलाते हैं। अनुभाव वास्तव में शारीरिक चेष्टाएँ हैं, जिनके माध्यम से भाव का अनुभव होता है, इसलिए अनुभाव को स्थायी भाव का कार्य कहा गया है। अनुभावों का क्षेत्र विस्तृत है। प्रमुखतया विद्वानों ने इन्हें तीन कोटियों में रखा है :

१. सात्विक अनुभाव : शरीर के अकृत्रिम अंगविकार को सात्विक अनुभाव कहते हैं। इनके आठ भेद होते हैं।[1]

२. मानसिक अनुभाव : अन्तःकरण की वृत्ति से उत्पन्न हुए प्रमोद आदि को मानसिक अनुभाव कहते हैं।

३. कायिक अनुभाव : कटाक्ष आदि कृत्रिम आंगिक चेष्टाओं को कायिक अनुभाव कहते हैं।

सात्विक और मानसिक अयत्नज और कायिक यत्नज अनुभाव भी कहलाते हैं। सात्विक और हाव को कुछ आचार्यों ने अलग माना है, पर अधिकांश ने सात्विक और हाव को अनुभावों में ही मान लिया है।[2] संयोग के समय नायिकाओं में जो स्वाभाविक चेष्टाएँ अथवा भौंह-नेत्रादि के विलास-व्यापार मनोविकारों के आधार से होते हैं, वे ही हाव कहलाते हैं। ये दस प्रकार के होते हैं—१. लीला, २. विलास, ३. विच्छित्त, ४. विब्बोक, ५. किलकिंचित, ६. विभ्रम, ७. ललित, ८. मोट्टायत, ९. विहृत और १०. कुट्टमित।[3]

अनुभावांकन

काव्य एवं चित्रकला के भावांकन में अनुभावों का विशेष योगदान रहता है। चित्रकार तो प्रमुखतया नायक-नायिका के रूपांकन के उपरान्त उनकी कायिक चेष्टाओं के द्वारा ही भावाभिव्यक्ति करता है। केवल रूपांकन करने या वातावरण का सजीव अंकन करने से ही चित्रकार के कार्य की इतिश्री नहीं होती, वरन आलम्बन के अन्तर और बाह्य को प्रकट करना ही कलाकार का प्रमुख लक्ष्य होता है। मध्यकालीन चित्रकला आधुनिक चित्रकला की अपेक्षा अधिक बहिर्मुखी है, अतः उसमें बाह्य आंगिक चेष्टाओं के द्वारा भाव को अभिव्यक्त करने की अधिक प्रवृत्ति रही है। काव्य के भाव को चित्रकार जब चित्रांकित करने बैठता है तो उसका कार्य अधिक श्रमसाध्य हो जाता है। यदि कलाकार मँजा हुआ नहीं है तो भाव के अनुकूल न रूप का अंकन ही कर सकता है और न

---

१. देखिए, रामदहिन मिश्र : काव्यदर्पण, पृ० ५९
२. वही, पृ० ६६
३. ,, केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० ३२

उद्दीपन के अनुकूल वातावरण का ही। अनुभावों के अंकन में उसकी सबसे कठिन परीक्षा होती है। आँख, होंठ, हाथ, अँगुली आदि अनुभावांकन के जो प्रमुख अंग हैं, यदि उनका उचित भावानुकूल अंकन नहीं हो तो भाव की अभिव्यक्ति हो ही नहीं सकती, इसलिए शरीर के एक-एक अंग, अंगों की एक-एक मुद्रा का भाव के अनुकूल अंकन चित्रकला की शिक्षा का प्रमुख अंग है।

आँख और हाथ दो ऐसे प्रमुख अंग हैं, जिनके द्वारा चित्रकार विशेषतया अनुभावांकन करता है। ओंठ, दाँत, भृकुटि तथा अन्य आंगिक मुद्राएँ भी अनुभावांकन में योगदान देती हैं, पर चित्रकार प्रमुखतया हाथ और अँगुली के विभिन्न इशारों तथा आँखों के दृष्टिभेद से भावाभिव्यक्ति करता है। चित्रकार में इस प्रकार की चेष्टाएँ अनुभावों के अध्ययन के लिए विशेष सहायक हो सकती हैं। काव्य के भाव को आधार बनाकर जितने चित्र बने हैं, वे काव्यगत अनुभावों के अध्ययन के अमूल्य भण्डार हैं। कुछेक उदाहरण देकर अनुभावांकन का स्पष्टीकरण करेंगे।

सूर के पद पर आधारित मेवाड़शैली के नामकरण-सम्बन्धी एक चित्र[1] में ऋषि पत्रा देखकर कृष्ण का नामकरण कर रहे हैं तथा ग्रह-गोचर देखकर अँगुली के इशारे से नन्द-यशोदा आदि के मन में वात्सल्यभाव जगा रहे हैं। नन्द और यशोदा की मुखमुद्रा तथा अन्य आंगिक चेष्टाएँ अनुभावों के सुन्दर उदाहरण हैं सेविकाओं का प्रसन्न मुद्रा में खड़े होना भी अनुभावों के अन्तर्गत ही आयेगा।

विहारी के प्रसिद्ध दोहे[2] पर आधारित मेवाड़शैली के चित्र[3] में हाल-बेहाल पड़े कृष्ण आलम्बन हैं तथा आश्रय राधा है। सखी के वचन एवं कृष्ण के अस्त-व्यस्त वस्त्राभूषण उद्दीपन-विभाव हैं। राधा, कृष्ण की बेहालगी को देखकर विस्मय, लज्जा आदि से स्तम्भित है, अतः स्तम्भ नामक सात्विक अनुभाव का अंकन चित्रकार ने इस चित्र में बड़ी कुशलता से किया है। राधा दूती के गले में हाथ डाले एक हाथ से कृष्ण की ओर इंगित कर भाव का अनुभव कर रही है। राधा का सखी के गले में हाथ डालना, हाथ से इशारा करना तथा सर झुकाकर लज्जित और स्तम्भित-सी खड़े होना आदि अनुभाव हैं। वास्तव में तो दोहे के भाव को चित्रकार ने कृष्ण की अप्रत्यक्ष बेहालगी, जो कि दूती के द्वारा राधा को कही गयी है, का चित्रण प्रत्यक्ष रूप में कर चित्र को अधिक भावपरक एवं चमत्कारपूर्ण बना दिया है।

---

१. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट, चित्रसंख्या २
२. कहा लड़ैते दृग करे, परे लाल वेहाल।
   कहुँ मुरली, कहुँ पीत पटु, कहूँ मुकुट बनमाल ॥१५४॥
३. देखिए, परिशिष्ट, चित्रसंख्या १०

सूर के पद[1] पर आधारित अन्य मेवाड़शैली के विपरीतरति से सम्बन्धित चित्र[2] में चित्रकार ने राधा की अभिलाषा, जो कि काव्य में केवल संचारी भाव थी, का चित्रण कर संचारी को अनुभावों में परिवर्तित कर अनोखा चमत्कार दिखाया है। कवि और चित्रकार में यही अन्तर है। कवि संचारियों के द्वारा भाव की पुष्टि करता है और चित्रकार अनुभावों के द्वारा रूपांकन और उद्दीपन हेतु पृष्ठभूमि-अंकन तथा अनुभावांकन चित्रकार के प्रमुख हथियार हैं। इस चित्र में तीनों ही बातों का काव्यात्मक एवं कलात्मक चित्रण हुआ है। यह चित्र राधा और कृष्ण के अनुभावों के अध्ययन हेतु सुन्दर उदाहरण है। राधा को कृष्ण के वस्त्र पहनते हुए और कृष्ण को राधा के विपरीतरति हेतु सारी क्रियाएं करते हुए एवं कामशास्त्रीय आधार पर साक्षात विपरीतरति करते हुए चित्रित करना रतिभाव की अभिव्यक्ति के सुन्दर अनुभाव हैं।

हावों की अभिव्यक्ति हेतु काव्य को आधार बनाकर अनेक चित्र बने हैं। विभ्रम-हाव का चित्रांकन राजस्थानीशैली की प्रमुख विशेषता रही है। प्रिय के मिलन के कारण हर्षातिरेक एवं हड़वड़ी में विपरीत वस्त्राभूषण वदलना या विपरीत अनहोना कार्य करना विभ्रम-हाव के अन्तर्गत आते हैं।[3] मारवाड़शैली में सूर के पद पर आधारित इस चित्र[4] में विभ्रम-हाव का अनुरूप चित्रण किया गया है। चित्र के ऊपरी भाग में पद इस प्रकार अंकित है :

आजु राधिका भोरहीं जसुमति कैं आई।
महरि मुदित हँसि यों कह्यौ, मथि भान-दुहाई॥
आयसु लै ठाढी भई, कर नेत सुहाई।
रीतो माट बिलोवई, चित्त जहाँ कन्हाई॥
उनके मन की कहा कहों ज्यों दृष्टि लगाई।
लैया नोई वृषभ सों, गैया बिसराई॥
नैननि में जसुमति लखी दुहुं की चतुराई।
सूरदास दंपति-दसा कापै कहि जाई॥[5]

कवि भोर शब्द कहकर आगे बढ़ गया, किन्तु चित्रकार ने भोर की लाली,

---

१. देखिए, सूरसागर, खण्ड-२, पद २७५९
२. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट ङ, चित्रसंख्या ५
३. वास विभूषन प्रेम तें जहाँ होइ विपरीत।
दरसन-रस तन मन रसित, गनिविभ्रम की गीति॥३०॥
—केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० ३४
४. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ४
५. देखिए, सूरसागर, खण्ड-१, पद १३३३

पक्षियों की चहचहाट तथा क्रियाशीलता, कमलों का प्रस्फुटन आदि उद्दीपक वातावरण को अत्यधिक श्रम से अंकित कर अपनी कला का परिचय दिया है। यशोदा के कहने पर राधा का माँट रीता ही विलोना तथा चित्त कन्हाई के पास होना आदि विभ्रम-हाव का अंकन है। उधर कृष्ण भी राधा को देखते ही विभ्रम में पड़ गये। गाय को तो वे भूल गये और वैल के ही नियाना (दूहते समय गाय के पिछले पैर बाँधने की रस्सी) लगाकर दूध काढ़ने वैठ गये। कृष्ण का बैल के नीचे वैठना तथा एकटक राधा को देखना विभ्रम-हाव का परिचायक है। इस पद में और चित्र में माता यशोदा आश्रय है, जो दोनों की चतुराई को देखकर ठोड़ी पर हाथ लगाकर चकित-सी खड़ी है। वैल के बिदकने तथा गाय का बछड़े के प्रति वात्सल्य का चित्रण पद से व्यतिरिक्त चित्रण है, जिसके कारण चित्र और भी सुन्दर वन गया है।

इसी पद पर आधारित बूँदीशैली के विभ्रम-हाव के चित्रण[1] में प्रकृति-परिवेश का अंकन अत्यधिक रंगीन वन पड़ा है। कला की दृष्टि से प्रिन्स ऑफ वेल्स म्युजियम, बम्बई की कला-दीर्घा में प्रदर्शित यह चित्र उत्कृष्ट है।

केशव की 'रसिकप्रिया' के आधार पर "अथश्री कृष्ण जू को विभ्रम-हाव" का १८वीं शती के मध्य का बूँदीशैली का चित्र[2] भावांकन एवं उद्दीपक वातावरण के अंकन की दृष्टि से विशेष महत्त्व का है। चित्र के परिपार्श्व में पीली पृष्ठ-भूमि पर पद इस प्रकार तूलिका से अंकित है :

अथ श्रीकृष्ण जू को विभ्रम हाव।
नंद नंदन खेलत है बनै गात बनी छवि चंदन के जल की।
व्रषभान सुताहिं विलोकन ही रुचि चित्त में विभ्रम की झलकी।
गिरि जात न जानत पाननि खात बिरी करि पंकज के दल की।
बिहँसी सब गोप सुता हरि-लोचन मूँदि सुरोचि दृगंचल की ॥३२॥[3]

प्रस्तुत चित्र में श्रीकृष्णजी चन्दन की छवि से अंकित होकर वन में खेल रहे थे कि राधा को देखते ही उनके मन में विभ्रम का भाव झलक आया। जो पान खाने के लिए हाथ में लिये हुए थे, वे गिरने लगे और वे कमल की पंखुड़ियाँ खाने लगे। उनकी इस विभ्रम-हाव की स्थिति को देखकर राधा के साथ की अन्य गोपियाँ हंसने लगीं। चित्रकार ने काव्य में 'बनै' शव्द आने से वन का

---

१. देखिए, दि टाइम्स ऑफ इण्डिया एनुवल-१९६३ में प्रकाशित, फलक-२
२. ,, प्रमोदचन्द्र : बूँदी पेण्टिग, फलक-५ पर प्रकाशित तथा माधुरी देसाई, वम्बई के निजी संग्रह में
३. देखिए, केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० ३५

अर्थात प्रकृति-परिवेश का इतना सुन्दर चित्रण किया है जो किशनगढ़शैली[1] के अतिरिक्त अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। अनेक प्रकार के पेड़ और लताएँ तथा झाड़ियाँ, जो फल और फूलों से लदी हुई हैं, तथा अनेक प्रकार के पक्षी, जो पेड़ों पर, सरोवर में तथा आकाश में स्वच्छन्द विचरण करते हुए अंकित किये गये हैं। एक ओर लाल पृष्ठभूमि पर कृष्णजी को कमल की पंखुड़ियाँ खाते हुए अंकित किया है, उनकी दृष्टि राधा से लगी हुई है। तीन-चार सेवक मोरछल, चँवर आदि लिये पीछे खड़े हैं। वे भी कृष्ण की विभ्रम-स्थिति को देखकर चकित हैं। दूसरी ओर सामने शृंगार साजे एक हाथ से घूँघट का कोर थामे राधा कृष्ण को देख रही है। उनके पीछे एक सेविका मोरछल लिये खड़ी है तथा तीन गोपियाँ कृष्ण की विभ्रम-स्थिति पर मुस्कराती हुई बातें कर रही हैं।

प्रस्तुत चित्र में विभ्रम-हाव का सुन्दर अंकन हुआ है। कृष्ण और राधा आलम्बन-विभाव हैं। प्रकृति-परिवेश उद्दीपन है और कृष्ण का कमलपंखुड़ी खाना तथा राधा को एकटक देखना सात्विक अनुभाव हैं। कृष्ण तथा अन्य गोपों की वेशभूषा एवं मोरछल, चँवर आदि का अंकन सामन्ती वातावरण से प्रभावित है।

निष्कर्ष

इस विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हिन्दी कृष्ण-काव्य में जैसा सरस भावचित्रण मिलता है, राजस्थानी चित्रशैलियों में उनका वैसा ही सरस चित्रांकन करने का प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है। इधर कवि लोग भी राधा-कृष्ण से सम्बन्धित चित्रभूमि पर खड़े होकर भावांकन में प्रवृत्त हुए दीख पड़ते हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि काव्य और चित्र अपनी पारस्परिकता से भाव की एक ही भूमि को सिद्ध करते हैं, किन्तु कृष्णकाव्य और कृष्णचित्रों ने तो इस भूमि को और भी अधिक प्रशस्त कर दिया है।

---

१. देखिए, ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेण्टिग तथा किशनगढ़ दरबार का निजी संग्रह

७

काव्यशिल्प एवं चित्रांकन

किसी भी कला की अभिव्यक्ति में शिल्प का महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिल्पी की चातुर्यपूर्ण शिल्पप्रक्रिया ही तो उपकरणों के साथ 'कला' की अभिधा प्राप्त करती है। शिल्प का कृति के रूपनिर्माण में प्रमुख योग रहता है। इसी से उसकी सार्थकता है। रूप कलाकृति में प्रवेश करने का सिंहद्वार है, जिसकी साज-सज्जा का भार शिल्प पर रहता है। सामान्यजन जव किसी कलाकृति से सम्पर्क स्थापित करने चलता है तो वह पहले शिल्प से ही प्रभावित होता है। शिल्प, कला का वाह्य आवरण है जो किसी कलाकृति में चमक-दमक पैदा कर उसे प्रभावोत्पादक वनाता है।

काव्यशिल्प

काव्य में भी भावाभिव्यक्ति के जितने वाह्य कलोपकरण हैं, वे काव्यशिल्प की कोटि में आ सकते हैं। काव्य के कलापक्ष में अनेक उपकरणों का समावेश होता है, जिनके सामूहिक प्रयत्न से भावानुकूल अभिव्यक्ति हो पाती है। वस्तु-चयन तथा अनुकूल पृष्ठभूमि को कलाकार अपने कलांकन का आधार वनाता है तथा लक्षित और उपलक्षित चित्रयोजना द्वारा भाषा के माध्यम से वह अपनी बात को प्रेषणीय वनाता है। काव्य में उपर्युक्त शिल्पतत्त्व प्रायः अनुभूत होते हैं और चित्रकला में चाक्षुष। इसलिए चित्रकला के विभिन्न वाह्य उपकरणों के पर्यवेक्षण द्वारा काव्य के शरीर को समझने में सहायता मिलती है।

वस्तुचयन

शब्द, रेखा, रंग आदि के माध्यम से कवि एवं चित्रकार अपने वर्ण्य विषय का चित्रांकन करता है तथा चुने हुए विषय के अंकन में वह प्रमुखतया दो उपकरणों का चित्रण कर भावाभिव्यक्ति करने में समर्थ होता है—१. रूपचित्रण

एवं २. पृष्ठभूमिचित्रण। रूपचित्रण में भी कवि एवं चित्रकार दो उपकरणों के चित्रांकन पर विशेष ध्यान देता है—१. अंग-प्रत्यंगों का चित्रण एवं २. वेशभूषा का चित्रण। हिन्दी कृष्णकाव्य को आधार बनाकर राजस्थानी चित्रकला में जो रूप एवं वेशभूषा का चित्रण हुआ है, उसका विस्तार से विवेचन पिछले अध्याय में लक्षित चित्रयोजना के अन्तर्गत किया जा चुका है। यहाँ पर तत्कालीन परिस्थिति एवं वातावरण के परिप्रेक्ष्य में कृष्ण-राधा, नन्द-यशोदा, गोप-गोपी आदि के रूपचित्रण एवं वस्त्राभूषणों के चित्रण पर विचार करना अनुचित न होगा।

रूपचित्रण

रूपचित्रण काव्य और चित्रकला का अत्यधिक प्रभावशाली कलोपकरण है। नायक, नायिका तथा अन्य पात्रों के अंग-प्रत्यंगों का अंकन काव्य एवं चित्रकला का प्रमुखतम आधार है। उनके माध्यम से ही कलाकार अपनी बात कहने में समर्थ होता है। हिन्दी कृष्णकाव्य को आधार बनाकर राजस्थानी चित्रकला में जो रूपांकन हुआ है, वह कृष्ण-राधा तथा अन्य बालगोपालों की पारम्परिक परि-कल्पना के आधार पर तो हुआ ही है, साथ ही उस पर तत्कालीन देशकाल और परिस्थिति का प्रभाव भी कम नहीं रहा है। कृष्ण तथा कृष्ण-सम्बन्धी अनेक चरित्रों के अंग-प्रत्यंगों के अंकन में प्रत्येक शैली के चित्रकारों की अपनी-अपनी विशेषता रही है। मेवाड़शैली के कृष्ण गठीले तथा मेवाड़ी पुरुषों की शारीरिक बनावट के अनुकूल है।[1] नन्द बाबा को मुगल सामन्तों की भाँति दाढी से विभूषित किया गया है[2] तथा राधा और अन्य गोपियों के कलेवर में लोककला की पुष्टता का पूर्ण प्रभाव है।[3] किशनगढ़शैली में कृष्ण का छरहरे बदन के राजकुमार और राधा का तन्वंगी राजकुमारी की भाँति अंकन किया गया है।[4] दुहराने की आवश्यकता नहीं कि राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियों में रूपचित्रण परम्परा के साथ ही अपने भौगोलिक-सांस्कृतिक परिवेश के अनुकूल ही अधिक हुआ है।

काव्य एवं चित्रकला के रूपांकन में दो प्रभाव विशेष दर्शनीय हैं—१. लोक-कलात्मक और २. सामन्ती। भक्तिकालीन काव्य लोककलात्मक प्रभाव से ओत-प्रोत है, अतः 'सूरसागर' जैसे काव्य को आधार बनाकर चित्र अंकित किये गये

---

१. देखिए, प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध-परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ११
२. देखिए, वही, चित्रसंख्या २, ३
३. वही, चित्रसंख्या १, २, ३
४. देखिए, ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेण्टिग, फलक-६, ११

हैं।[१] 'रसिकप्रिया', 'विहारी-सतसई', 'रसराज' आदि पर आधारित चित्र प्रायः सामन्ती संस्कृति के प्रतीक होने के कारण सामन्ती प्रभाव से ओतप्रोत हैं।[२] वास्तव में तो १८वीं शती के प्रारम्भ से पूर्व तक के राजस्थानी शैली के चित्रों में लोककला का प्रभाव अधिक है। उस समय तक के चित्र धार्मिक भावना अथवा भक्तिधारा से ही अधिक प्रभावित हुए हैं।

१८वीं शती से राजस्थान के राजा मुगलदरवार के अनुकरण पर अपने साम्राज्य में दरबारी जीवन भोगने लगे थे। औरंगजेब के समय से ही राजस्थान में राजपूती संस्कृति पनपने लगी थी और दरबारी जीवन मुगलों की भाँति जीया जाने लगा था, अतः काव्य एवं चित्रकला में तत्कालीन दरवारी प्रभाव कूट-कूट-कर भरा हुआ है। अंग-प्रत्यंगों के चित्रण में कलाकारों ने लोकसंस्कृति और सामन्ती संस्कृति के प्रभाव को अनायास ही ग्रहण किया है।

वेशभूषा

काव्य और चित्रकला में नायक-नायिका आदि की वेशभूषा का वर्णन एवं अंकन विस्तार से हुआ है। मध्यकालीन हिन्दी कृष्णकाव्य में कृष्ण की पारम्परिक वेशभूषा के साथ ही सामयिक वस्त्राभूषणों का चित्रण भी कवियों ने किया है।

भक्तिकालीन वेशभूषा

भक्तिकालीन काव्य में जिस प्रकार पारम्परिक वेशभूषा का अधिक वर्णन हुआ है, उसी प्रकार उस काव्य को आधार बनाकर अंकित किये गये राजस्थानी चित्रों में भी प्रायः वैसी ही वेशभूषा का अंकन हुआ है। कृष्ण का पीताम्बर, कछनी, झगा, मोरमुकुट, वैजयन्तीमाला आदि ऐसे उपकरण हैं जिनका काव्य एवं चित्रकला में विस्तृत चित्रांकन हुआ है। राधा, यशोदा तथा अन्य गोपियों की वेशभूषा के वर्णन एवं चित्रण में तत्कालीन वेशभूषा का प्रभाव अधिक है। सूरदास ने अपने पदों में वेशभूषा-सम्वन्धी जिन उपकरणों का बार-बार चित्रण किया है वे इस प्रकार हैं :

१. कपड़े : पीताम्वर, झगा, कछनी, नीलाम्वर (पद ३१२५), चूनरी (पद ३४४९), पचरंगपाट (पद ३४५१), पाटपविन्ना (पद ३४५१), झूमकसारी (पद ३४९२), दखनीचीर (पद ३५२०), तनसुख लहँगा (पद ३२२९), तिपाई को लहँगा (पद ३५२०), लटपटी पाग (पद ३१०३) आदि।

२. गहने : हार, चौकी, हमेल, कुण्डल, कर्णफूल, वेसर, कण्ठसिरी, गजमोती

---

१. देखिए, प्रस्तुत शोध-ग्रन्थ, चित्रसंख्या १, २, ३
२. ,, वही, चित्रसंख्या ८, ९, १०, १३, १५

का हार, गजरा, वाजूवन्द, किंकनी, सीसफूल, मोरमुकुट, झूमक, नूपुर, जड़ाऊ टीका आदि।[1]

३. मोतीमुक्ता : विद्रुम, हीरा, लाल, पिरोजा, मोती, नीलम, स्फटिक, प्रवाल, मनि, मयारि, मरुव आदि।[2]

४. अन्य उपकरण : जावक, पीक, काजर, कुंकुम, चोवा, चन्दन, मृगमद, लाली, सेंदुर, विन्दी आदि।

सूरदास ने अपने पदों में वेशभूषा-सम्वन्धी उपर्युक्त उपकरणों का स्थान-स्थान पर जी खोलकर उपमामूलक चित्रण किया है। इनमें से अधिकतर कपड़े, गहने, मोती तथा अन्य उपकरण भक्तिकालीन समाज में प्रयुक्त होते रहे हैं। राजस्थानी चित्रकारों ने भी उपर्युक्त उपकरणों का नायक-नायिका कृष्ण-राधा तथा अन्य पात्रों की वेशभूषा के अंकन में वहुलता से प्रयोग किया है।[3] १६वीं शती से १९वीं शती तक के सम्भ्रान्त समाज की वेशभूषा का चित्रण तत्कालीन चित्रकला में आज भी आँखों से देखा जा सकता है। चित्रकला में उन उपकरणों का अवलोकन कर काव्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन भी भली प्रकार किया जा सकता है।

रीतिकालीन वेशभूषा

रीतिकालीन काव्य सामन्ती प्रभाव से आक्रान्त है, अतः कृष्ण, राधा, गोप, गोपी आदि की वेशभूषा में राजा-रानियों, सामन्तों, जागीरदारों, मनसबदारों आदि के वैभवपूर्ण अमूल्य वस्त्राभूषणों का प्रभाव अधिक है। रीतिकालीन काव्य के नायक और नायिका कृष्ण तथा राधा किसी राजा और रानी से कम नहीं हैं। केशव[4], विहारी[5], नागरीदास[6], पद्माकर आदि कवियों का काव्य राजसी वैभवपूर्ण वस्त्राभूषणों के चित्रण से भरा पड़ा है। उस काव्य के आधार पर अंकित राजस्थानी शैली के चित्रों में तो तत्कालीन समाज में प्रयुक्त वस्त्राभूषणों का अंकन वेजोड़ है। चित्रगत नायक-नायिका सोने-चाँदी के आभूषणों से लदे पड़े

---

१. देखिए, सूरसागर, पद ३४५१
२. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट के अनेक चित्र
३. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ के अनेक चित्र
४. केशव-ग्रन्थावली, पृ० १४, २०, ३०, ३३, ३४, ३५, ५२, ७८ आदि
५. विहारी-रत्नाकर, दोहा २५, १०, ५३८
६. जरतारी की सारी को अंग जवाहिर
सीस झुकैस की खोर रची।
—नागर समुच्चय-उत्सवमाला।

हैं। मुगलकालीन वैभव का विदेशी यात्रियों ने जैसा वर्णन किया है[१], वह राजस्थानी चित्रकला में विशेष दर्शनीय है।[२]

मुगलप्रभाव

उत्तर मध्यकाल में भारतीय संस्कृति पर मुगलप्रभाव अत्यधिक बढ़ गया था, इसलिए भारतीय जनजीवन एवं दरबारी जीवन में मुस्लिम संस्कृति-सम्बन्धी उपकरणों का प्रयोग बहुलता से होने लगा। लोकजीवन तो फिर भी हिन्दू संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा आदि से विलग न हो सका, पर दरबारी संस्कृति के परिवेश में चलनेवाले सामन्त, मनसबदार, जागीरदार, कलाकार, सेवक आदि सामन्ती वैभव की चकाचौंध में अन्धी दौड़ लगाने लगे, जिसका फल यह हुआ कि उनकी वेशभूषा तथा अन्य उपकरण मुस्लिम संस्कृति की नकल करने लगे। राजाओं, सामन्तों, एवं अन्य सलातीनों (दरबार पर आश्रित राजसमूह) की वेशभूषा और मुगलों की राजसी वेशभूषा में बहुत कम अन्तर था। मध्यकालीन काव्य में मुगल दरबारजनित वेशभूषा का चित्रण यथास्थान हुआ अवश्य है, पर तत्कालीन चित्रकला में तो यह अंकन बहुलता से मिलता है।[३] जयपुरशैली और अलवरशैली[४] के चित्र तो इस वेशभूषा से इस प्रकार आक्रान्त हैं कि उनमें और मुगलशैली के चित्रों में भेद कर पाना कठिन है। इसके दो प्रमुख कारण हैं—प्रथम तो मुगलदरबार से राजस्थान के राजाओं का सीधा सम्बन्ध था जिससे एक तो एक-दूसरे की संस्कृति का आदान-प्रदान और प्रभाव स्वाभाविक था, तथा दूसरे, औरंगजेब की कलाओं के प्रति उदासीनता और मुगलदरबार के विघटन के उपरान्त वहाँ के दरबारी कलाकार राजस्थान के राजदरबारों में आश्रय पाने लगे[५], जिससे मुस्लिम वेशभूषा और अन्य उपकरणों का अंकन राजस्थानी चित्रकला में बहुलता से होने लगा। काव्य और चित्रकला में प्रयुक्त मुस्लिम वस्त्राभूषणों में से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—जरी के कपड़े, कलाबतू के कपड़े, तारकसी के कपड़े, पगड़ी, जामा, अचकन, कमरबन्द, चूड़ीदार पाजामा, जूती, इजार, पाँव से कमर तक जामा, सलमे-सितारे से जड़ी झीनी ओढ़नी तथा सोने-चाँदी, मणि-माणिक्य के सैकड़ों प्रकार के आभूषण आदि।[६]

---

१. देखिए, डॉ० नगेन्द्र : रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १०
२. ,, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ५, ६, ८, ९, १०, १५
३. ,, प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेण्टिग, फलक-३, ९
४. ,, सिटी पेलैस म्युजियम, जयपुर तथा राजकीय संग्रहालय, अलवर
५. ,, साहबदी (उदयपुर), नूरुद्दीन (बीकानेर), नकीब खाँ (अलवर) आदि कलाकारों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं
६. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, चित्रसंख्या २ तथा प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेण्टिग, फलक-३, ९

संक्षेप में मध्यकालीन हिन्दी कृष्णकाव्य में वर्णित वस्त्राभूषणों का सही परिज्ञान चित्रकला के अवलोकन से ही हो सकता है। उन चित्रों के आधार पर तत्कालीन लोकजीवन एवं दरबारी जीवन से सम्बन्धित व्यक्तियों के वस्त्राभूषणों का अध्ययन तो हो ही सकता है, साथ ही पूर्ववर्ती और तत्कालीन काव्य की आत्मा को भी पहचाना जा सकता है।

भक्तिकाव्य पर आधारित १७वीं और १८वीं शती, पूर्वार्ध के राजस्थानी चित्रों में भारतीय लोकजीवन-सम्बन्धी वस्त्राभूषणों का और १८वीं शती के चित्रों में मुस्लिम सम्पर्क से उत्पन्न दरबारी विलासपूर्ण वैभव का बाहुल्य है।

आज पाश्चात्य प्रभाव के कारण मध्यकालीन वस्त्राभूषण या तो कहीं-कहीं संग्रहालयों[1] में उपलब्ध हैं या तत्कालीन चित्रकला में अंकित हैं। इसलिए मध्यकालीन काव्य में वर्णित वस्त्राभूषणों की जानकारी के लिए चित्रकला ही सर्वोत्कृष्ट साधन है।

पृष्ठभूमि

काव्य एवं चित्रकला में विषयानुकूल पृष्ठभूमि का चित्रण कर कलाकार अपने कथ्य की कलात्मक अभिव्यक्ति करता है, इसलिए पृष्ठभूमि (बैकग्राउण्ड) का चित्रण भी कलाओं का प्रमुख उपकरण है। वस्तुचयन के बिना कवि और चित्रकार का शिल्पकौशल म्यान में रखी तलवार के समान है, पर वस्तुचयन भी किसी देशकाल और परिस्थितिजन्य वातावरण पर अवस्थित होता है। इसलिए रूपांकन करते समय कवि और चित्रकार तत्कालीन वातावरण को नहीं भुला सकते। कवि चाहे तो पृष्ठभूमि का न्यूनतम चित्रण कर अपना कार्य निभा सकता है, किन्तु चित्रकार पृष्ठभूमि की निर्मिति किये बिना विषयगत रूपांकन नहीं करता।[2] आधुनिक चित्रकार भले ही ऐसा न करे, पर मध्यकालीन चित्रकारों ने पृष्ठभूमि के अंकन को कम महत्त्व नहीं दिया।

मध्यकालीन कलाओं में पृष्ठभूमि का अंकन

मध्यकालीन हिन्दी कृष्णकाव्य और सम्बन्धित राजस्थानी चित्रकला में जो वातावरण का चित्रण हुआ है, वह देशकाल और परिस्थिति के कितना अनुकूल है, यह भी विचारणीय प्रश्न है। मध्यकालीन काव्य में जिस प्रकार लोकजीवन और सामन्ती जीवन के तत्त्व मिलते हैं, उसी प्रकार राजस्थानी चित्रकला में भी दोनों

---

१. देखिए, सिटी पैलेस म्युजियम, जयपुर तथा किशनगढ़ दरबार का निजी कपड़ भण्डार

२. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट, चित्रसंख्या ४

ही तत्त्व वहुलता से उपलब्ध हैं। मध्यकालीन कलाएँ दो धाराओं में समानान्तर वही हैं—एक लोकजीवन की धारा में और दूसरी सामन्ती धारा में। निश्चय ही पूर्वमध्यकालीन कृष्णभक्तिकाव्य में लोकजीवन के और उत्तरमध्यकालीन रीति-काव्य में दरबारी संस्कृति के तत्त्व वहुलता से उपलब्ध हैं। काव्याधृत राजस्थानी चित्रकला में भी दोनों तत्त्व उपलब्ध हैं, जिनका विवेचन यथास्थान हो चुका है। इतना सब कुछ होने पर भी मध्यकालीन कलाएँ अधिकतर देवी-देवताओं, राजा-रानियों, सामन्तों-जागीरदारों की जीवनगाथाओं, उनके आमोद-प्रमोद में ही अधिक उलझी रही हैं, और सामान्य जनजीवन भिखारियों की भाँति भीड़ में पीछे खड़ा ही ताकता रह गया है। उनका विशद चित्रण न इतिहास में है और न कलाओं में। वह तो आज भी अन्धकार के गर्त में छिपा पड़ा है।

सामन्ती एवं लोकजीवन-सम्वन्धी वातावरण का जो भी चित्रांकन काव्य एवं चित्रकला में हुआ है, वह तत्कालीन समाज की कुछ-न-कुछ झाँकी अवश्य ही प्रस्तुत करता है। चित्रकला इस दृष्टि से अग्रगणी है, क्योंकि काव्य में अंकित पृष्ठभूमि का पाठक अपनी अनुभूति एवं ज्ञान के आधार पर कल्पना-चित्र ही अनुभव करता है, जवकि चित्रकला में अंकित पृष्ठभूमि दर्शक की आँखों के सम्मुख होती है। ऐसी स्थिति में राजस्थानी चित्रकला में अंकित वातावरण के पर्यवेक्षण के द्वारा काव्य की पृष्ठभूमि की असलियत को समझकर काव्य के भाव का अधिक रसास्वादन किया जा सकता है। भाव की अभिव्यक्ति हेतु कवि और चित्रकार दो प्रकार की पृष्ठभूमियाँ चुनते हैं—एक प्राकृतिक और दूसरी घरेलू। विवेचित काव्य और चित्रकला में दोनों प्रकार की पृष्ठभूमियाँ बहुलता से अंकित हुई हैं, जो तत्कालीन परिस्थिति एवं वातावरण की परिचायक हैं। चित्रकला में तत्सम्बन्धी उपकरणों का अंकन और भी मुखर हो उठा है, जिसके आधार पर तत्कालीन स्थापत्य, बाग-वगीचे, खुला प्रकृति-परिवेश, पशु-पक्षी आदि का अध्ययन विस्तार से हो सकता है।

प्राकृतिक पृष्ठभूमि

प्रकृति का सुरम्य वातावरण काव्य एवं चित्रकला में उद्दीपन का कार्य करता है। कवि और चित्रकार स्वच्छन्द प्रकृति के परिपार्श्व में अपनी भावाभिव्यक्ति को प्रभावशाली वनाते हैं, जिसका विवेचन विस्तार से किया जा चुका है।[1] विचारणीय प्रश्न यह है कि प्रमुख कलोपकरण 'प्राकृतिक पृष्ठभूमि' के तुलनात्मक अध्ययन से काव्य और चित्रकला की आत्मा तथा ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य (पर्सपेक्टिव) को कितना समझा जा सकता है।

---

१. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, अध्याय ६

हिन्दी कृष्णकाव्य में सूरदास ऐसे कवि हैं, जिन्होंने भगवान कृष्ण की लीलाओं की पृष्ठभूमि के लिए प्रमुखतया व्रज के प्राकृतिक स्वच्छन्द वातावरण को चुना है। व्रजबिहारी की लीलाएँ वन, निकुंज, यमुना, वंशीवट आदि स्थलों में अधिक होती हैं, इसलिए भक्तिकालीन काव्य को आधार बनाकर निर्मित किये गये १७वीं शती के राजस्थानीशैली के चित्रों में पृष्ठभूमि हेतु प्रायः प्रकृति का स्वच्छन्द वातावरण ही चुना गया है।[१] भक्तिकालीन कृष्णकाव्य एवं तत्सम्बन्धी १७वीं शती के चित्रों में लोककला का अत्यधिक प्रभाव होने के कारण भी प्रकृति के खुले प्रांगण का बहुलता से चित्रांकन हुआ है,[२] क्योंकि लोकजीवन का सम्बन्ध ही खुले आकाश के नीचे स्वच्छन्द प्राकृतिक परिवेश से होता है। सूरदास, हरिदास, नन्ददास आदि भक्त कवियों ने प्रकृति के जिन उपकरणों को अपनी भावाभिव्यक्ति का आधार बनाया है, उनका चाक्षुषीकरण राजस्थानी चित्रों में यथास्थान करके काव्य की पृष्ठभूमिगत असलियत को समझ सकते हैं। राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियों में निम्नांकित प्राकृतिक उपकरणों का चित्रण बहुलता से हुआ है जो कृष्णकाव्य की समता में है :

(क) वृक्ष : आम्र, कदम्ब, तमाल, खजूर, अशोक, पलाश, कदली, केवड़ा, करील आदि।[३]

(ख) लता और फूल : चम्पा, केतकी, जूही, चमेली, वेला, माधवी, हरसिंगार, मोगरा, कमल, टेसू आदि।[४]

(ग) पशु-पक्षी : गाय, हाथी, मृग, सिंह, वानर, कोयल, खंजन, पपीहा, वक, तोता, मैंना, मयूर, हंस, कपोत, चकोर, भ्रमर आदि।[५]

(घ) अन्य प्रकृति : नदी, सरोवर, पर्वत, आकाश आदि।[६]

भक्तिकालीन कवियों की प्राकृतिक पृष्ठभूमि में स्वच्छन्दता, विविधता, लोककलात्मकता आदि हैं, इसलिए लोकजीवन की धार्मिक पृष्ठभूमि और सामन्ती वातावरण में रहनेवाले प्रारम्भिक राजस्थानी (१७वीं शती सम्बन्धी) कलाकारों ने चित्रांकन की पृष्ठभूमि हेतु प्रकृति के स्वच्छन्द स्वरूप को अपनाकर काव्य के प्रभाव को अनायास ही प्रकट कर दिया है।

---

१. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ३, ५, ६
२. „ डॉ० मोतीचन्द्र : मेवाड़ पेण्टिंग, फलक-५, ८, १०
३. „ प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट, चित्रसंख्या ४, ५, ६ तथा डॉ० मोतीचन्द्र : मेवाड़ पेण्टिंग, फलक-१०
४. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ५, ६, ८, १०, १६, १७
५. „ वही, चित्रसंख्या १, ३, ४, १५, १६
६. „ वही, चित्रसंख्या ३, ६, ८, ११, १७

घरेलू पृष्ठभूमि

घर-आँगन, महल-मन्दिर, वाग-वगीचे, उपवन आदि ऐसे उपकरण हैं, जो घरेलू पृष्ठभूमि की निर्मिति करते हैं। भक्तिकालीन कृष्णकाव्य तथा सम्वन्धित चित्रों में घरेलू पृष्ठभूमि का चित्रण भी कम नहीं हुआ है, किन्तु प्रकृति की तुलना में वह कम ही है। दूसरे, घरेलू पृष्ठभूमि भी लोककलात्मक जीवन से ही अधिक सम्बन्धित है। महल के अग्रभाग में माता यशोदा का दही बिलोना,[१] आँगन में गायों का वैठा होना,[२] वालकृष्ण का आँगन में खेलना आदि ऐसे चित्र हैं जो लोकजीवन के अधिक समीप हैं। निश्चय ही ऐसे चित्रों के आधार पर लोक-कलात्मक घरेलू पृष्ठभूमि की तत्कालीन स्थिति को पहचाना जा सकता है।

रीतिकाल तक आते-आते प्रकृति की व्यापक और स्वच्छन्द परिकल्पना सीमित और रूढ़ हो गयी। प्रकृति की विराट कल्पना से रीतिकालीन कवि दूर जाने लगे और कटे-छँटे बाग-वगीचों और मानवनिर्मित उपवनों, सरोवरों के सामन्ती वातावरण से वे अपनी परितृप्ति पाने लगे। सामन्ती प्रभाव के कारण कटी-छँटी प्रकृति महलों के परिवेश में सिमटकर रूढ़ हो गयी। महलों, वारहदरियों, मन्दिरों, कुंज-भवनों, छतरियों, सरोवरों, वगीचों, फव्वारों आदि के सामन्ती परिवेश में कवि, कलावन्त, मुसव्विर आदि अपना जीवन व्यतीत करने लगे, इसलिए उस दरबारी परिवेश से प्रभावित होकर अपनी कला की पृष्ठभूमि हेतु तत्कालीन वातावरण को ग्रहण करना उनके लिए अनिवार्य हो गया। यही कारण है कि दरबारी संस्कृतिजनित सामन्ती वैभव का चित्रांकन उत्तरमध्यकालीन हिन्दी कृष्णकाव्य[३] और राजस्थानी चित्रकला[४] में समान रूप से मिलता है। सामन्ती जीवन का वैभवपूर्ण विलासी जीवन, उनके महलों की साज-सज्जा, बाग-वगीचों, सरोवरों, फव्वारों, पशु-पक्षियों तथा अन्य शृंगारी उपकरणों का रूढ़िबद्ध चित्रण रीति-कालीन काव्य एवं तत्कालीन चित्रकला की पृष्ठभूमि का प्रमुख आधार था। 'रसिकप्रिया' पर आधारित बूंदीशैली के चित्रों में राजपूतशैली के भव्य भवनों का अंकन वेजोड़ है।[५] केशवदास जैसे वातावरण में रहते थे तथा उस वातावरण से प्रभावित होकर काव्यगत पृष्ठभूमि हेतु उन्होंने जिस प्रकार के सामन्ती उप-

---

१. देखिए, वही, चित्रसंख्या ४
२. „ वही, चित्रसंख्या १, २
३. „ केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० १८ (७१), २० (५, ६), ३३ (२३), ३८(५०) तथा विहारी-रत्नाकर, दोहा ८४
४. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ८, ९, १०, १५, १६ आदि
५. „ रसिकप्रिया-चित्रावली, राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

करण चुने हैं, उनका अंकन राजस्थान चित्रकला में उपलब्ध है।[1] मीनाकारी और पच्चीकारी से युक्त रंगविरंगा प्रांगण, स्तम्भ, चित्रित भित्तियाँ, चिकें, झरोखे, छतरियाँ, छज्जे, फव्वारे आदि का अंकन तत्कालीन राजसी वैभव का परिचायक है। बूंदीशैली के चित्रों[2] में स्थापत्य की उपर्युक्त छटा मनोहारी है। महलों के परिवेश के सरोवर कमलों से आच्छादित एवं पालतू पक्षियों (जैसे: बत्तख, हंस, मुर्गावी आदि) से सुशोभित हैं। उपवन, वगीचों एवं कुंजों का अंकन मुगलकालीन वगीचों के अनुकूल है। निश्चय ही घरेलू पृष्ठभूमि के अंकन में मुगलसंस्कृति का प्रभाव अत्यधिक है। रीतिकालीन कृष्णकाव्य भी उससे आक्रान्त है, अतः काव्यगत पृष्ठभूमि का अध्ययन राजस्थानी चित्रकला के परिपार्श्व में सहजता से किया जा सकता है। रीतिकालीन कृष्णकाव्य अर्थात 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया', 'विहारी-सतसई', 'रसराज' आदि में सामन्ती वातावरण-सम्वन्धी उपकरणों की वहुलता है। तत्सम्वन्धी तत्कालीन राजस्थानी चित्रकला में तो वे उपकरण मुखर हो उठे हैं। संक्षेप में घरेलू पृष्ठभूमि-सम्बन्धी उपकरणों के नाम इस प्रकार गिना सकते हैं:

१. वृक्ष : आम्र, कदली, केवड़ा, सरु, मौलश्री आदि।

२. लता और फूल : जूही, चमेली, चम्पा, वेला, गुलाब, कमल, केतकी, हरसिंगार आदि।

३. पशु : हाथी, घोड़ा, ऊँट, कुत्ता, शेर, चीता, खरगोश, विल्ली आदि।

४. पक्षी : तोता, मैना, वत्तख, हंस, वुलवुल, वाज, तीतर, वटेर, कपोत, जलमुर्गावी, खंजन, चकोर आदि।

५. शेष प्रकृति : सरोवर, फव्वारे, कुंज आदि।

संक्षेप में वस्तुचयन कलाकार का प्रमुख कलोपकरण है, जिसमें स्वच्छन्द प्रकृति एवं घरेलू पृष्ठभूमि का चित्रण कर कलाकार भावभूमि तैयार करता है तथा नायक-नायिका आदि का रूपांकन भावाभिव्यक्ति करने का प्रयत्न करता है। भक्तिकालीन एवं रीतिकालीन हिन्दी काव्य में प्रकृति उद्दीपन रूप में ही अभिव्यक्त हुई है। हाँ, भक्तिकालीन प्रकृति का स्वच्छन्द सौन्दर्यभाव जितना ही सजीव है, रीतिकालीन प्राकृतिक सुषमा अलंकारों, महलों, बगीचों आदि राजसी 'जकड़वन्दियों' के कारण प्रायः निर्जीव-सी लगती है। यही परिस्थिति भारतीय चित्रकला के साथ भी है। जैसे-जैसे आलंकारिकता, रंगामेजी, नक्काशी, मीनाकारी आदि का प्रभाव चित्रकला पर पड़ने लगा, वैसे-वैसे उसकी प्राकृतिक सरल सुषमा अलंकृत वेलबूटेदार वस्लियों, नये-तुले राजसी उद्यानों, इने-गिने परम्परित

---

१. देखिए, एन० सी० मेहता : दि गोल्डन फ्लूट, फलक-५

२. ,, वही, तथा प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ८, ९

पशु-पक्षियों के चित्रण में परिवर्तित होकर निर्जीवप्राय हो गयी, और धीरे-धीरे कलाओं का ह्रास होने लगा।

अलंकार

अलंकार जिस प्रकार शरीर की शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार कला की भी शोभा बढ़ाते हैं। मानवस्वभाव प्रारम्भ से ही अलंकारप्रिय रहा है। यह बात दूसरी है कि अपने वातावरण में जैसे उपकरण उसे प्राप्त हुए हैं उन्हीं का उपयोग उसने बहुलता से किया है। इसलिए किसी भी देश की कला अपने देश के तत्कालीन वातावरण एवं विभिन्न आलंकारिक उपकरणों को भुला नहीं सकती। क्षत्रियसंस्कृति के उदय से मानव के दैनिक जीवन में भौतिक सुखों को महत्त्वपूर्ण स्थान मिलना प्रारम्भ हुआ, जिसकी चरमसीमा रीतिकालीन समय में बादशाहों, राजाओं, सामन्तों एवं अन्य अभिजात्यवर्ग के विलासपूर्ण जीवन में देखने को मिलती है।[1] मुगलदरबार का राज्यकाल वैभव और ऐश्वर्य से जगमग था। शाहजहाँ के आलंकारिक ऐश्वर्य को देखकर विदेशी यात्री वर्नियर, मैनूची, टेवर्नियर आदि स्तब्ध हो गये थे। उन्होंने लिखा है कि "शाहजहाँ के राज्यकाल में सम्पूर्ण मुगलपरिवार में रत्नों और मणियों का मुक्त प्रयोग होता था। शाहजहाँ वैभव और विलास की मूर्ति था। उसका शरीर स्वर्णखचित वस्त्रों, रत्नहारों और बहुमूल्य इत्रों से आपूर्ण रहता था। मुगल अन्तःपुर का वैभव इन्द्रभवन को मात करता था। बेगमों का शरीर आपादचूड, जवाहिरातों से ढँका हुआ होता था। उनकी पोशाकें बहुमूल्य हीरों और इत्रों में बसी होती थीं। दिन में न जाने कितनी बार वे वस्त्र बदलती थीं। रीतिकाव्य की वासकसज्जाओं को उनसे सीधी प्रेरणा मिलती होगी। अधिकृत राज्य भी मुगल अधिपतियों का अनुसरण करते थे। अवध के नवाबों, जयपुर, मारवाड़ के हिन्दू राजाओं के जीवनवृत्त इस बात के साक्षी हैं।"[2] निश्चय ही १६०० ई० से १६०० ई० तक का काल अलंकरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा है। काव्य और चित्रकला के पारस्परिक अध्ययन द्वारा तत्कालीन अलंकरण की प्रवृत्ति को अधिक विस्तार एवं गम्भीरता से समझा जा सकता है। तत्कालीन जीवन के अवशेष चित्रकला, वास्तुकला और काव्य में निश्चयपूर्वक देखे जा सकते हैं।

हिन्दी कृष्णकाव्य और राजस्थानी चित्रकला में अलंकरण-प्रवृत्ति

जीवन के भौतिक क्षेत्र में मानव ने जहाँ अलंकरण की प्रवृत्ति को अपनाया,

---

१. देखिए, डॉ० त्रिभुवन सिंह : महाकवि मतिराम, पृ० ८-१०
२. डॉ० नगेन्द्र : रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० ९, १०

वहाँ कलाकार भी किसी प्रकार पीछे न रहे। सामन्तीवर्ग की भावनाओं को उन्होंने भी कलात्मक अभिव्यक्ति दी। स्थापत्य की दृष्टि से ताजमहल, ऐतमातउदौला तथा विभिन्न राजमहलों के शीशमहल, बारहदरियाँ और रंगमहलों की मीनाकारी, पच्चीकारी तत्कालीन अलंकरण की प्रवृत्ति की द्योतक हैं। रीतिकालीन सारा काव्य ही अलंकारों से ओतप्रोत है। तत्कालीन कवियों ने अलंकारों को काव्य का विशेष महत्त्वपूर्ण उपादान माना है। अलंकारों पर अनेक लक्षण-ग्रन्थों का लिखा जाना तथा प्रत्येक छन्द में अनुप्रास, उपमा, श्लेष आदि की झड़ी लगा देना रीतिकालीन कवियों का धर्म-सा हो गया था।

चित्रकला तो साक्षात ही अलंकरण-प्रवृत्ति है। चित्र मानव की आदिकालीन भाषा है, इसलिए चित्रकला में अलंकरण की प्रवृत्ति जन्मजात और स्वाभाविक है। उसमें अलंकरण की प्रवृत्ति तीन रूपों में अभिव्यक्त होती है—प्रथम आश्रय, आलम्बन आदि के रूपांकन एवं वस्त्राभूषण के चित्रण में, दूसरे वातावरण या पृष्ठभूमि के सूक्ष्मांकन में और तीसरे रंग-विरंगी पत्तियों एवं बेल-बूटों द्वारा सुसज्जित हाशिये (बार्डर) के निर्माण में। उपर्युक्त तीनों में से प्रथम दो में अलंकरण कम हो सकता है, पर हाशिया तो चित्र को अलंकृत करने के लिए ही बनाया जाता है। उदाहरणस्वरूप केशव की 'कविप्रिया' के छन्द[1] में राधा-कृष्ण के रूपांकन एवं राजसी वस्त्राभूषणों के चित्रण में चित्रकार ने रीतिकालीन वेश-भूषा और अलंकरण की प्रवृत्ति का परिचय दिया है तथा राजपूतशैली के स्थापत्य की रंगविरंगी मीनाकारी, पच्चीकारी, और प्रकृति के ऋतुराज[2]-सम्बन्धी विभिन्न उपकरणों का सूक्ष्म एवं अनुपम अंकन वातावरण को सहज ही अलंकृत करता है। मुगलशैली के प्रभाव के कारण अलवरशैली के चित्रों को अलग से बने हाशिए पर चिपकाने की प्रथा रही है, जो निश्चय ही रीतिकालीन अलंकरण की प्रवृत्ति का प्रभाव है।[3]

हिन्दी कृष्णकाव्य को आधार बनाकर अंकित किये गये राजस्थानी चित्रों में राधा और कृष्ण तथा अन्य गोप-गोपियों के अंग-प्रत्यंगों के अंकन में कलाकारों ने अपनी तूलिका की जो सुघड़ता और सूक्ष्मता प्रदर्शित की है वह अलंकृत-वर्तना की द्योतक है। राधा और कृष्ण के वस्त्राभूषण किसी रानी और राजा से कम नहीं हैं। लहँगा, ओढनी, कंचुकी आदि सलमे-सितारों से जड़ी एवं सुनहरी काम से युक्त हैं। रीतिकाल के सम्भ्रान्त परिवार में काम में आनेवाले लगभग सभी

---

१. देखिए, केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० १५७-२४
२. ,, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ८
३. ,, राजकीय संग्रहालय, अलवर के अनेक चित्र

आभूषणों से राधा का आपादचूड शरीर वेष्टित है।[1] कृष्ण के वस्त्राभूषण भी कुछ परम्परानुसार एवं कुछ सामन्ती प्रभाव के अनुकूल अंकित किये गये हैं। सिर पर रत्नजटित मोर-मुकुट, गले में विभिन्न रत्नों की मालाएँ, हाथों में कड़े आदि अलंकरण-प्रवृत्ति को प्रदर्शित करते हैं।[2] कहीं-कहीं पर तो कृष्ण राजकुमारों की भाँति अलंकृत किये गये हैं। टेढी-पाग में मोतियों की लड़ियाँ, गले, हाथ और पैरों में अनेक प्रकार के आभूषण और जरीकोर के वस्त्र सामन्ती वर्ग की अलंकरणप्रियता को प्रदर्शित करते हैं।[3]

प्रकृति तथा अन्य उद्दीपक उपकरणों के अंकन में चित्रकारों ने काव्य से भी व्यतिरिक्त चित्रण कर तत्कालीन अलंकरण की रुचि को प्रदर्शित किया है। बूंदीशैली और किशनगढ़शैली के चित्रों में वातावरण को मोहक बनाने के लिए जी भरकर अलंकृत किया है।[4] वेल और लताओं का वारीक चित्रण, अगणित पुष्पों का रंगविरंगा सम्पुंजन, पेड़-पौधों की एक-एक फूल-पत्ती का सूक्ष्मांकन और पशु-पक्षियों का आलेखन कर राजस्थानी चित्रकारों ने चित्र की पृष्ठभूमि को खूब सजाया है। विशाल भवनों की वारहदरियाँ, छतरियाँ, जालियाँ, झरोखे, प्रांगण, स्तम्भ आदि के अंकन में तूलिका की सूक्ष्मता एवं स्थापत्य की मीनाकारी-पच्चीकारी का जो परिचय दिया गया है, वह आश्रयदाताओं और चित्रकारों की आलंकारिक रुचि को प्रदर्शित करती है। हाशिये के निर्माण में फूल-पत्तियों का सुसज्जन तथा सोने-चाँदी का मुक्त प्रयोग तत्कालीन सामन्ती समाज की अलंकारप्रियता का परिचायक है।

जहाँगीरकालीन राजस्थानी चित्रों में भावों की मौलिकता के साथ ही सादगी भी प्रचुरमात्रा में मिलती है। उनमें अलंकरण की उतनी प्रचुरता नहीं है, जितनी १८वीं-१९वीं शती के चित्रों में है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि रीतिकालीन काव्य की ही भाँति राजस्थानी चित्रकला में भी अलंकरण की प्रवृत्ति अपनी चरमसीमा पर है, जो तुलनात्मक अध्ययन हेतु नयी दृष्टि प्रदान करती है।

उपलक्षित चित्रयोजना

काव्य में विभिन्न पक्षों का अंकन दो रूपों में होता है—एक प्रस्तुत रूप में

---

१. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ४, ६, ८, ९, १५
२. „ वही, चित्रसंख्या ८, १०, १३, १५
३. „ ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेंण्टिग, फलक-६, ९, १२, १४
४. „ प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ८, ९ तथा ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेंण्टिग, फलक-७, ९, ११

और दूसरे अप्रस्तुत रूप में। प्रस्तुत रूप का विवेचन लक्षित चित्रयोजना के अन्तर्गत किया जा चुका है।[1] काव्य की उपलक्षित चित्रयोजना अप्रस्तुत विधान है। बिम्ब, प्रतीक और उपमामूलक अलंकारों के माध्यम से कवि अपने कथ्य को लाक्षणिक बनाता है। कवि और चित्रकार का सम्बन्ध प्रत्यक्षीकरण से है, इसलिए प्रस्तुत रूपों का वह आसानी से अंकन कर सकता है। अप्रस्तुत विधान का भी किसी ठोस कैनवास या किसी प्रकार के तल पर प्रस्तुतीकरण करना होता है। उदाहरणस्वरूप राधा-कृष्ण के रूप, वस्त्राभूषण एवं हाव-भाव, चेष्टाओं आदि का अंकन कर वह जो रूप खड़ा करता है, वह प्रस्तुत विधान के अन्तर्गत आयेगा और अनेक अप्रस्तुत उपमाओं का अंकन (जैसे : आँखों के लिए मछली, मृग, कमल, चकोर आदि का अंकन) कर वह काव्य के अप्रस्तुत विधान को भी लक्षित बना देगा। ऐसी स्थिति में प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं पर परोक्ष रूप से काव्य के अलंकारों का चित्रकला के माध्यम से अनुमान कर अध्ययन किया जा सकता है।

उपमानयोजना

अप्रस्तुत या उपमान द्वारा कवि एक भव्य चित्र खड़ा करने में समर्थ होता है। काव्य में ही क्या, अन्य ललित कलाएँ भी उपमानयोजना से प्रभावित हैं। उपमा के माने समस्त औपम्यमूलक अलंकारों से है। वास्तव में तो उपमान सादृश्य और साधर्म्य पर आधारित होते हैं। रूय्यक के अनुसार प्रकारभेद से उपमालंकार ही अनेक अलंकारों का मूल है।[2] कलाकार की कल्पनाशक्ति पर्यवेक्षण-शक्ति तथा अनुभूति जितनी ही गहन होगी, वह उतनी ही सुन्दरता और कलात्मकता से सादृश्य बैठाने में समर्थ होगा। यह सादृश्य कलाओं में देशकाल और वातावरण तथा परम्परा के अनुकूल पाया जाता है। संस्कृत साहित्य से अनेक उपमाएँ हिन्दी साहित्य में आकर रूढ़ हो गयी हैं और प्रमुखतया भक्ति-कालीन और रीतिकालीन कवियों ने उन्हीं पारम्परिक उपमाओं और प्रतीकों का प्रयोग अपने काव्य में किया है। चित्रकला में भी यही स्थिति है। राजस्थानी चित्रकार काव्यगत उपमाओं से प्रभावित हुए बिना न रह सके, इसलिए उनके चित्रों में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूपों से काव्य में वर्णित विभिन्न उपमाओं का सादृश्य और साधर्म्य द्रष्टव्य है।

काव्य अथवा चित्रकला में कलाकारों ने नारी-सौन्दर्य का उद्घाटन अनेक

---

१. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, अध्याय ५
२. उपमैव च प्रकार वैचिश्णेय अनेकालंकार बीजभूतेति—प्रथम निर्दिष्टा काव्यालंकार

प्रचलित उपमानों के आधार पर किया है। राजशेखर ने नायिका के आकर्षण का केन्द्र विकसित यौवन के उपकरणों में से पाँच को माना है—सुन्दर विस्फारित नेत्र, वक्ष, त्रिवली से युक्त क्षीण कटि और नितम्ब।[1] यदि उनमें मुखमण्डल और घुंघराले वालों को और सम्मिलित कर दिया जाये तो रीतिकालीन कवियों की नायिका का स्वरूप उपस्थित हो जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में विभिन्न अंग-प्रत्यंगों का निरूपण उपयुक्त होगा।

नेत्र

संस्कृत के आचार्यों ने अंग-प्रत्यंगों के अलग-अलग उपमान निश्चित कर दिये हैं। हिन्दी के भक्तिकालीन और विस्तार से रीतिकालीन कवियों ने भी प्रमुखतया उन्हीं उपमानों का प्रयोग किया है।[2] नेत्रों के लिए मृगनैन, कमल, मत्स्य, खंजन, चकोर, कामबाण आदि उपमानों का प्रयोग किया है। शिल्पशास्त्र के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' के 'चित्रसूत्रम्' नामक अध्याय में नेत्रों की वनावट के वारे में लिखा है कि 'नेत्र धनुष के आकार जैसे या मछली के उदरभाग-जैसे या नीलकमल के पत्र-जैसे या पद्मपत्र-सदृश अंकित किये जाने चाहिए।[3] निश्चय ही नेत्रसम्बन्धी उपमाएँ रूप-सादृश्य, धर्म-सदृश्य और गुण-सादृश्य के आधार पर निश्चित की गयी हैं। चित्रकला का सम्बन्ध रूप से अधिक है, इसलिए चित्रकला के शिक्षक आज भी अंग-प्रत्यंगों के अंकन के लिए उपर्युक्त उपमाओं का अंकन अवश्य करवाते हैं। कमलपत्र, मत्स्योदर आदि के अंकन से आँखों के आकार को समझने के उपरान्त काव्य के उपमानों की सार्थकता को समझना अधिक आसान हो जाता है।

राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियों में उपर्युक्त उपमानों के आधार पर नेत्रों का चित्रांकन किया गया है। नेत्रों के चित्रण की दृष्टि से किशनगढ़-शैली विशेष उल्लेखनीय है। इस शैली के चित्रों में लम्बी धनुषाकार, नोकदार, कामवाण-सी तीखी आँखें वरवस ही दर्शक के चित्त को मोहित कर लेती हैं।[4] कवि नागरीदास की कल्पना उन चित्रों में साकार हो उठी है। कवियों ने

---

१. राजशेखर : कपूरमंजरी ३.१९
२. लोचन चारु चकोर सम चातक मीन तुरंग।
अंजन जुत अलि कामसर षंजन कंज कुरंग॥
—केशव-ग्रन्थावली, भाग १, पृ० २०७
३. चापाकार 'भवेन्नेत्र' मत्स्योदरमआपि वा।
नेत्रमुत्पलपत्राभं पद्मपत्रनिमं तथा ॥९॥
—चित्रसूत्रम्, ९.२७
४. देखिए, ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेंण्टिग, फलक ४

कामवाण एवं धनुषाकृत आँखों का जहाँ उल्लेख किया है, वहाँ किशनगढ़शैली के चित्र उन उपमानों की सार्थकता को समझने के लिए आँखों के सम्मुख मँडराने लगते हैं। मेवाड़शैली और मारवाड़शली की विशेषता है कि राधा या नायिका तथा अन्य की आँखें मत्स्योदर से ही अंकित की गयी हैं।[1] बूंदीशैली में आँखें कमलपत्र के सदृश चित्रित की गयी हैं।[2] जयपुरशैली के चित्रों में भी नायिका की आँखें मृगनयन एवं पद्मपत्र के समान अंकित की गयी हैं।[3] कहने का तात्पर्य यह है कि नैन-उपमानों का चित्रण जैसा हिन्दी भक्तिकाव्य और रीतिकाव्य में मिलता है, वैसा ही राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियों में भी अंकित हुआ है। उपर्युक्त उपमानों में नेत्रों का रूपसाम्य ही अधिक है। वैसे धर्मसाम्य और प्रभावसाम्य भी कम महत्त्व का नहीं है। मृग की आँखें केवल दीर्घता के कारण ही सुन्दर नहीं होतीं, वल्कि उनमें भोलापन भी होता है। इसी प्रकार कमलदल में शीतलता है और कामबाणाकृत आँखों का नुकीलापन किसी के हृदय को घायल करने का गुण भी रखता है।[4] आँखों के रूपरंग का जैसा वर्णन काव्य में हुआ है, वैसा ही राजस्थानी चित्रकला में भी है। प्रभावोत्पादक विशाल आँखों का रंग लगभग सभी शैलियों में श्वेत, श्याम और रक्तिम ही अधिक चित्रित हुआ है।[5] इस प्रकार के चित्रण को देखकर काव्य के उपमानों की सार्थकता निश्चय ही अधिक हृदयंगम हो सकती है।

स्तन

संस्कृत साहित्य में स्तन के भी कई उपमान हैं,[6] जिनको मध्यकालीन हिन्दी कवियों ने थोड़े-से नवीन उपमानों के साथ ग्रहण किया है। पूगफल, कमलवीट, कनककलश, नारिकेल, चक्रवाक आदि उपमान काव्य में अधिक प्रचलित हैं।[7] चित्रकला चाक्षुष होने के कारण काव्य की भाँति अतिशयोक्तिपूर्ण उड़ान भरने का दुस्साहस नहीं कर सकती, इसलिए काव्य की अनेक उपमाएँ चित्रकला की

---

१. प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या २, ४, ५
२. ,, प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेंण्टिग, फलक-५, ७
३. ,, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या १५, १६
४. डॉ० बच्चनसिंह : रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना, पृ० १४०
५. अमी हलाहल मद भरे, स्वेत, स्याम, रतनार।
जियत मरत झुकि-झुकि परत जेहि चितवत इकबार॥
६ देखिए, अलंकार-शेखर, ५, १, ११
७. चक्रवाक कुच बरनिये केशव कमल प्रमान।
शिवगिरि घट-मठ गुच्छफल सुभ इति कुंभ समान॥

—कविप्रिया

सीमारेखा में नहीं आतीं। घड़े के समान कुचों का अंकन कर चित्रकार अपने 'प्रमाण' से बाहर निकल जायेगा, इसलिए 'चित्रसूत्रस्' में बताया गया है कि स्त्री के दोनों कुच मनोहर एवं वक्षस्थल के गठन के अनुसार ही बनाये जायें।[१] राजस्थानी चित्रकला में स्तन-सम्बन्धी अनेक उपमाओं का रूपसाम्य और धर्मसाम्य के अनुकूल चित्रण हुआ है। खजुराहो की मूर्तियों के पुष्ट कनककलश सदृश स्तनों का चित्रण ही राजस्थानी चित्रकला का आधार रहा है।[२] स्तनों का निरावरण एवं कामुकतापूर्ण चित्रण मध्ययुगीन शृंगारी एवं विलासी प्रवृत्ति का द्योतक है। चित्रकारों ने मुग्धा-नायिका के स्तनों का कनककलश के समान चित्रण किया है।[३] किन्तु फिर भी वह शारीरिक सौन्दर्य की सीमारेखा में ही अंकित हुआ है।

मुख, केश और नितम्ब

शरीर के अंग-प्रत्यंगों में मुख अत्यधिक प्रभावोत्पादक होता है। मुख की बनावट, कान्ति, लालित्य आदि किसी को आकर्षित करने के प्रमुख उपकरण हैं। मध्यकालीन कवियों ने प्रमुखतया परम्परा से प्रयुक्त होनेवाले उपमानों को ही अपने काव्य में अपनाया है, जिसमें चन्द्रमा और कमल प्रमुख उपमान हैं।[४] राजस्थानी चित्रकारों ने जाति, वय आदि के अनुकूल मुख का अंकन किया है। रानी, राधा, सम्भ्रान्त कुल की नायिका आदि के मुखांकन में अधिक लालित्य और कान्ति मिलेगी तथा प्रौढा नायिका, दूती, दासी के अंकन में प्रायः प्रौढता और रूक्षता का समावेश होगा। कमल और चन्द्रमा की उपमा का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि चित्रकारों ने अनेक स्थलों पर नायिका के हाथ में कमल अंकित कर दिया है,[५] या आकाश में समता हेतु पूर्णचन्द्र की आभा अंकित कर दी है, किन्तु काव्य के उपमानों का अध्ययन इस प्रकार के चित्रों में परोक्ष एवं

---

१. उर प्रमाणतः कार्यो स्तनों नृप मनोहरो।

—चित्रसूत्रम्-३७.१

२. १०वीं से १२वीं शती तक के खजुराहो की पूर्व परम्परा के मन्दिर कोटा, अलवर, जयपुर आदि जिलों में विशष रूप से मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि स्थापत्य की उस परम्परा से राजस्थानी कलाकार अनभिज्ञ नहीं थे (द्रष्टव्य पारानगर अलवर और रामगढ़ कोटा के मन्दिर)

३. देखिए, प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेंण्टिग, फलक-१० तथा टाइम्स ऑफ इण्डिया एनुवल १९६५, फलक-१ से ४

४. अमल मुकुर सम मानिये, कोमल कमल समान।
अकलंकितु मुख बरनिये, चारू चन्द परिमान ।।७२।।

—केशव-ग्रन्थावली, भाग-१, पृ० २१०

५. देखिए, ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेंण्टिग—अनेक फलक

अनुमानित ही होगा।

केशपाश और वेणी के लिए भी अनेक उपमानों का प्रयोग परम्परानुसार ही किया गया है। मध्यकालीन हिन्दी कवियों ने राधा के केशपाश और वेणी के लिए भौंरे, चामर, यमुना-वीचि तथा असि, निसि, अहि, अलि-अवली आदि उपमानों को प्रायः काम में लिया है।[1] चित्रकला के लक्षण-ग्रन्थों में भी प्रायः इसी प्रकार के उपमानों के आधार पर केश तथा वेणी के अंकन का निर्देश किया है। केश घुँघराले, पतले, स्निग्ध, कोमल, गहरे रंग की नीलकान्तमणि के सदृश अंकित किये जाने चाहिए। सिर के बालों का घुमाव दाहिनी ओर हो तथा तरंगों की भाँति, सिंह-केसर की भाँति वर्धर एवं जूटटसर (सन) की भाँति अंकित होने चाहिए।[2] निश्चय ही उपर्युक्त उपमान शिल्पशास्त्रों एवं काव्यशास्त्रों में प्राचीन समय से ही चले आ रहे हैं, जिनकी समता के कारण काव्य और चित्रकला में अंकित उपमानों का तुलनात्मक अध्ययन भली प्रकार किया जा सकता है।

नारी के नितम्ब भी आकर्षण के प्रमुख केन्द्र हैं। कवियों ने नितम्बों के लिए अपनी-अपनी कल्पना के अनुसार अनेक उपमान खड़े किये हैं। पीन नितम्ब आर्य स्त्री-सौन्दर्य की प्रमुख विशेषताओं में से हैं। अजन्ता की नायिकाओं के पृथुल नितम्ब राजस्थानी चित्रण के प्रमुख आधार रहे हैं। यह बात दूसरी है कि घाघरे के घेर के कारण नितम्ब उतने नहीं उभर पाये हैं, जितने अजन्ता और खजुराहो की नायिकाओं में देखने को मिलते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दी कृष्णकाव्य में उपमामूलक अलंकार अधिकतर प्राचीन काव्य-परम्परा से ग्रहण किये गये हैं तथा शिल्पशास्त्रों में भी प्रायः वही उपमान निर्दिष्ट किये गये हैं। ऐसी स्थिति में हिन्दी कृष्णकाव्य के पारम्परिक एवं सामयिक उपमानों का चाक्षुषीकरण राजस्थानी चित्रकला में किया जा सकता है। चित्र में उपमान और उपमेय दोनों प्रस्तुत होते हैं, इसलिए काव्य के इन अलंकारों को समझने में सहायता मिल सकती है। हिन्दी कृष्णकाव्य को आधार बनाकर राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियों में जो अंकन हुआ है, उसमें उपमानयोजना के कुछ उदाहरणों को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से खोजा जा सकता है। सूर, केशव, विहारी आदि कवियों की उपमाओं का किसी सीमा

---

१. देखिए, केशव-ग्रन्थावली, खण्ड-१, पृ० २१०-२११

२. तदङ्गमङ्गिनः सूक्ष्मा निजस्नेहाभ्यलंकृता।
घनेन्द्रनीलसदृशाः केशाः कार्यास्तथा शुभाः ॥७॥
कुंतला दक्षिणावतीस्तरंङ्गाः सिंहकेसराः।
बर्धरा जूट्टसरा इत्येताः केशजातियः ॥८॥

—चित्रसूत्रम् ३७

तक राजस्थानी चित्रकला में चाक्षुषीकरण किया जा सकता है।

सूर की उपमानयोजना

सूरदास ने राधा और कृष्ण का रूपांकन करने के लिए औपम्यमूलक अलंकारों का प्रयोग विशेष रूप से किया है। सूर के काव्य में अप्रस्तुत विधान का अधिक समावेश है। कृष्ण और राधा की शोभा के वर्णन में नील-जलद, नील-जलज, घन और दामिनी, सनाल कमल, विज्जुलता, कनकलता आदि उपमानों का प्रयोग अप्रस्तुत विधान के अन्तर्गत ही आयेगा। सूर ने अधिकतर एक ही प्रकार के उपमानों का बार-बार प्रयोग किया है। कृष्ण के शरीर के लिए नील-जलद, नील-जलज और राधा के लिए विज्जुलता, कनकलता उनके निर्दिष्ट उपमान हैं।[1] मेवाड़शैली और बूँदीशैली के चित्रकारों ने कृष्ण के श्याम रंग के साथ ही नीले तथा काले बादलों की छटा भी यथास्थान अंकित की है,[2] जो उपमानों को समझने के लिए विशेष सहायक हैं। राधा और कृष्ण की छवि, उनका गलबाँही डाले चलना, एक-दूसरे को आलिंगनपाश में कसना आदि आंगिक क्रिया-कलापों के चित्रण में सूरदास का मन अधिक रमा है। इसलिए उन्होंने बादल और बिजली तथा मणिकंचन की उपमाओं का जी भरकर प्रयोग किया है।[3] बादल और बिजली की उपमा को उन्होंने पीताम्बरधारी कृष्ण से भी जोड़ा है।[4]

---

१. नील जलद अभिराम स्याम, तन, निरखि जननि दोऊ निकट बुलाये।
—सूरसागर, ७२२

सुन्दर स्याम-सरोज-नीलतन, अंग-अंग सकल सुख दुनिया ॥
—वही, ७२४

व्रज बनिता देखत नन्दनन्दन।
नव घन नील बरज ता ऊपर खौरि कियो तनु चन्दन ॥ —वही, २४१६

२. देखिए, टाइम्स ऑफ इण्डिया एनुवल-१९६३, फलक-१ से ४

३. स्याम स्यामा परम कुशल जोरी।
मनो नव जलद पर दामिनी की कला ॥ —सूरसागर, २६५२
सूर स्याम-स्यामा सुख जोरी, मनिकंचन छवि राजत।
—सूरसागर, २७७५

सुनि राधा यह कहा विचारै।
नीलाम्बर स्यामल तनु की छबि, तुम छबि पीत सुबास।
घन भीतर दामिनी प्रकाशित, दामिनि घन चहुँपास ॥
—सूरसागर, २६८६

४. स्याम सुभग तन पीत बसन, जन नीलजलद पर तड़ित सुछन्द
—वही, २३९९

धन तन स्याम पिताम्बर दामिनि, चातक आखि लुमी। —वही, २४८९

मेवाड़ और बूंदीशैली में कृष्ण और राधा की युगल-छवि का अंकन बादल और बिजली की समता में ही हुआ है।[1] कृष्ण और राधा आलिंगनपाश में बँधे प्रेमालाप कर रहे हैं और आकाश में काले, धूमरे बादलों के बीच में स्थान-स्थान पर विज्जुछटा अंकित की गयी है। इस प्रकार के चित्रों के आधार पर कुछेक प्रमुख कवियों की उपमामूलक कल्पना का चाक्षुषीकरण कर काव्य का अधिक रस लिया जा सकता है। पहले सूर की कल्पना का चाक्षुषीकरण देखिए—

सूर के काव्य में जितने पशु-पक्षियों का वर्णन अप्रस्तुत विधान के अन्तर्गत हुआ है, उसमें से कुछ तो सामान्य हैं और कुछ असामान्य। असामान्य पशु-पक्षी वे हैं, जिन्हें पाठकों ने देखा नहीं है। हारल, चक्रवाक, चकोर, खंजन आदि ऐसे ही पक्षी हैं। राजस्थानी चित्रकला में यथास्थान ऐसे पक्षियों का चित्रण हुआ है, जिनका अवलोकन कर उपमानयोजना को भली प्रकार समझा जा सकता है।

जहाँ उपमामूलक अलंकारों के आधार पर रूपक बाँधने का प्रयत्न किया गया है, वहाँ सूर के पद गूढ़ हो गये हैं, इसलिए तत्सम्बन्धी उपमानों को जीवन-क्षेत्र में या तत्कालीन चित्रकला में देखना आवश्यक हो जाता है। इस दृष्टि से चित्रकला उपमेय और उपमान के प्रत्यक्षीकरण के कारण तथा परिस्थिति, देशकाल, जाति, वातावरण के कारण अधिक सहायक हो सकती है। सूर ने अपने काव्यचित्रण में प्रमुखतया निम्नांकित उपमान अपनाये हैं, जो राजस्थानी चित्र-कला के परिपार्श्व में अधिक समझे जा सकते हैं—

कृष्ण—नीलजलद, नीलकमल, समुद्र।
राधा—दामिनी, विज्जुलता, कनकलता।
आँख—खंजन, कमल, मृगनयन, मीन, राजिवदल।
नासा—तिलफूल, कीर।
ओंठ—बिम्बाफल।
बाल—भँवरे, नागिन।
उरोज—कुम्भ।

सूरकाव्य अप्रस्तुत योजना से भरा पड़ा है, यदि चित्रकला के परिपार्श्व में सूर का विशेष अध्ययन किया जाये तो पाठकों की कल्पना अधिक तीव्र और यथार्थ हो सकती है।

केशव की उपमानयोजना

केशव तो अलंकारवादी कवि रहे हैं, अतः उनके काव्य में अप्रस्तुत योजना की भरमार है। यदि काव्य के प्रेत कहे जानेवाले कवि की अप्रस्तुत योजना को

---

१. देखिए, टाइम्स ऑफ इण्डिया एनुवल, १९६३, फलक-३

समझ लिया जाये तो केशव की 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया' आदि का अध्ययन सरल एवं रसदायक हो सकता है। सौभाग्य की बात है कि राजस्थान की विभिन्न चित्रशैलियों में केशव की 'रसिकप्रिया,' 'कविप्रिया' आदि चित्रित हुई हैं, जिनके आधार पर केशव की अप्रस्तुत योजना को समझा जा सकता है।

केशव आचार्य थे। संस्कृत साहित्य की उन पर पूर्ण छाप थी, इसलिए पारम्परिक रूढ़ उपमानों का उन्होंने जी खोलकर प्रयोग किया है। 'कविप्रिया'[१] में उन्होंने अंग-प्रत्यंगों के विभिन्न उपमानों का विस्तार से विवेचन किया है और उन्हीं उपमानों का यथासम्भव अपने काव्य में प्रयोग किया है।

वन से व्रज को आते हुए कृष्ण के लिए केशव ने जो उपमाजन्य सांगरूपक खड़ा किया है, उसमें केशव की अप्रस्तुत योजना का पता चलता है।[२] सखी नायिका से कहती है 'कृष्ण का पीताम्बर ही बिजली है, सिर का मोरमुकुट इन्द्रधनुष की-सी शोभा दे रहा है, मेघ की मन्द्र ध्वनि के समान ये धीरे-धीरे वेणु बजाते चले आ रहे हैं, जिससे अपने मित्र मयूरों को नचा देते हैं। हे सखी, ज़रा उठकर तो देख, वे चातक के चित्त का ताप दूर कर रहे हैं। घनश्याम श्रीकृष्ण आज बरसनेवाले बादल का वेश धारण किये वन से व्रज की ओर जा रहे हैं।"

उपर्युक्त सांगरूपक के अप्रस्तुत विधान को भी बूँदीशैली के चित्रकार ने अंकित कर[३] काव्य के भाव को अधिक प्रेषणीय बना दिया है। कृष्ण के रूप-सौन्दर्य को काव्यभाव के अनुकूल तो चित्रित किया ही है, साथ ही सवैये के अप्रस्तुत विधान का प्रकृति-परिवेश में जो सतरंगा चित्रण किया है, वह व्यतिरिक्त चित्रण का सुन्दर उदाहरण है। बादलों के अंकन में बूँदीशैली और किशनगढ़शैली निश्चय बेजोड़ हैं।

'श्री राधिकाजू को करुणरस' प्रसंग में भी श्रीकृष्ण के लिए केशव ने अनेक उपमाएँ प्रस्तुत की हैं।[४] उनको बूँदीशैली के चित्रकार ने यथासम्भव चित्रित कर

---

१. देखिए, केशव-ग्रन्थावली, भाग १ (नखशिखवर्णन), पृ० १६७-२१४
२. ,, वही, पृ० ३४
३. ,, राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली, बूँदीशैली का रसिकप्रिया सेट
४. तेजसूर से अपार, चन्द्रमा से सुकुमार,
संभु से उदार उर उर धरियतु है।
इन्द्रजू से प्रभु, राम जू से रन सूर,
काम जू से रूप रुरे हिय हरियतु है।
सागर से धीर गनपति से चतुर अति,
ऐसे अविवेक कैसे दिन भरियतु है।
नन्द मति मन्द महा यसुदा से कहो कहा,
ऐसे पूत पाइ पसुपाल करियतु है ॥१६॥ केशव-ग्रन्थावली, पृ० ८४

दिया है।[1] जितने भी उपमान हैं, उनका प्रस्तुत रूपचित्र मात्र ही कलाकार अंकित कर पाया है, उनका गुणसाम्य अंकित करना उसकी सीमारेखा से बाहर था। इसलिए सूर्य, चन्द्रमा, शम्भु, इन्द्र, काम, राम, सागर आदि के चित्रण से ही उपमाओं का अनुमान लगाकर उनके गुण और धर्म का अनुभव कर सकते हैं। निश्चय ही चित्र में प्राकृतिक पृष्ठभूमि का सुन्दर अंकन हुआ है, जो अलंकृत वातावरण के अध्ययन के लिए विशेष उपयोगी है।

राधा के रूपसौन्दर्य के लिए भी कवि ने अनेक उपमाएँ प्रस्तुत की हैं। वह विज्जुछटा-सी, कनकलता-सी, तुलसी-सी, कमला, पुलोमजा, पन्नगी, अप्सरा आदि जैसी है।[2] उसके सारे अंग-प्रत्यंग सुन्दर हैं। उसके सौन्दर्य की समता देते हुए सखि नायक से कहती है कि 'हे गोपाल, मैंने एक देवबाला-सी गोपिका देखी है। उसका भाल चन्द्रार्ध के समान है, भौंहें धनुषाकार हैं, नेत्रों का विलास काम के तीक्ष्ण बाणों के समान है। नासिका कमल-सी, मुखवास सुगन्धित पवन के समान, दाँत अनार के दानों के समान और हास बिजली के समान हैं। ग्रीवा और भुजाएँ खराद पर से उतारी हुई-सी हैं। उदर पीपल के पत्र से समान, चरण कमल की भाँति, चाल हंस की-सी है। उन कनकछरी के शरीर में समस्त सुगन्धों की-सी सुगन्ध है।[3] बूंदीशैली के चित्रकार द्वारा अंकित उपर्युक्त कवित्त पर आधारित चित्र[4] में भी उसने राधा का उपमानुकूल अंकन किया है, साथ ही कुछेक लक्षित उपमानों का भी अंकन किया है। चित्र दो भागों में विभाजित है। नीचे दूती कृष्ण से गोपिका के रूप का वर्णन करती हुई अंकित की गयी है और ऊपर राधा का तथा अनेक लक्षित उपमानों (जैसे: बादलों में बिजली, सरोवर में कमल और हंस आदि) का अंकन हुआ है। चित्रकार की एक सीमारेखा होती है। वह अमूर्त भावों का अंकन नहीं कर सकता, इसलिए उसका सम्बन्ध बाह्य वस्तु-जगत से ही अधिक रहता है।

ऐसी सुन्दर राधा को कृष्ण 'चम्पे की-सी माला' के समान, लोचन और विशाल कपोल चूमकर, हृदय से लगा लेते हैं।[5] कभी वह मद-हाव प्रदर्शित करती

---

१. देखिए, ललितकला ३-४
२. ,, केशव-ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० २२
३. ,, वही, खण्ड १, पृ० १२
४. देखिए, राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली, बूंदीशैली का रसिकप्रिया सेट
५. लोचन विसाल चारु चिबुक कपोल चूमि,
चम्पे की सी माल लाल लीनी उर लाई के ॥३१॥
—केशव-ग्रन्थावली, भाग-१, पृ० २९

हुई डरकर कृष्ण से ऐसे लिपट जाती है, जैसे बादलों में बिजली दुर जाती हो।[1]

निष्कर्षस्वरूप कह सकते हैं कि केशव ने पारम्परिक एवं सामन्ती वैभव से प्रभावित होकर जिन उपमानों को अपनाया है, उनका चित्रांकन राजस्थानी चित्रकला में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से स्थान-स्थान पर हुआ है। उनके पर्यवेक्षण से रीतिकाल की आलंकारिक प्रवृत्ति का निश्चयात्मक अध्ययन किया जा सकता है। केशव ने स्वर्णिम एवं वैभवशाली उपमानों का अधिक प्रयोग किया है। बूंदीशैली और अलवरशैली के चित्रों में सोने का अधिक कार्य हुआ है जो रीतिकालीन सामन्ती वैभव का परिचायक है।

बिहारी की उपमानयोजना

बिहारी ने अप्रस्तुत विधान को अपने कथ्य का प्रमुख आधार बनाया है। उनकी उपलक्षित चित्रयोजना समाहारशक्ति एवं चमत्कार से पूर्ण है। एक-एक दोहे में उन्होंने अनेक अप्रस्तुत पदार्थों का प्रयोग किया है। "वस्तुतः प्रस्तुत को रूपायित करने के लिए जिन अप्रस्तुतों का प्रयोग किया जाता है, वे हु-ब-हू प्रस्तुत के समान नहीं होते। वे किन्हीं अंशों में प्रस्तुत के सदृश होते हैं, पर अपनी बिम्बविधायिनी शक्ति के द्वारा उसे चारुता प्रदान करते हैं।"[2] बिहारी के अप्रस्तुत विधान हेतु कुछ तो पारम्परिक उपमान प्रयोग में लिये हैं और कुछ तत्कालीन वातावरण से ग्रहण किये हैं। वे भी दरबारी कवि थे, इसलिए सामन्ती वैभव में उनके आस-पास जो उपकरण थे, उनका उन्होंने जी खोलकर अंकन किया है। निश्चय ही ऐसे उपकरण उन्हें अन्य कलाओं से भी प्राप्त हुए होंगे, जिनमें तत्कालीन चित्रकला की विशेष दाय रही होगी। उनके अनेक दोहे विशेष चित्र-योजनात्मक हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि वे तत्कालीन दरबारी मुसव्विरों के चित्रों से प्रभावित होकर लिखे गये होंगे।[3]

बिहारी ने अधिकतर जो अप्रस्तुत चुने हैं, वे मुख्य रूप से प्रेम का बाह्य पक्ष प्रस्तुत करते हैं, इसलिए बिहारी के प्रस्तुत एवं अप्रस्तुतों में ऐन्द्रियबोध अधिक है। नागरिक जीवन, राजसी ठाठ-बाट, आसपास का सामन्ती परिवेश, बाग-बगीचों आदि से बिहारी ने अनेक उपमान चुने हैं।[4] ऐसे अप्रस्तुत उपमानों का राजस्थानी चित्रकारों ने प्रस्तुतीकरण कर उन्हें अधिक बोधगम्य बना दिया है।[5]

---

१. ताही समय उठे घन घोरि घोरि, दामिनी-सी।
लागी लौटि स्याम घन उरसों लपकि कै।।२८।।
—केशव-ग्रन्थावली, भाग-१, पृ० ३४

२. डॉ० बच्चनसिंह : बिहारी का नया मूल्यांकन, पृ० ८१

३. देखिए, बिहारी-रत्नाकर, दोहा-३०१, ३१२

४. वही

५. देखिए, बिहारी-सतसई, सरस्वती-भण्डार, उदयपुर

प्रस्तुत शोध-ग्रन्थ का सम्बन्ध कृष्णचरित्र से ही है, अतः कृष्णचरित्र-सम्बन्धी कुछेक दोहों का उदाहरण देकर अप्रस्तुत विधान का चित्रकला के परिपार्श्व में अध्ययन करेंगे।

कृष्ण की गुंजमाल को देखकर अनुशयना नायिका अपनी अन्तरंग सखी को सम्बोधित कर कहती है कि "यह माला कृष्ण को इस प्रकार शोभित होती है, मानो पये गिये दावानल की ज्वाल (संकेत-स्थल में मेरे न मिलने से सही हुई दुःखाग्नि) बाहर लस रही है।"[1] प्रस्तुत दोहे में जो उत्प्रेक्षा है, वह मेवाड़शैली के चित्र[2] में भली प्रकार अंकित हो पायी है। चित्रकार काव्य के अप्रस्तुत विधान का प्रस्तुतीकरण कर भाव का स्पष्ट अंकन करता है। चित्र में गुंजमाल पहिरे विरही कृष्ण का, गुरुजनों में बैठी नायिका का और एक पार्श्व में कृष्ण के दावानलपान का अंकन दोहे के भाव तथा प्रसंग को स्पष्ट करता है। निश्चय ही इस दोहे में तत्कालीन चित्रकला का प्रभाव है। दावानलपान की उपमा कवि की कल्पना में कृष्ण के दावानलपान-सम्बन्धी चित्र को देखकर आयी होगी, क्योंकि मेवाड़शैली में दावानल का अंकन माला के रूप में गोल आकार में किया गया है[3] तथा गुंजमालधारी कृष्ण उसका पान करते हुए अंकित किये गये हैं। दोनों का रंग भी एक-सा ही है। इस प्रकार का अंकन रूढ़ शैली में होने के कारण प्रायः सभी चित्रशैलियों में एक-सा मिलता है।

इसी प्रकार राजस्थानी चित्रकारों ने विहारी द्वारा प्रयुक्त अन्य रूढ़ और तत्कालीन समाज से गृहीत अप्रस्तुतों को भी अपनी सुविधा के अनुसार एवं चित्रण की सीमारेखा के अनुसार अंकित किया है। वास्तव में देखा जाये तो काव्य के प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत दोनों ही कवि एवं पाठक के मानसचित्र या कल्पनाचित्र होते हैं, पर चित्रकार प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत दोनों को ही अपने कैनवास पर अंकित कर कथ्य के भाव को प्रायः स्पष्ट करने में समर्थ होता है। बिहारी के अप्रस्तुतों की गूढ़ता का चाक्षुषीकरण तत्सम्बन्धी राजस्थानी चित्रों के माध्यम से अनायास ही हो सकता है। बिहारी के एक दोहे में यमक की छटा दर्शनीय है। उन्होंने 'उरबसी' शब्द का प्रयोग कर उर्वशी अप्सरा के सौन्दर्य एवं 'उरबसी' नामक गले

---

१. सखि सोहत गोपाल कें उर गुंजन की माल।
बाहिर लसति मनौ पिए दावानल की ज्वाल ॥३१२॥
—बिहारी-रत्नाकर, पृ० १३१

२. देखिए, सचित्र बिहारी-सतसई, सरस्वती-भण्डार, उदयपुर

३. ,, मोतीचन्द्र : मेवाड़ पेण्टिंग, फलक-९

४. तो पर वारौं उरबसी, सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन के उर बसी, ह्वै उरबसी समान ॥२५॥
—बिहारी-रत्नाकर, पृ० १६

के अलंकार का जो अप्रस्तुतांकन किया है, वह साधारण होते हुए भी चित्रकला में सुन्दर ढंग से प्रस्तुत हुआ है। मेवाड़शैली में चित्रकार ने अप्सरा का सुन्दर अंकन कर तथा राधा के गले में रीतिकालीन अलंकार 'उरवसी' का अंकन कर काव्य के अप्रस्तुतों का प्रस्तुतीकरण कर दिया है।[१]

राधा और कृष्ण के रूपसौन्दर्य के लिए बिहारी ने अनेक अप्रस्तुतों को आधार बनाया है। राधा के लिए सोनजुही[२], चम्पकमाल[३], सुरतरु की सपल्लव डार आदि और कृष्ण के लिए नीलमणि-शैल[४], बादल आदि अप्रस्तुतों का विधान किया है। बिहारी ने उनके एक-एक अंग-प्रत्यंग के लिए रूढ़ एवं तत्कालीन उपकरणों से सैंकड़ों उपमानों का प्रयोग किया है, जिनमें तत्कालीन वातावरण, प्रकृति, पशु-पक्षी, घरेलू जीवन आदि सम्बन्धी उपकरण प्रमुख हैं।[५] राजस्थानी चित्रकारों ने भी काव्यभाव को अभिव्यक्ति देने के लिए प्रस्तुतों के साथ अप्रस्तुतों का भी यथास्थान अंकन किया हैं, जिनके आधार पर प्रस्तुत और अप्रस्तुत की समता का ज्ञान होता है और ऐसी स्थिति में काव्य की अर्थवत्ता को अधिक स्पष्टता से समझा जा सकता है।

बिहारी-जैसे कवि की उपमामूलक कल्पना को समझने के लिए चित्रकला अधिक सहायक है, क्योंकि तत्कालीन अप्रस्तुतों का अंकन भी राजस्थानी चित्रकला में विस्तार से हुआ है।

किशनगढ़शैली के चित्रों में उन अप्रस्तुतों का अंकन अधिक है, जिनका प्रयोग नागरीदास के काव्य में अधिक हुआ है। राधा के अंग-प्रत्यंगों के रूपांकन के लिए चित्रकार निहालचन्द ने काव्य के तत्कालीन उपमानों का विस्तार से अंकन किया है। नागरीदास ने राधा के तन की ज्योति के लिए सोनजुही या हाटकवेल[६], मोती,

---

१. देखिए, सचित्र बिहारी-सतसई, मुनि कान्तिसागर उदयपुर के निजी संग्रह में

२. लाई, लाल बिलोकिये, जिय की जीवन-मूलि।
रही मौन के कोन में, सोनजुही सी फूलि ॥६१३॥

३. रही पैंज कीनी जु मैं, दीनी तुमहि मिलाइ।
राखहूँ चंपकमाल लौं, लाल हियैं लपटाइ ॥५४४॥

४. सोहत ओढै पीतु पटु स्याम सलौने गात।
मनौ नीलमणि-सैल पर आतप परयौ प्रभात ॥६८९॥

५. देखिए, डॉ० बच्चनसिंह : रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना, पृ० ४०१-४०५

६. कालिंदी के तट हाटक-वेल-सी न्हाय काढ़ि कछु ठाढ़िये होती।
भींजिके वार लगे सटकारे औ तामें दिपै दुति ज्यो तन मोती ॥
—नागर-समुच्चय—छुटक पद

दीपशिखा आदि; सुख की कान्ति के लिए चन्द्रिका तथा आँखों के लिए कमल, कामवाण आदि का विशेष प्रयोग किया है। किशनगढ़शैली के चित्रों का निर्माण ही ऐसे उपमानों के अनुकूल हुआ है, साथ ही उपमानों का अंकन भी पृष्ठभूमि में विस्तार से किया गया है।[1]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि काव्य के उपमामूलक अलंकारों का अध्ययन चित्रकला के माध्यम से भी किसी सीमा तक किया जा सकता है। काव्यगत उपमान एवं उपमेय का चाक्षुषीकरण प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से चित्रकला में यथास्थान हो सकता है, क्योंकि चित्रकला में पारम्परिक रूढ़ उपकरणों के साथ ही तत्कालीन वातावरण, पशु-पक्षी, घरेलू जीवन आदि सम्वन्धी उपकरणों का अंकन भी विस्तार से होता है। चित्रकला के पर्यवेक्षण से एक लाभ और होता है। उपमेय और उपमान का साथ-साथ अंकन देकर हम उनके सादृश्य से अधिक सन्तुष्ट हो सकते हैं।

प्रतीकयोजना

प्रतीकयोजना अलंकारपक्षीय होने पर भी शिल्पविधि का एक अलग महत्त्वपूर्ण अंग मानी जाती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि शिल्प में प्रतीकों का प्रमुख योग होता है, इसलिए किसी देश की संस्कृति का स्वरूप विभिन्न शिल्पांगों से अभिव्यक्ति पाता है। इस अभिव्यक्ति से विभिन्न उपमान और विम्व इतने शक्तिशाली हो जाते हैं कि वे कलाओं में स्थायी महत्त्व ग्रहण कर किसी भी देश की सांस्कृतिक आत्मा को संकेतित करने में समर्थ सिद्ध होते हैं। वास्तव में प्रतीक मन से ही सम्वन्धित होते हैं। मानव की भाषा, संस्कृति, धर्म, कला आदि ऐसे विभिन्न तन्तु हैं, जिनमें प्रतीक-जाल बुना हुआ दृष्टिगोचर होता है।[2] इसलिए कलाओं में एक विशेष प्रकार की अभिव्यक्ति, जो अभिधेय अर्थ के अतिरिक्त किसी व्यापक अर्थ की व्यंजक होती है, प्रतीकयोजना के अन्तर्गत होती है।[3]

विश्व की कला के प्रतीक

प्रतीकयोजना के द्वारा कल्पनाशील साहित्यकार और चित्रकार आत्माभि-व्यक्ति करता है। यह अभिव्यक्ति काव्य में परोक्ष एवं चित्रकला में प्रत्यक्ष

---

१. देखिए, ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेण्टिग, फलक-४, ५, ६, ७, ९, १२, १४
२. ,, एर्नेस्ट कैसिटर : एन ऐसे ऑन मैन, पृ० ४३
३. ,, विलियम यार्क टिनल : लिटरेरी सिम्बल, पृ० ५

होते हुए भी पाठक और दर्शक के मन पर छायी अदृश्य रिक्तता में एक प्रतिध्वनि पैदा करती है।[१] पाश्चात्य विचारकों और आलोचकों ने प्रतीकयोजना एवं प्रतीकवाद पर चाहे विस्तृत विचार किया हो, पर भारतीय साहित्य, चित्रकला, स्थापत्य,[२] मूर्तिकला[३] आदि और लोकजीवन से सम्बन्धित अनेक उपयोगी कलात्मक उपकरण प्रतीकार्थों से ओत-प्रोत हैं, जो भारतीय संस्कृति की अखण्डता, विराटता और आध्यात्मिकता के परिचायक हैं।[४] प्रत्येक देश की कला में अनेक प्रतीक परम्परा से चलते आ रहे हैं, जो उपदेश की संस्कृति को उजागर करते हैं। प्राचीन भारतीय समस्त संसार को कमल का रूप मानते थे, इसलिए कलाकारों ने कमल की विभिन्न प्रतीकार्थक अभिव्यक्तियाँ की हैं। भारतीय साहित्य और चित्रकला में कमल का चित्रांकन वेजोड़ है। जावा, बाली, कम्वोडिया, स्याम आदि देशों में जहाँ-जहाँ भारतीय संस्कृति और कला का प्रवेश हुआ, वहाँ-वहाँ के अनेक रूप व नमूने भी अपना लिये गये। मिश्र की कलाओं में कुमुदिनी प्रतीकार्थ रूप में ग्रहण की गयी है, चीन में अजगर (ड्रेगन) को इसी प्रकार महत्त्व दिया गया, इसीलिए वहाँ की ललितकलाओं एवं उपयोगी कलाओं में अजगर के विभिन्न नमूने विशेषतः द्रष्टव्य हैं। फारस में युगों से सरो का वृक्ष कला का प्रतीक रहा है।[५]

हिन्दी कृष्णकाव्य और राजस्थानी चित्रकला के प्रतीक

कलाकार को सर्वप्रथम प्रकृति और फिर सांस्कृतिक परम्परा से प्रेरणा प्राप्त होती है। भारतीय कलाओं में यह प्रेरणा मुखर हो उठी है। भारतीय काव्य एवं चित्रकला में विभिन्न प्रतीकों का बहुलता से चित्रांकन हुआ है, जिनके आधार पर देश की प्राचीन संस्कृति की विराटता का दिग्दर्शन करने के साथ ही विभिन्न कलाओं का तुलनात्मक विवेचन भी कर सकते हैं। कमल, हाथी, शंख, स्वस्तिक, कौड़ी, मछली, हंस आदि उपकरणों को काव्य एवं चित्रकला में प्राचीन समय से ही अपनाया जाता रहा है।

भारतीय धर्म, जीवन व दर्शन की व्याख्या में कवियों और चित्रकारों ने कमल और हाथी से बड़ी सहायता ली है। कमल का फूल, रूप, रस, गन्ध और गुण में अद्वितीय होने के कारण प्रतीकार्थ का अभिव्यंजक और आलंकारिक

---

१. देखिए, वांदियन : साइको-एनेलैसिस एण्ड ऍस्थेटिक्स, पृ० ६
२. „ कोणार्क, खजुराहो के अनेक मन्दिर
३. „ वही
४. „ हैविल : सिम्वालिज्म ऑफ इण्डियन स्कल्पचर एण्ड पेंण्टिग
५. „ असित कुमार हालदार : ललितकला की धारा, पृ० ३७

आलेखन (डिजाइन) का प्रमुख आधार रहा है। संस्कृत की परम्परा को ग्रहण करनेवाले मध्यकालीन कृष्णकाव्य में कृष्ण और राधा के उपमांकन हेतु कमल प्रमुख उपकरण रहा है। अजन्ता की परम्परा को वहन करनेवाली राजस्थानी चित्रकला में कमलों से पूरित सरोवरों एवं नायिका के हाथ में कमलवीट का अंकन बहुलता से हुआ है। बूँदीशैली,[1] किशनगढ़ शैली[2] और मेवाड़शैली[3] तो इस दृष्टि से वेजोड़ है।

इसी प्रकार हमारे धार्मिक कृत्यों, उत्सवों आदि में हाथी का प्राचीन समय से ही महत्त्व रहा है। हाथी अपने वल, बुद्धि एवं सहिष्णुता के कारण भारतीय जीवन में उत्सवों, मंगलकृत्यों, लड़ाई, आखेट आदि में वरावर काम में आने लगा। फलस्वरूप हाथी भारतीय कला का प्रतीकार्थक, उपमामूलक एवं आलंकारिक प्रमुख अभिन्न अंग वन गया। भगवान बुद्ध एक जन्म में ६ दाँतोंवाले हाथी थे, जिनकी जीवन-घटनाओं से अजन्ता की सम्पूर्ण चित्रकारी प्रभावित है। हाथी के चित्रण की यह परम्परा राजस्थानी चित्रशैली में एक नयी ज्योति लेकर प्रकट होती है। बूंदीशैली के चित्रों में हाथी का अंकन प्रतीकार्थक रूप में तथा आलंकारिक एवं वस्तुगत रूप में सूक्ष्मता और बहुलता से हुआ है।[4]

किसी भी देश के प्रकृति-सम्बन्धी एवं जनजीवन की संस्कृति से सम्बन्धित उपकरण सर्वप्रथम उपमानों के रूप में प्रयुक्त होते हैं और अपने वल, गुण, प्रभाव-सामर्थ्य आदि के कारण प्रतीकों के सामन्ती सिंहासन पर आरूढ़ हो जाते हैं। साहित्य में ऐसे प्रतीक अप्रस्तुत विधान के अंग वनकर प्रभावशाली अभिव्यक्ति के कारण वनते हैं और चित्रकला में वे ही प्रतीक कैनवास पर प्रत्यक्ष रूप से अंकित होकर किसी भी देश की संस्कृति और सभ्यता का परिचय देते हैं। प्रतीकों के ज्ञान के आधार पर किसी भी देश की कला को पहचाना जा सकता है। कमल, हाथी, हंस, शंख आदि के अंकन के कारण भारतीय चित्रकला को, सरो के पेड़, ऊँट आदि के कारण ईरानी चित्रकला को तथा अजगर (ड्रैगन) के अंकन के कारण चीनी चित्रकला को आसानी से पहचाना जा सकता है। चित्रकला के माध्यम से काव्यप्रतीकों की गूढ़ता किसी हद तक सरल हो सकती है।

भाषा

भाषा कलाओं का प्रमुख शिल्पांग है। विना भाषा के कलाकार अपने वर्ण्य

---

१. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ड०, चित्रसंख्या ८, ९ तथा प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेण्टिग, ५, ७, ८

२. „ ऐरिक डिकिन्सन : किशनगढ़ पेण्टिग, झलक-४, ५, ९

३. „ प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ५, १०

४. देखिए, प्रमोदचन्द्र : बूंदी पेण्टिग, फलक-६, ८

विषय का चित्रांकन करने में असमर्थ है। काव्य की अभिव्यक्ति के माध्यम हैं शब्द और चित्रकला के अभिव्यक्ति-माध्यम हैं रेखाएँ और रंग। रंग और रेखाओं के माध्यम से चित्रकार अपने भाव एवं विचारों का रूप खड़ा करता है। शब्द, रेखा और रंग आदि उपकरणों का पिछले अध्याय में विस्तृत विवेचन हम कर चुके हैं, इसलिए यहाँ पर काव्य और चित्रकला की भाषा के सामर्थ्य एवं पारस्परिक अध्ययन की समस्याओं पर विचार कर लेना अनुचित न होगा।

रेखा और रंग मानव की आदिम भाषा हैं। मानवसभ्यता के उषःकाल में जब भाषा और लिपि का आविर्भाव नहीं हुआ था, रेखा और रंगों द्वारा अंकित संकेतों से भावाभिव्यक्ति होती रही है।[1] धीरे-धीरे मानव ने वस्तु, रूप, उपकरण, भाव, विचार आदि के लिए शब्दों के 'टोकन' तैयार कर भाषा का निर्माण कर लिया। भाषा भी प्रस्तुत और अप्रस्तुत, मूर्त और अमूर्त पदार्थों और भावों का सांकेतिक चिह्न मात्र ही है। उदाहरणार्थ, प्रातःकालीन 'भोर' का वास्तविक वातावरण, 'भोर' का चित्रण और 'भोर' शब्द तीनों में तात्त्विक भेद है। इस दृष्टि से भोर का चित्रण वास्तविकता के अधिक समीप है और सार्वदेशिक अभिव्यक्ति है। काव्य की भाषा की पहुँच कम लोगों तक और चित्रकला की भाषा की पहुँच लगभग सभी लोगों तक होती है। संसार की किसी भी चित्रशैली के विषय और वस्तु को देखकर कोई भी सामान्य व्यक्ति उसके स्थूल कथ्य को समझ सकता है, पर संसार की सभी भाषाओं को विद्वान-से-विद्वान व्यक्ति भी नहीं पढ़ सकता।

दूसरी ओर काव्यभाषा जितनी भावाभिव्यक्ति दे सकती है, उतनी चित्रकला की भाषा नहीं। चित्रकला की भाषा की कुछ अपनी सीमारेखाएँ भी हैं।[2] वास्तव में चित्रकार की तूलिका जहाँ रुक जाती है वहाँ से गहनतम, मार्मिक काव्य का प्रारम्भ होता है।

कृष्णकाव्य और राजस्थानी चित्रकला की भाषा

काव्य पर आधारित बने हुए चित्रों का अध्ययन प्रत्यक्ष रूप से काव्यभाषा को समझने में सहायक नहीं होता, किन्तु परोक्ष रूप से कुछेक निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। भक्तिकालीन हिन्दी कृष्णकाव्य की भाषा लोकजीवन-सम्बन्धी सरल शब्दावली पर आधारित है तथा शब्दालंकारों की तड़क-भड़क भी कम है। इसी प्रकार तत्सम्बन्धी १७वीं शती के मेवाड़शैली के चित्रों में भी रंग और रेखाओं की सादगी विशेष रूप से द्रष्टव्य है।[3] रीतिकाल तक आते-आते काव्य की भाषा

---

१. देखिए, वाचस्पति गैरोला, सम्मेलन-पत्रिका, कला-अंक, पृ० १३५
२. ,, प्रस्तुत ग्रन्थ, प्रथम अध्याय
३. ,, प्रस्तुत-ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या १, २

अधिक सुचिकण तथा अक्लंकृत हो गयी और दरबारी अदब-कायदे में अकड़ गयी। उसी की समता में रंग और रेखाओं की चमक-दमक, अलंकृत दृश्यावलियों की 'जकड़वन्दी' पेड़ और पौधों के अंकन की कृत्रिमता तथा मीनाकारी, पच्ची-कारी की बारीकी के कारण १६वीं शती की राजस्थानी चित्रकला पतनशील हो गयी।[1] देशकाल और परिस्थिति का प्रभाव आगे-पीछे सभी कलाओं पर पड़ता है। मध्यकालीन हिन्दी कृष्णकाव्य और राजस्थानी चित्रकला भी इस प्रभाव से मुक्त नहीं है। कथ्य के साथ काव्य की भाषा और चित्रकला की रंग-रेखाओं में भी वह प्रभाव परिलक्षित होता है।

भाषा की दृष्टि से विचार करने पर ये निष्कर्ष निकलते हैं कि कवि और चित्रकार की भाषा में तात्त्विक भेद होते हुए भी बाह्य और आन्तरिक ढाँचे में तात्कालिक प्रभाव परिलक्षित किया जा सकता है। अपभ्रंश साहित्य की भाँति तत्कालीन प्रारम्भिक राजस्थानीशैली[2] में रंग और रेखाओं की मुटाई और विखराव तथा अंग-प्रत्यंगों की मुद्राएँ एवं आसन बिल्कुल अकड़े हुए दृष्टिगोचर होते हैं। भक्तिकालीन काव्य की भाषा की भाँति सूरदास के पदों पर आधारित १७वीं शती के मध्य के चित्रों[3] में भाषा की लोककलात्मकता, सरसता, सरलता और भाव-मयता विशेष दर्शनीय है। रीतिकाल तक आते-आते काव्य की भाषा जिस प्रकार चटकदार दरबारी और अलंकृत बन गयी, उसी प्रकार तत्कालीन सामान्य चित्र-कला भी रंग और रेखाओं की आलंकारिक, चटकदार शोखी से आक्रान्त हो गयी।[4] रीतिकाल के अन्त में भाषा घिस-पिटकर, निर्जीव होकर अपनी अर्थवत्ता को खो बैठी, उसी प्रकार १९वीं शती के मध्य से राजस्थान की विभिन्न चित्र-शैलियाँ रंग और रेखाओं की अपुष्टता एवं भदेसपन के कारण पतनोन्मुख होकर अपनी मौलिकता खो बैठीं।

इससे शिल्प के महत्त्व एवं पारस्परिक प्रभाव का अनायास ही पता चल जाता है। शिल्प के विभिन्न उपकरण कला के अंग-प्रत्यंग हैं और भावांकन उसका प्राण है। चित्रकला में शरीर अधिक सुगठित और आकर्षक होता है तथा काव्य में आत्मा अधिक मुखर होती है। राजस्थानी चित्रकला के माध्यम से भी काव्यशिल्पांगों का किसी सीमा तक अध्ययन किया जा सकता है।

---

१. देखिए, राजकीय संग्रहालय, अलवर के बारहमासा और राग-रागिनी-सम्बन्धी चित्र
२. „ एन० सी० मेहता : दि गोल्डन फ्लूट, फलक-२, ३ तथा दि टाइम्स ऑफ इण्डिया एनुवल-१९६५ चोर-पंचाशिका पर आधारित, फलक.४
३. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ, परिशिष्ट-ङ, चित्रसंख्या ३
४. „ राजस्थान के विभिन्न संग्रहालयों में १९वीं शती के चित्र

उपसंहार

समग्र अध्ययन से विदित होता है कि कलाओं में एक पारस्परिकता रहती है, जिससे एक के द्वार से दूसरे का साक्षात्कार किया जा सकता है। देश और काल की परिस्थितियों से उत्पन्न राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि प्रभाव विभिन्न कलाओं को प्रभावित करते हैं, इसलिए तत्कालीन कलाओं का बाह्य ढाँचा एवं आन्तरिक आत्मा का स्वर कथ्य की एकता के कारण एक रहता है।

काव्य और चित्रकला दो महत्त्वपूर्ण कलात्मक साधन हैं, जो मानवीय भाव-धारा को अपने में सँजोये रहते हैं। कविता वर्णमय चित्र है जो स्वर्गीय भावपूर्ण संगीत गाया करती है और चित्रों में आकृति, रस और विचारों का निवास रहता है, इसलिए चित्रकला के परिपार्श्व में काव्य का और काव्य के परिपार्श्व में चित्रकला का गहन और विस्तृत अध्ययन हो सकता है।

प्रमुखतया कृष्णकाव्य पर आधारित राजस्थानी चित्रकला १६वीं शती से लेकर १६वीं तक विभिन्न चित्रशैलियों में परिपोषित हुई है। लोकजीवन और सामन्ती जीवन के सान्निध्य, भावप्रवणता, विषय एवं वर्ण-वैविध्य तथा मनोहारी पृष्ठभूमि के अंकन के कारण राजस्थानी चित्रकला कृष्णकाव्य के भावों का चित्रांकन करने में सर्वथा समर्थ रही है। इस दृष्टि से राजस्थानी चित्रकला साहित्य की मार्मिक व्याख्या प्रस्तुत करती है।

कृष्णभक्ति-आन्दोलन एवं मुगलदरबारजनित संस्कृति से प्रभावित होनेवाली कलाएँ क्रमशः लोककलात्मक तथा विलास-वैभवपूर्ण शृंगारिकता से ओतप्रोत रही हैं। ब्रजमण्डल की कृष्णभक्ति-परम्परा एवं मुगलदरबार की विलासपूर्ण कलात्मकता को राजस्थान के जनजीवन एवं सामन्ती जीवन ने तत्परता से ग्रहण किया, जिसके फलस्वरूप काव्य एवं चित्रकला भी उसी रंग में रँगी गयी।

'सूरसागर', 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया', 'विहारी-सतसई', 'रसराज', 'नागर-

'समुच्चय' तथा स्फुट रचनाओं के आधार पर राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियों में असंख्य चित्र बने, जो स्वदेशी और विदेशी संग्रहालयों तथा व्यक्तिगत संग्रहकर्ताओं के पास बहुलता से उपलब्ध हैं।

उपर्युक्त चित्रों के आधार पर हिन्दी कृष्णकाव्य का चित्रयोजनात्मक, भावांकनात्मक एवं कलांकनात्मक अध्ययन कर जो कुछ निष्कर्ष एवं उपलब्धियाँ प्राप्त हुई हैं वे काव्य को नये परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास मात्र हैं।

राजस्थानी चित्रकला (१६०० ई०-१६०० ई०) के सचित्र ग्रन्थों के माध्यम से समूचे भक्तिकाल एवं रीतिकाल के बाह्य परिवेश और आत्मा का पर्यवेक्षण किया जा सकता है। साथ ही, विवेच्य कृष्णकाव्य के अतिरिक्त अन्य अचित्रित कृष्णकाव्य का भी अध्ययन इन्हीं चित्रों के आधार पर कर सकते हैं, क्योंकि भक्तिश्रृंगार के सूरदास, नायक-नायिकाभेद के केशवदास और मुक्तक के बिहारी लाल सर्वप्रमुख कवि रहे हैं।

मध्यकालीन भावों, अनुभावों, प्राकृतिक एवं घरेलू परिवेश, सामाजिक रीतिरिवाज, वेशभूषा, लोककलात्मक एवं सामन्ती जीवन, पारम्परिक एवं तात्कालिक मान्यताओं आदि का चित्रांकन काव्य एवं चित्रकला में समानता से हुआ है, इसलिए चित्रकला के परिपार्श्व में काव्य के सन्दर्भ एवं अर्थवत्ता को भली प्रकार से समझा जा सकता है।

आज के युग में मानवमूल्यों के साथ कला के प्रति दृष्टिकोण भी बदल-सा गया है। सौन्दर्यशास्त्र का नवीन दृष्टिकोण कलाओं तथा उनके आपसी सम्बन्ध, मानव द्वारा कला के निर्माण और उनके उपयोग पर अधिक विचारशील है, इसलिए मध्यकालीन हिन्दी कृष्णकाव्य का ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय एवं कलात्मक विश्लेषण अत्यावश्यक है। राजस्थानी चित्रकला में अंकित तत्सम्बन्धी सचित्र ग्रन्थ एवं लघुचित्र इस प्रकार के अध्ययन के लिए विशेष उपयोगी हैं। पाश्चात्य प्रभाव के कारण भारतीय सभ्यता और संस्कृति अन्धकार के गर्त में तिरोहित होती जा रही है। मध्यकालीन कृष्णकाव्य के बाह्य वातावरण एवं आत्मा से आधुनिकबोधवाला पाठक दिन-ब-दिन दूर होता जा रहा है। ऐसी स्थति में मध्यकालीन काव्य के अध्ययन में तत्कालीन चित्रकला नये आयाम प्रस्तुत कर सकती है।

तुलनात्मक अध्ययन से काव्य की ही नहीं, चित्रकला की भी अनेक समस्याओं का हल निकल आता है। प्रमुखतया राजस्थानी चित्रकला और मध्यकालीन हिन्दी काव्य का कथ्य एक है, इसलिए काव्य के आधार पर बने हुए चित्रों की आत्मा को और उनकी भावप्रवणता की सूक्ष्मता को जानने के लिए कलामर्मज्ञों एवं कलारसिकों के लिए काव्य का अध्ययन अत्यावश्यक है। काव्य की अज्ञानता में उच्चकोटि के कलासमीक्षक भी चित्रों के शीर्षक देने एवं तिथि-नियुक्ति में

त्रुटियाँ कर जाते हैं। अधिकतर चित्र काव्य के भाव पर आधारित हैं, इसलिए काव्य के भाव को समझे बिना उनकी समीक्षा करना उनके साथ अन्याय करना होगा।

उपर्युक्त तथ्यों के निरूपण का निचोड़ यह है कि प्रत्येक विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में उपलब्ध सचित्र ग्रन्थों एवं लघुचित्रों की पारदर्शियों का संग्रह होना चाहिए, जिनके आधार पर हिन्दी के सुधी विद्यार्थी उनके पर्यवेक्षण से मध्य-कालीन कृष्णकाव्य की आत्मा एवं बाह्य आवरण को पहचान सकें। तुलनात्मक अध्ययन के लिए सचित्र ग्रन्थों का प्रकाशन भी अत्यधिक लाभकारी सिद्ध हो सकता है।

परिशिष्ट

(क) उपलब्ध सचित्र ग्रन्थों एवं लघुचित्रों की सूची

श्रीमद्भागवत

पृष्ठ	शैली	समय	संग्रहकर्ता	विशेष
१. पूर्ण (११९०)	मेवाड़	१७६० ई०	सरस्वती भण्डार, कोटा	४७६० चित्रों से सुसज्जित
२. ८, ९, ११, १२ स्कन्ध	"	१६४८ ई०	भण्डारकर ओरियण्टल इंस्टीट्यूट,	कलाकार साहवदी
३. दशम् स्कन्ध	"	१६१० ई०	पुस्तक प्रकाश, जोधपुर	
४. "	"	१५९८ ई०	पोथीखाना, जयपुर	
५. लिपटवाँ	"	१८वीं शती	सरस्वती भण्डार, कोटा	
६. १५ पन्ने	"	"	सरदार म्युजियम, जोधपुर	
७. कुछ पन्ने	"	—	राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली	
८. "	"	१७०० ई०	प्रिन्स ऑफ वेल्स म्युजियम, बम्बई	
९. "	"	१६८०—१७०० ई०	भारत कला भवन, बनारस	
१०. "	"	"	गोपीकृष्ण कानोड़िया, कलकत्ता	

पृष्ठ	शैली	समय	संग्रहकर्ता	विशेष
११. १३६ पन्ने	जयपुर	सं० १६४६	सिटी पैलेस म्युजियम, जयपुर	
१२. १८ पन्ने	,,	सं० १६५६	,,	
१३. पूर्ण (७७३ पृ०)	अलवर	१८वीं शती	राजकीय संग्रहालय, अलवर	२६ चित्र
१४. लिपटवाँ	,,	,,	,,	
१५. ,,	,,	१८वीं शती (अन्त)	,,	१८५ चित्र
१६. ३५ पन्ने	राजस्थानी	१७वीं शती (अन्त)	भारत इतिहास संशोधक मण्डल, पूना	
१७. कुछ पन्ने	,,	,,	नेशनल गैलेरी, प्राग	
श्रीमद्भागवत गीता				
१. ४२५	अलवर	१८वीं शती	राजकीय संग्रहालय, अलवर	१० चित्र
२. ३२४	,,	,,	,,	१७ ,,
३. २६१	,,	,,	,,	२२ ,, सोना और चाँदी की स्याही से लिखित
४. १२५	,,	,,	,,	१ चित्र
५. लिपटवाँ ६२'-११"-४½"	,,	,,	,,	१०७ चित्र
६. लिपटवाँ ६१'-३"-४½"	,,	,,	,,	३८ चित्र
७. लिपटवाँ १५'-३"-२"	,,	,,	,,	२३ चित्र
८. लिपटवाँ १३'-५"-६"	,,	१८वीं शती (अन्त)	,,	१८ चित्र
९. लिपटवाँ १२'-६"-२"	,,	,,	,,	१० चित्र सुनहरी अलंकार सज्जित

पृष्ठ	शैली	समय	संग्रहकर्ता	विशेष
महाभारत				
१. ६३२	अलवर	११७४ हिजरी	राजकीय संग्रहालय, अलवर	४४ चित्र, फारसी में नकीवखाँ द्वारा लिखित
२. लिपटवाँ २५७′-३″-५″	,,	१८वीं शती (अन्त)	,,	५४ चित्र सबसे बड़ा लिपटवाँ सचित्र-ग्रन्थ
गीतगोविन्द				
१. २०२	मेवाड़	—	सरस्वती-भण्डार, उदयपुर	—
२. १७३	,,	१७१८ ई०	सरस्वती-भण्डार, उदयपुर	भक्त रूप-राज्य द्वारा चित्रित
३. कुछ पन्ने	,,	१६५० ई०	प्रिन्स ऑफ वेल्स म्युजियम, बम्बई कुँ० संग्रामसिंह, जयपुर	—
४. ,,	,,	,,	,,	—
५. पूर्ण	जयपुर	१८०० ई०	सिटी पैलेस म्युजियम, जयपुर	—
६. ,,	,,	—	,,	लेखक महा-वत राय कश्मीरी
७. ,,	,,	सं० १९५०	,,	—
८. ,,	अलवर	१८वीं शती	राजकीय संग्रहालय,	३५ चित्र
सूरसागर				
१. कुछ पन्ने	मेवाड़	१६५०-५१ई०	गोपीकृष्ण कानो-ड़िया, कलकत्ता	कला की दृष्टि से उत्कृष्ट चित्र

पृष्ठ	शैली	समय	संग्रहकर्ता	विशेष
२. कुछ पन्ने	मेवाड़	१६५९ ई०	राष्ट्रीय संग्रहालय नयी दिल्ली	भ्रमरगीत से सम्बन्धित
३. ,,	,,	१७२०-४०ई०	रामगोपाल विजयवर्गीय, जयपुर	४६ में से केवल ३ शेष हैं
४. ,,	,,	—	कुं० संग्रामसिंह, जयपुर	—
५. ,,	,,	१८वीं शती (मध्य)	पिक्चर एण्ड आर्ट गैलेरी, बड़ौदा	—
६. ,,	मारवाड़	१६५० ई० (लगभग)	,,	—

रसिकप्रिया

१. ८८	मेवाड़	—	सरस्वती भण्डार, उदयपुर	चोरी के कारण अभी कोर्ट में सुरक्षित हैं
२ ७	,,	१७वीं शती	मोतीचन्द्र खजांची, बीकानेर	विशष विवरण कैटलाग ऑफ मिनियेचर इन दि कलेक्शन ऑफ मोतीचन्द्र खजांची
३. ४	,,	१६५० ई०	रामगोपाल विजयवर्गीय, जयपुर	
४. कुछ पन्ने	,,	—	कुं० संग्रामसिंह, जयपुर	—
५. ,,	,,	—	बीकानेर दरबार, बीकानेर	—
६. ४८	बूंदी	१८वीं शती (मध्य)	राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली	ललित-कला ३-४

पृष्ठ	शैली	समय	संग्रहकर्ता	विशेष
७. कुछ पन्ने	बूंदी	१७वीं शती (अन्तिम)	एन०सी० मेहता आर्ट गैलेरी, अहमदाबाद	—
८. ,,	,,	१७वीं शती (अन्तिम) १८वीं शती प्रारम्भ	मोतीचन्द्र खजांची, बीकानेर	—
९. ,,	,,	१८वीं शती	माधुरी देसाई, बम्बई	—
१०. ,,	,,	—	पिक्चर एण्ड आर्ट गैलेरी, वड़ौदा	
११. ,,	,,	—	जोहान्सन संग्रह, इण्डिया आफिस, लन्दन	
१२. ,,	प्रारम्भिक राजस्थानी	१६२० ई०	बोस्टन म्युजियम, लन्दन	
१३. ,,	,,	१६२० ई०	राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली	मालवा का प्रभाव
१४. ,,	बीकानेर	१६७४-९८ई०	,,	नूरूद्दीन द्वारा चित्रित
१५. ,,	,,	,,	बीकानेर दरबार	,,
विहारी-सतसई				
१. २३६	मेवाड़	१७२२ ई०	सरस्वती भण्डार, उदयपुर	कुल ३९२ चित्र थे, शेष चोरी चले गये
२. ६४	,,	,,	मुनि कान्ति-सागर, उदयपुर	—
३. ६	,,	—	रामगोपाल विजय-वर्गीय, जयपुर	
४. कुछ चित्र	,,	—	एन० सी० मेहता संग्रह, अहमदाबाद	

पृष्ठ	शैली	समय	संग्रहकर्ता	विशेष
५. कुछ चित्र	मेवाड़	१७२२ ई०	कुँ० संग्रामसिंह, जयपुर	
६. ,,	,,	—	भारत कला भवन, बनारस	
७. १६	बूंदी	१७५० ई०	आर० डी० खन्ना, जयपुर	
८. ८	,,	१७५० ई०	रामगोपाल विजय-वर्गीय, जयपुर	

रसराज

पृष्ठ	शैली	समय	संग्रहकर्ता	विशेष
१. २२ चित्र	मारवाड़	१८०० ई० (लगभग)	,,	जोधपुर के नाथों से प्राप्त हुए
२. कुछ चित्र	,,	,,	राजकीय संग्रहालय, जयपुर	
३. ,,	,,	,,	कुँ० संग्रामसिंह, जयपुर	
४. ,,	,,	,,	राजकीय संग्रहालय, जयपुर	
५. ,,	,,	,,	राजकीय संग्रहालय, बीकानेर	

कृष्णलीला-सम्बन्धी अन्य लघुचित्र

पृष्ठ	शैली	समय	संग्रहकर्ता	विशेष
१. ३२६	मेवाड़	—	सरस्वती-भण्डार, उदयपुर	—
२. १४५	,,	—	विक्टोरिया हॉल म्युजियम, उदयपुर	संस्कृत में पद
३. ४०	,,	जहाँगीरकाल	राजकीय संग्रहालय, कोटा	कला की दृष्टि से उत्कृष्ट
४. कुछ पन्ने	,,	—	भारत कला भवन, बनारस	

पृष्ठ	शैली	समय	संग्रहकर्ता	विशेष
५. कुछ पन्ने	मेवाड़	१७वीं शती (अन्त)	प्रो०ए० स्टैडत्स कलेक्शन, प्राग	
६. ,,	,,	१८वीं शती	सरदार म्युजियम, जोधपुर	
७. ,,	राजस्थानी	१८०० ई०	नेशनल गैलेरी, प्राग	अलवरशैली के चित्र लगते हैं

(विदेशों में अनेक लघुचित्र उपलब्ध हैं तथा भारत में प्रत्येक सग्रहालय और संग्रहकर्ता के पास कुछ कृष्णलीला के चित्र अवश्य मिलेंगे।)

रागमाला

१. २१७ चित्र	मेवाड़	—	सरस्वती भण्डार, उदयपुर
२. ३६ चित्र	,,	१८वीं शती (अन्त)	विक्टोरिया हॉल म्युजियम, उदयपुर
३, अनेक चित्र	,,	—	गोपीकृष्ण कानोड़िया, कलकत्ता
४. ५३ चित्र	,,	१८वीं शती	गंगा गोल्डन जुबिली म्युजियम, बीकानेर
५. ४५	,,	—	सिटी पैलेस म्युजियम, जयपुर
६. अनेक चित्र	अलवर	—	राजकीय संग्रहालय, अलवर
७. कुछ चित्र	बीकानेर	—	एन० सी० मेहता आर्ट गैलेरी, अहमदाबाद
८. ८० चित्र	विभिन्न शैलियों में	—	भारत इतिहास संशोधक मण्डल, पूना
९. अनेक चित्र	,,	—	भारत कलाभवन, बनारस
१०. ,,	,,	—	कुँ० संग्रामसिंह, जयपुर

	पृष्ठ	शैली	समय	संग्रहकर्ता	विशेष
११.	अनेक चित्र	विभिन्न शैलियों में	—	राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली	
१२.	"	"	—	पिक्चर एण्ड आर्ट गैलेरी, बड़ौदा	

(रागमाला के चित्र पदसहित लगभग सभी संग्रहालयों और संग्रहकर्ताओं के पास उपलब्ध हैं।)

(ख) प्रकाशित चित्र सूची

सूरसागर

पद या शीर्षक	शैली	समय	पुस्तक	फलक पृष्ठ
१. माई मेरो मन राचत है विहारीलाल सों	मेवाड़	१६५०-५१ ई०	मेवाड़ पेण्टिंग : मोतीचन्द्र	फ० ३
२. सकल भुवन आनन्द में होत मगन	"	"	इण्डियन पेण्टिंग : फिलिप्स राबिन्सन	पृ० १२५
३. रेण सबहि सखी संग राचै	"	"	इण्डियन पेण्टिंग : आर्चर	पृ० ४०
४. लाल तिहारी मुरली नैंक बजाऊँ	"	१८वीं शती (अन्त)	राजपूत पेण्टिंग कैटलॉग	फ० ४
५. रेण सबहि सखी संग राचै	"	१६५०-५१ ई०	दि लव्ज ऑफ कृष्णा : आर्चर	फ० २६
६. पद	"	१६७५ ई० (लगभग)	मिनियेचर फ्राम दि ईस्ट : लूबरहैज़क	फ० ६
७. हरि के वदन तन धौं चाहि	मारवाड़	१७वीं शती	कैटलॉग ऑफ मिनियेचर पेण्टिंग्स इन बड़ौदा म्युजियम	फ० ४०

रसिकप्रिया

पद या शीर्षक	शैली	समय	पुस्तक	फलक पृष्ठ
१. श्री राधिकाजू को प्रकाश साक्षात् दर्शन	मेवाड़	१६५० ई०	दि गोल्डन फ्लूट : एन० सी० मेहता	फ० ४

पद या शीर्षक	शैली	समय	पुस्तक	फलक पृष्ठ
२. श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न वियोग	मेवाड़	१७४२ ई०	राजस्थानी चित्रकला : विजयवर्गीय	फ० १९
३. प्रगल्भवचना मध्या नायिका	„	१७वीं शती	राजस्थानी चित्रकला : विजयवर्गीय	फ०२३
४. प्रच्छन्न विप्रलब्धा नायिका	„	१७वीं शती	कैटलॉग ऑफ मोती-चन्द्र खजांचीज कलेक्शन.	फ० ३२
५. श्री राधिकाजू को प्रकाश उद्वेग	„	१७वीं शती (मध्य)	„	फ० ३३
६. श्री राधिकाजू को प्रकाश साक्षात् दर्शन	„	१६५० ई०	कैटलॉग ऑफ मोती-चन्द्र खजांचीज कलेक्शन	फ० ३४
७. श्रीकृष्णजू को स्वप्न दर्शन	बूंदी	१७वीं शती (अन्त)	दि गोल्डन फ्लूट : एन० सी० मेहता	फ०५
८. श्री कृष्णजू को विभ्रमहाव	„	१७२५ ई०	बूंदी पेण्टिग : प्रमोदचन्द्र	फ० ५
९. श्री राधाजी को मनाइवो	„	१८वीं शती (मध्य)	ललितकला ३-४	फ० २३-१
१०. पात्र दुष्ट लच्छिन	„	„	„	फ० २३-२
११. श्री राधाजू को करुणरस	„	„	„	फ० २४-३
१२. श्रीराधाजू को विभ्रम	„	„	„	फ० २४-४
१३. प्रकाश वासकसज्जा	„	„	„	फ० २५-५
१४. श्री कहूँ सिछा	„	„	„	फ०२६-७
१५. श्रीराधाजू कहूँ विनयु	„	„	„	फ० २८-७
१६. श्रीकृष्णजू को समरस	„	„	„	फ० २८-८
१७. प्रच्छन्न वासकसज्जा	„	„	मार्ग ११।२	पृ० ५१
१८. श्री राधाजू को मिलैबो	„	१७०० ई० (लगभग)	दि लव्ज ऑफ कृष्णा : आर्चर	फ० २८
१९. श्रीकृष्ण को परिहास	„	१७७०-८१ ई०	ललितकला ३-४	फ० सी
२०. „	„	„	बूंदी पेण्टिग : प्रमोदचन्द्र	फ० ७
२१. प्रच्छन्न वासकसज्जा	„	१६८० ई०	इण्डियन मिनियेचर : आर्चर	फ० ४३

पद या शीर्षक	शैली	समय	पुस्तक	फलक पृष्ठ
२२. अनूढ़ा नायिका	मारवाड़	१६५० ई०	कैटलॉग ऑफ मिनियेचर पेंण्टिग इन वड़ौदा म्युजियम	फ० ई
२३. श्रीकृष्णजू की प्रच्छन्न जड़ता	बीकानेर	१६६१ ई०	दि गोल्डन फ्लूट : एन० सी० मेहता	फ० ७
२४. छिपकर राधा का शृंगार देखना	„	१६८४-६४ ई०	आर्ट एण्ड आर्चीटेक्ट ऑफ बीकानेर स्टेट : हरमन ग्वेत्स	पृ० ७८
२५. दूती का राधा के पास कृष्ण को बुलाना	„	१६८७ ई०	„	पृ० ६३
२६. पांइ परेहु न प्रीतम त्यों कहि	राजस्थानी	१६०५-२७ई०	इण्डियन मिनि-येचर्स : वेसिल ग्रे	फ० ६

कविप्रिया

पद या शीर्षक	शैली	समय	पुस्तक	फलक पृष्ठ
१. चैतमास	बूंदी		कैटलॉग ऑफ मिनियेचर पेंण्टिग इन वड़ौदा म्युजियम	फ०सी

बिहारी-सतसई

पद या शीर्षक	शैली	समय	पुस्तक	फलक पृष्ठ
१. मेरी भव बाधा हरौ	मेवाड़	१७वीं शती	दि टाइम्स ऑफ इण्डिया एनुअल-१६६५	पृ० २८
२. तुम जिन जानो बीछुरे	„		'सम्मेलन-पत्रिका' कला-अंक	पृ०१२४
३. नहीं पराग	„		रूप लेखा	३०-१-२
४. अधर धरत हरि के परत	„		„	„

(ग) पारिभाषिक शब्दावली

१. आदमकद—आदमी की ऊँचाई के बराबर कोई चित्र या मूर्ति।
२. कलावन्त—गायक या संगीतकार।
३. कुण्डलित पटचित्र—वह चित्र या सचित्र ग्रन्थ जो कपड़े पर या लम्बे कागज

पर अंकित किया जाता है तथा जिसे लपेटकर रखा जाता है। अंग्रेजी में ऐसे पटचित्र को 'स्क्रोल' कहते हैं।

४. चश्म—आँख। भारतीय चित्रकला में मुख्यतः छः रुख के चेहरे वनाये जाते हैं। उनके नाम तात्पर्यसहित इस प्रकार हैं—१. फेन-चश्म, जिसमें चेहरे का आधे से भी कम हिस्सा एवं एक आँख का जरा-सा कोना दिखायी देता है। २. एक-चश्म, जिसमें चेहरे का एक रुख और एक आँख दीख पड़ती है। ३. सवा चश्म, जिसमें चेहरे का समूचा एक रुख और उससे परले रुख की थोड़ी-सी आँख दीख पड़ती है। ४. डेढ़ चश्म, जिसमें परले गाल और आँख का अंश और अधिकः दिखायी देता है। ५. पौने दो चश्म, जिसमें चेहरे का परला रुख और आँख सम्मुख चेहरे से कुछ ही कम दीख पड़ती है। ६. सम्मुख, जिसमें नाक ठीक वीच में होती है और चेहरे के दोनों रुख तथा दोनों आँखें पूरी-पूरी दिखायी देती हैं।

५. दृष्टिक्रम (पर्सपेक्टिव)—दर्शक को यथाक्रम एक के वाद दूसरी वस्तु दीख पड़ने की अभिव्यक्ति।

६. पच्चीकारी—एक वस्तु को दूसरी वस्तु में इस तरह खोदकर जोड़ना कि दोनों की सतह एक मेल में आ जायें तथा वे परस्पर अंग और अंगी जान पड़ें। एक रंग के पत्थर पर दूसरे रंग के पत्थर का जड़ाव।

७. परदाज—अभीष्ट रंगत लाने के लिए विन्दुओं को इतने पास अंकित करना कि वे एक जान पड़ें और उनसे अभीष्ट परिणाम निकल आयें। मुगलशैली में प्रयुक्त परदाज़ के तीन प्रमुख भेद हैं—१. दाना परदाज, २. खत परदाज और ३. धुआँधार परदाज।

८. पृष्ठिका, पृष्ठभूमि (बैकग्राउण्ड)—चित्र में अंकित पीछे का भाग, जो दृश्य या घटना का आश्रय होता है।

९. पोथीचित्र (मेनुस्कृप्ट)—वे ग्रन्थ जो सचित्र लिखित हैं। ऐसे ग्रन्थों को 'सचित्र ग्रन्थ' भी कहते हैं।

१०. फलक—धातुओं और विशेषतः लकड़ी के पट्टों को 'फलक' कहते हैं। किसी समय उन पर चित्र खींचे जाते थे। पत्र या कागज पर के चित्रों की अपेक्षा वे अधिक स्थायी होते थे। आजकल पृथक मुद्रित कागजचित्र को भी फलक (प्लेट) कहते हैं।

११. भित्तिचित्र—प्राचीन भारत में विशेषतः भित्ति पर चित्रण होता था, अतः चित्र की किसी भी आधारभूत सतह को भित्ति कहते थे और ऐसे चित्रों को भित्तिचित्र।

१२. मीनाकारी—मीना का काम।

१३. मुसव्विर—चितेरे या चित्रकार का रीतिकालीन दरबारी नाम।

१४. लघुचित्र—(मिनियेचर्स) वे चित्र जो प्रमुखतया २ फुट लम्वे और १ फुट चौड़े मोटे कागज पर बनाये गये। वह लम्वाई-चौड़ाई सुविधानुसार कम-ज्यादा भी रही है।

१५. वर्तना—रेखांकन या लिखावट। यह तीन प्रकार की मानी गयी है—पत्रवर्तना, आहैरिक वर्तना और बिन्दुवर्तना। पत्रसदृश रेखाओं को पत्रवर्तना, अत्यन्त सूक्ष्मरेखा को आहैरिक वर्तना और स्तम्भनयुक्त रेखा को बिन्दुवर्तना कहते हैं।

१६. वर्णिका—अमुक-अमुक रंगों का समवाय, जो किसी चित्र या शैली में विशेष रूप से वरता जाय।

१७. वसली—कागज के कई पत्र साटकर वनायी गयी दफ्ती को वसली कहते हैं।

१८. शबीह—व्यतिचित्र, किसी रूप का तद्वत् अंकन।

१९. शैली—कलम (स्कूल) ऐसे चित्रों का कोई वर्ग जिनकी विशेषताओं में अंकन, सिद्धान्त एवं चित्रकारों की मनोवृत्ति की एकता के कारण साम्य हो।

२०. हाशिया—चित्र के चारों ओर वेल-बूटों या अन्य प्रकार के अलंकृत डिजाइनों की वनावट।

(घ) ग्रन्थ-सूची

(अ) आधार-ग्रन्थ

केशव-ग्रन्थावली, भाग १ : स० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
गीतगोविन्द : डॉ० विनयमोहन शर्मा
नागरसमुच्चय (नागरीदास) स० पं० शिवलाल, ज्ञानसागर प्रेस मुम्बई, १८९२
पद्माकर पंचामृत : स० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
पद्माकरकृत जगद्विनोद : स० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
विहारीरत्नाकर : जगन्नाथ प्रसाद रत्नाकर
भाव-विलास : स० लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी
मतिराम-ग्रन्थावली : स० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
महाभारत : (गीताप्रेस, गोरखपुर)
मीरावाई की पदावली : स० परशुराम चतुर्वेदी
युगलशतक : श्रीभट्ट

विद्यापतिपदावली : स० रामवृक्ष बेनीपुरी
श्रीमद्भागवत : (गीताप्रेस, गोरखपुर)
श्रीमद्भगवतगीता : (गीताप्रेस, गोरखपुर)
सूरसागर : स० नन्द दुलारे वाजपेयी

(आ) सन्दर्भ-ग्रन्थ (चित्रकला-सम्बन्धी)

संस्कृत-हिन्दी

चित्रकला का रसास्वादन : रामचन्द्र शुक्ल
भारत कलाभवन का सूचीपत्र : रायकृष्णदास
भारत की चित्रकला : रायकृष्णदास
भारतीय चित्रकला : वाचस्पति गैरोला
भारतीय कला का सिंहावलोकन : रामचन्द्र शुक्ल
भारत-शिल्प के षडंग : अवनीन्द्रनाथ ठाकुर
भारतीय चित्रकला : असित हाल्दार
राजस्थानी चित्रकला : रामगोपाल विजयवर्गीय
ललितकला की धारा : असित हाल्दार

अंग्रेजी

अजन्ता : जी० याजदानी
अजन्ता फ्रेंस्कोज : हैरिंघम
आर्ट एण्ड देयर इण्टर रिलेशन्स : टी० मुनरो
आर्ट एण्ड आर्कीटैक्ट ऑफ बीकानेर स्टेट : हरमन ग्वेत्स
इण्डियन मिनियेचर पेण्टिंग्स : मोरिस डायमण्ड
इण्डियन पेण्टिंग : पर्सी ब्राउन
इण्डियन मिनियेचर्स : डब्लू० जी० आर्चर
इण्डियन मिनियेचर्स इन इलाहाबाद म्युजियम
इण्डियन मिनियेचर्स-राजपूत पेण्टर्स : आर० फिल
इण्डियन पेण्टिंग : फिलिप्स एस० रावन्सन
इण्डियन मिनियेचर्स ऑफ मुगल स्कूल : लूबर हैज़क
इण्डियन बुक पेण्टिंग : कैनल एण्ड गोयटी
इण्डियन पेण्टिंग : डब्लू० जी० आर्चर
इण्डियन पेण्टिंग इन बूंदी एण्ड कोटा : डब्लू० जी० आर्चर
इण्डियन आर्ट : एस० एन० दासगुप्ता
इण्डियन आर्ट्स एण्ड लेटर्स : हरमन ग्वेत्स
अलवर एण्ड इट्स आर्ट ट्रेजर्स : हैण्डले

ए सर्वे ऑफ इण्डियन आर्ट : हरमन ग्वेत्स
ए हिस्ट्री ऑफ फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सीलोन : विन्सैण्ट स्मिथ
कल्प-सूत्र : सारा भाई
काँगड़ा पेंण्टिग ऑन लव : एम० एस० रंधावा
किशनगढ़ पेंण्टिग : ऐरिक डिकिन्सन
क्रिटिकल कैटलॉग ऑफ मिनियेचर पेण्टिंग्स इन दि बड़ौदा म्युजियम : ओ० सी० गांगुली
कैटलॉग ऑफ इण्डियन कलेक्शन इन म्युजियम ऑफ फाइन आर्ट्स : आनन्दकुमार स्वामी
कैटलॉग टू गंगा गोल्डन जुबिली म्युजियम, बीकानेर
कैटलॉग टू सरदार म्युजियम, जोधपुर
" " गवर्नमैण्ट " अलवर
" " " " कोटा
" " " " उदयपुर
" " " " जयपुर
कोर्ट पेण्टर्स ऑफ ग्रैण्ड मुगल : आक्सफोर्ड प्रकाशन
गीतगोविन्द इन बसौली स्कूल : आर० प्रसाद सिन्हा
जैन मिनियेचर्स : मोतीचन्द्र खजांची
ट्रेजर्स ऑफ एशिया, पेंण्टिग ऑफ इण्डिया : डगलस बैस्ट एण्ड बेसिल ग्रे
दि लव्ज ऑफ कृष्णा : डब्लू० जी० आर्चर
दि आर्ट ऑफ इण्डिया : स्टैला क्रेमरिस
दि आर्ट ऑफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान : सर ले असून्टन
दि हिन्दू व्यू ऑफ आर्ट : मुल्कराज आनन्द
दि गोल्डन फ्लूट : एन० सी० मेहता
दि कृष्णा लीगेण्ड : एम० एस० रंधावा
दि हैरिटेज ऑफ इण्डियन आर्ट : वासुदेवशरण अग्रवाल
बसौली पेंण्टिग : एम० एस० रंधावा
बूंदी पेंण्टिग : प्रमोदचन्द्र
मास्टर पीसेज़ ऑफ राजपूत पेंण्टिग : ओ० सी० गांगुली
मिनियेचर पेण्टिंग्स फ्रॉम श्री मोतीचन्द्र खजांची कलेक्शन : कार्ल खण्डालवाला
मिनियेचर्स फ्रॉम दि ईस्ट : लूबर हैज़क
मिथ्स एण्ड सिम्बल्स इन इण्डियन आर्ट एण्ड सिविलाइजेशन : हैनरिच जिम्बर

मुगल मिनियेचर्स : रायकृष्णदास
" " : रायकृष्णदास
मेवाड़ पेण्टिग : डॉ० मोतीचन्द्र
राजपूत " : भाग १-२ : आनन्दकुमार स्वामी
" " : वेसिल ग्रे
रागाज़ एण्ड रागिनीज : ओ० सी० गांगुली
राजपूत पेण्टिंग्स : बर्लिग्टन मैग
राजपूत पेण्टिग, कैटलॉग : जार्ज मोण्टगूमरी
स्टडीज इन इण्डियन पेण्टिग : एन० सी० मेहता
सर्वे ऑफ राजस्थानी पेण्टिग (थीसिस) : आनन्दकृष्ण
सिम्बॉलिज्म ऑफ इण्डियन स्कल्पचर एण्ड पेण्टिग : हैविल
हिस्ट्री ऑफ इण्डियन आर्ट : आनन्दकुमार स्वामी

(इ) सामान्य ग्रन्थ

संस्कृत-हिन्दी

अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय : डॉ० दीनदयाल गुप्त
अरस्तू का काव्यशास्त्र : सं० डॉ० नगेन्द्र
उदयपुर राज्य का इतिहास : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
कला और संस्कृति : वासुदेवशरण अग्रवाल
कवि विहारीलाल : जगन्नाथ प्रसाद रत्नाकर
कविवर विहारीलाल और उनका युग : डॉ० रणधीर सिन्हा
कामसूत्र : वात्स्यायन
काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध : जयशंकर प्रसाद
काव्यदर्पण : रामदहिन मिश्र
काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध : डॉ० उमा मिश्र
कृष्णभक्त कवियों में अभिव्यंजनाशिल्प : डॉ० सावित्री सिन्हा
केशव : चन्द्रबली पाण्डे
चिन्तामणि : भाग १ व २ : रामचन्द्र शुक्ल
चौरासी वैष्णवन की वार्ता (वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सं० १९८५)
दरबारी संस्कृति और हिन्दू मुक्तक : डॉ० त्रिभुवनसिंह
दानलीलाबधूचरित : बखतेस (अप्रकाशित)
दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सं० १९८८)
नाट्यशास्त्र : सं० बटुकनाथ शर्मा
पूर्व आधुनिक राजस्थान : डॉ० रघुबीरसिंह

व्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद : प्रभुदयाल मीतल
व्रज का इतिहास : श्री कृष्णदत्त वाजपेयी
बिहारी : विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
बिहारी का नया मूल्यांकन : डॉ० बच्चनसिंह
भक्तवर नागरीदास : फैयाज अलीखाँ (अप्रकाशित शोध-ग्रन्थ)
भक्तमाल : प्रियादास
भक्तिदर्शन : डॉ० सरनामसिंह शर्मा
महाकवि मतिराम : डॉ० त्रिभुवनसिंह
मध्यकालीन भारत : अवधबिहारी पाण्डे
मध्यकालीन भक्तिश्रृंगार का स्वरूप : डॉ० मिथिलेश कान्ति
मध्यकालीन प्रेमसाधना : परशुराम चतुर्वेदी
मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ : डॉ० सावित्री सिन्हा
मीरावाई : डॉ० श्रीकृष्णलाल
मीरा स्मृति-ग्रन्थ : वंगीय हिन्दी परिषद्, कलकत्ता
मुक्तक-काव्य-परम्परा और बिहारी : रामसागर त्रिपाठी
राग-कल्पद्रुम : कृष्णानन्द व्यास
राजपूताने का इतिहास : ओझा
रीतिकाव्य का शास्त्रीय आधार : डॉ० नगेन्द्र
रीतिकाव्य की भूमिका : डॉ० नगेन्द्र
रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना : डॉ० बच्चनसिंह
रीतिकालीन साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : डॉ० शिवलाल जोशी
रीतिकालीन कविता एवं श्रृंगाररस का विवेचन : राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी
विष्णुधर्मोत्तरपुराण (चित्रसूत्तम)
विजयवल्लभ सूरी स्मारक ग्रन्थ : मुनि पुण्य विजय
वैष्णव नरेश : रा० रा० लल्लू भाई छगनलाल देसाई
समाजशास्त्रीय विश्वकोश : शम्भुरत्न त्रिपाठी
संगीतरत्नाकर : (सारंगदेव) रा० एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री
साहित्यालोचन : श्यामसुन्दर दास
सिद्धान्त और अध्ययन : गुलावराय
सूरदास : रामचन्द्र शुक्ल
सूर और उनका साहित्य : हरवंश लाल
सूरदास : डॉ० बृजेश्वर वर्मा
सूरदास का काव्यवैभव : डॉ० मुंशीराम शर्मा
सूर-साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन : प्रेमनारायण टण्डन

सूर-संगीत : प्रभुदयाल गर्ग
सौन्दर्यशास्त्र : डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा
हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास : सं० डॉ० नगेन्द्र
हिन्दी साहित्य की भूमिका : हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य में कृष्ण : सरोजिनी कुलश्रेष्ठ
अंग्रेजी
एँस्थेटिक्स : क्रोचे
दि मेकिंग ऑफ लिटरेचर : स्काट जेम्स
दि पोइटिक इमेज : सी० डे० लिविस
दि मीनिंग ऑफ आर्ट : हर्बट रीड
प्रिंसिपिल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटीसिज्म : आई० ए० रिचर्ड्स
रोमाण्टिक इमेज : बावरा
लैकून : लैस्सिंग (अंग्रेजी अनुवाद)
हिस्ट्री ऑफ एँस्थेटिक्स : बी० बोजाके

(उ) पत्र-पत्रिकाएँ

हिन्दी
आधार (त्रैमासिक कला-पत्रिका, बम्बई)
आलोचना (त्रैमासिक आलोचनात्मक पत्रिका, दिल्ली)
उत्तर-भारती १९५९
कलानिधि (कला-भवन, बनारस की मुख-पत्रिका)
खोज रिपोर्ट-नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
प्रतीक
राजस्थान-भारती (त्रैमासिक शोध-पत्रिका)
वार्षिकी (राजस्थान ललितकला अकादमी की पत्रिका)
शोध-पत्रिका (त्रैमासिक पत्रिका, शोध संस्थान, उदयपुर)
सम्मेलन-पत्रिका (कला-अंक)
समालोचक (सौन्दर्य विशेषांक)
संस्कृति (त्रैमासिक पत्रिका)
अंग्रेजी
इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस १९५४
एनुअल रिपोर्ट ऑफ आर्कियोलाजिकल डिपार्टमेण्ट ऑफ हिज़हाइनैस दि निज़ाम १९३८

कल्चरल फोरम
जरनल ऑफ इण्डियन सोसाइटी ऑफ ओरियण्टल आर्ट
जरनल ऑफ इण्डियन म्युजियम
जरनल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री १९३८
टाइम्स ऑफ इण्डिया एनुवल
न्यू इण्डिया एण्टीक्वायरी १९३८
न्यू हैवन १९४१ (अमेरिकन ओरियण्ट सिरीज)
बुलैटिन ऑफ प्रिन्स ऑफ वेल्स म्युजियम, बम्बई
बुलेटिन ऑफ पिक्चर एण्ड आर्ट गैलेरी, बड़ौदा
मार्ग (मार्ग पब्लिकेशन, बम्बई)
रूपलेखा (फाइन आर्ट सोसायटी जरनल, दिल्ली)
रूपम (कलकत्ता)
ललितकला (ललित कला अकादमी जरनल)
स्पान (अमेरिकन एम्बैसी मासिक)

(ङ) चित्र-परिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ में राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न शैलियों के २० चित्रों की फोटा-प्रतियाँ संलग्न हैं। प्रयत्न यह रहा है कि राजस्थानी चित्रकला की लगभग सभी शैलियों और उपशैलियों के चित्र हों जो उपलब्ध सभी सचित्र हिन्दी ग्रन्थों एवं फुटकर काव्य-सम्बन्धी लघुचित्रों का प्रतिनिधित्व कर सकें, किन्तु ग्रन्थ की सीमा एवं चित्रों की फोटो-प्रतियाँ प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयों के कारण कुछ विशेष चित्र भी नहीं दिये जा सके। संलग्न चित्र 'सूरसागर', 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया', विहारीसतसई', 'रसराज', 'युगल-शतक' आदि ग्रन्थों एवं अनेक फुटकर कविताओं के अध्ययन का संकेत देते हैं। चित्र-परिचय संक्षेप में नीचे दिया गया है। चित्र में अंकित छन्द भी ज्यों-के-त्यों यहाँ पर दिये जा रहे हैं, जो कलाकार की भाषा सम्बन्धी अल्पज्ञता के परिचायक हैं।

१. कृष्ण-लालन—यह चित्र 'श्रीमद्‌भागवत' या 'सूरसागर' के भाव पर आधारित मेवाड़शैली का उत्तम उदाहरण है। जहाँगीरकालीन उपलब्ध ४० चित्रों में से यह चित्रकला की दृष्टि से उत्कृष्ट माना जाता है। चित्र में माता यशोदा दही मथ रही है और एक गोपी कृष्ण को खिला रही है। अन्य गोपियाँ बाललीला पर चकित एवं मोहित हैं। इस चित्र की फोटो-प्रति 'राजकीय संग्रहालय, कोटा' के सौजन्य से प्राप्त हुई है।

२. नामकरण—यह चित्र भी उपर्युक्त चालीस चित्रों में से एक है। सूरदास के पद को अभिव्यक्त करनेवाले इस चित्र में कृष्ण के नामकरण-संस्कार का सुन्दर अंकन हुआ है। नन्द और यशोदा कृष्ण और बलराम को अपने आगे लिये बैठे हैं, तथा पाण्डे जन्म-पत्र देखकर उनका नामकरण कर रहे हैं। चित्र दो भागों में विभाजित है। नीचे नन्द और यशोदा पाण्डेजी का हाथ जोड़कर स्वागत कर रहे हैं तथा ऊपर के पार्श्व में नामकरण-संस्कार की विधि का अंकन किया गया है। मेवाड़शैली का जहाँगीरकालीन यह उत्कृष्ट चित्र भी 'राजकीय संग्रहालय, कोटा' से प्राप्त हुआ है।

३. गोवर्धनपूजा—१७वीं शती के मध्य का मेवाड़शैली का यह चित्र 'सूरसागर' के गोवर्धनपूजा-सम्बन्धी पदों पर आधृत है। इस चित्र में व्रजवासियों के क्रियाकलापों एवं गोवर्धन को पूजने की विधि का सुन्दर गत्यात्मक अंकन हुआ है। चित्र में व्रज की लोकसंस्कृति का चित्रकार ने सुन्दर अंकन कर दिया है। यह समूहचित्र, नन्द, यशोदा, गोप, गोपियाँ, गाय, बछड़े, संगीतकार, सेवक और कृष्ण-बलराम के अंकन से सुशोभित है। चित्र की विशेषता यह है कि इसके चारों ओर हाशिये पर सम्बन्धित पद अंकित है। इस चित्र की फोटो-प्रति 'पिक्चर एण्ड आर्ट गैलेरी, बड़ौदा' के सौजन्य से प्राप्त हुई।

४. विभ्रम-हाव—प्रस्तुत चित्र सूरदास के पद पर आधारित है। १७वीं शती के मध्य के मारवाड़शैली के इस चित्र में राधा और कृष्ण के विभ्रम-हाव का अंकन पद के अनुकूल हुआ है। प्रातःकाल राधिका यशोदा के घर पर आयी है। माता यशोदा ने उसे दही मथने को कहा, पर वह कृष्ण को देखते ही विभ्रम में पड़ गयी और रीता माँट बिलोने लगी। इसी प्रकार कृष्ण भी राधा को देखते ही गाय को भूलकर बैल के नीचे दूध दुहने बैठ गये। इस चित्र में प्रकृति की प्रातःकालीन शोभा का अंकन अत्यधिक सुन्दर बन पड़ा है। चित्र के ऊपरी पार्श्व में पद इस प्रकार अंकित है—

॥राग—॥ आज राधिका भोर ही जसोमति ग्रह आई॥ महरि कह्यो हंसि दधि मथो व्रषभान दुहाई॥ १॥ ले आयस गढ़ी भई कर नेत सुहाई॥ रीतो माट विलोवही चित जहाँ कन्हाई॥ २॥ उनकी गति हों कहा कहों जिन दृष्ट चलाई॥ लइया नोई व्रषभ सो गइया विसराई॥ ३॥ जसोदा निरखे दूर तें मन में मुसिकाई॥ सूरदास दम्पति कथा मोपे वरनी न जाई॥ ४॥ इण कीर्तन रे भाव रो ओ चित्र है॥ १॥

इस चित्र की फोटो-प्रति कुँ० संग्रामसिंह जयपुर के सौजन्य से प्राप्त हुई।

५. विपरीतरति—१६५०-५१ ई० का मेवाड़शैली का प्रस्तुत चित्र सूरदास के पद पर आधारित है। इस चित्र में राधिका की विपरीतरति की अभिलाषा को चित्रकार ने अनेक भागों में विभाजित कर कलात्मक ढंग से

अंकित किया है। चित्र की विशेषता यह है कि विपरीतरति की सभी प्रक्रियाओं के स्पष्ट अंकन के साथ ही सूरदास का चित्र भी अंकित कर दिया है। चित्र 'सूरदार' के इस पद आधारित है जो हेर-फेर के कारण चित्र में गलत अंकित किया गया है—

लाल तिहारी मुरली नैंकु बजाऊँ।
जो जिय होति प्रीत कहिवे की, सो धरि अधर सुनाऊं।।
जैंसी तान तुम्हारे मुख की, तैतियै मधुर उपाऊँ।
तुमरे आभूषन मैं पहिरों, अपने तुम्हें पिन्हाऊँ।।
तुम बैंठो दृढ़ मान साजि कै, मैं गहि चरन मनाऊँ।
तुम राधे, हो माधो, माधो ऐसी प्रीति जनाऊँ।।
यह अभिलाष बहुत मेरे जिय, नैननि यहै दिखाऊँ।
सूर स्याम गिरधरन छबीले, भुज भरि कंठ लगाऊँ।।
(सूरसागर—पद २७६०)

इस चित्र की फोटो-प्रति कुं० संग्रामसिंह के निजी संग्रह से प्राप्त हुई है।

६. कुंजविहार—नाथद्वारा उपशैली का यह चित्र हरिदास के पद पर आधारित है। इसमें राधा और कृष्ण गलबाँही डाले कुंज में विहार करते हुए अंकित किये गये हैं। चित्र में प्रकृति-परिवेश का अंकन जितना सुन्दर बन पड़ा है, उतना राधा-कृष्ण के अंग-प्रत्यंगों का नहीं। नायक-नायिका और गोपियों के कलेवर की पुष्टता नाथद्वारा उपशैली की अपनी विशेषता है। चित्र के ऊपरी भाग में पद अंकित है जो अस्पष्ट है। पद की अन्तिम पंक्ति इस प्रकार अंकित है—

छबिसों छबीली लाल लटक लपट रहै तरु तमाल कनक बेलि अरुभाई।
हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी भीजैं प्रम रंग भाई ।।२।।

इस चित्र की फोटो-प्रति भी कुं० संग्रामसिंह के सौजन्य से प्राप्त हुई है।

७. नवरसमय ब्रजराज—१७वीं शती मध्य का यह चित्र केशव की 'रसिकप्रिया' के कवित्त पर आधारित है। चित्रकार ने मेवाड़शैली के इस चित्र को कवित्त के वर्ण्य की भाँति नौ भागों में विभाजित कर चमत्कारपूर्ण बना दिया है। शृंगार में सभी रसों को निहित कर कलाकार ने शृंगार के रसराजत्व को सिद्ध कर दिया है। चित्र में कवित्त इस प्रकार अंकित है—

।।राम।। श्रीव्रषभान कुमार हेत स्रंगार रूप भय।। वासहास रस भरे मात बंधन करुनामय।। केसी प्रति अति रुद्र वीर मारो वत्सासुर।। भय दावानल पान पायो बीभछ डर कीय।। अति अद्भुत वंचि विरंचि भति सांत संततै सीच चित।। कहि केसव सेवहुं रसिकजन नवरस में ब्रजराज नित ।। २ ।।

इस चित्र की फोटो-प्रति भी कुं०संग्रामसिंह के निजी संग्रह से प्राप्त हुई है।

८. वासकसज्जा नायिका—केशव की 'रसिकप्रिया' के अष्टनायिका-प्रसंग से सम्बन्धित वासकसज्जा नायिका का यह चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय के १८वीं शती के बूंदीशैली के ४८ प्रसिद्ध चित्रों में से एक है। इसमें नायिका नायक की प्रतीक्षा में सज-धजकर कुंजवन में छिपी बैठी है। चित्र में काव्य के भाव को व्यतिरिक्त ढंग से अंकित किया गया हैं। प्रकृति-चित्रण का इतना घना और सुन्दर चित्रण अन्यत्र कम ही देखने को मिलता है। पशु-पक्षियों के अंकन ने काव्य के भाव एवं चित्र के परिप्रेक्ष्य को सुहावना बना दिया है। चित्र के ऊपरी पार्श्व में पीली धरती पर कवित्त इस प्रकार अंकित है—

अथ प्रच्छन्न वासकसज्जा ।। सवैया ।। चंदन बिटप बपु कोमल अमलदल, ललित वलित लता लपटी लवंग की ।। केसोदास नामैं दुरी दीप की सिखा सी दौरि दुखति नील वास दुति अंग अंग की ।। पौन पागी पंछी पसु बस सद जित-जित, होइ तित तित चौंकि चाहैं चोप संग की ।। नन्दलाल-आगम बिलोकें कुंज जाल बाल, लीनी गति तेहीं काल पंजर पतंग की ।।१२२।।

इस चित्र की फोटो-प्रति 'राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली' से प्राप्त हुई।

९. कार्तिकमास-विहार—केशव की 'कविप्रिया' के बारहमासासम्बन्धी कवित्त पर आधारित १८वीं शती के अन्त के कोटाशैली के इस चित्र में कार्तिकमास के वातावरण को चित्रकार ने सजीव बना दिया है। काव्य के भावों से भी अतिरिक्त विभिन्न कार्यकलापों का जो सूक्ष्मांकन इस चित्र में हुआ है, वह देखते ही बनता है। चित्रकार की कल्पना एवं सूझ-बूझ का पता 'प्रिन्स ऑफ वेल्स म्युजियम, बम्बई' के सौजन्य से प्राप्त प्रस्तुत फोटो-प्रति से भली प्रकार हो जाता है। चित्र में पद पीछे अंकित है जो इस प्रकार लिखा हुआ है —

।। वन उपवन जल थल आकास दीसंत दीपगन ।। सुख ही सुख सुख राति जुवा खेलत दंपतिजन ।। देव चरित्र विचित्र चित्र चित्रित आंगन घर ।। जगति जगत जगदीस जोति जगमगत नारि नर ।। दिन दान न्हान गुनगान हरि जनम सुफल करि लीजियै ।। कहि केसवदास विदेसमति कंत न कातिक कीजियै ।।८।।

१०. बेहालकृष्ण—बिहारी के दोहे पर आधृत प्रस्तुत मेवाड़शैली के चित्र में चित्रकार ने सखी की उक्ति को साकार कर दिया है। कृष्ण राधा के विरह में बेहाल पड़े हैं। उनके वस्त्राभूषण तथा अन्य उपकरण कुंज में बिछे पर्यंक पर अस्तव्यस्त पड़े हैं। सखी से गलबाँही डाले राधा चकित एवं दुखित-सी आँखें फाड़कर उनकी बेहालगी का अवलोकन कर रही है। कुंज एवं सरोवर का अंकन अनोखा एवं मनोहारी है। चित्र के ऊपरी पार्श्व में दोहे इस प्रकार अंकित हैं—

प्रभात नाईका प्रभूता को बचन

।।दुहा ।। कहा लरेते दृग करे ।। परे लाल बेहाल।

कहूँ मूरली काहा पीत पट्ट ।। कहूँ मूकट बनमाल ।।१।।

कुंज भवन तज भवन कु चलीये नंदकीसोर, फूलत कली
गुलाब की चटकाहट चहुँ ओर ॥२॥

यह चित्र कुँ० संग्रामसिंह के सौजन्य से प्राप्त हुआ है।

११. गोपी-विरह—प्रस्तुत चित्र 'बिहारी-सतसई' के दोहे पर आधारित है। मेवाड़शैली के इस चित्र में दोहे का प्रसंग स्पष्ट हो जाता है कि उद्धव कृष्ण से ब्रज में जाकर गोपियों की विरहदशा को देखने के लिए कह रहे हैं। गोपियाँ कृष्ण के विरह में इतना आँसू बहा रही हैं कि घर के द्वार से ही आँसुओं के नाले वह रहे हैं। चित्र के ऊपरी भाग में दोहा इस प्रकार अंकित है—

गोपिन के असुबन वहीं सदा असोस अपार ॥
डगर डगर ने व्है रही वगर बगर के बार ॥३२॥

यह फोटो-प्रति 'राजकीय संग्रहालय, जयपुर' के सौजन्य से प्राप्त हुई है।

१२. दर्शनभेद—प्रस्तुत चित्र मतिराम के 'रसराज' के काव्य पर आधारित है। मारवाड़शैली के इस चित्र में श्रवण, स्वप्न और चित्रदर्शन के भाव को अलग-अलग भागों में विभाजित कर अंकित किया गया है। चित्र के ऊपरी पार्श्व में दोहे इस प्रकार अंकित हैं—

॥नायक बिरहा॥ दुहा॥ प्रफुलित सुमन सुवास में। करवी आनन्द केलि॥ सोने के दिन लागि है। उर सोने की वेलि॥९९॥ श्रवण स्वप्न चित्र दर्शन॥ जैसे तैं वरन्यो सवी। रूप कान्ह को आय॥ तैसे ही मेरे चपन। रह्यो आय ठहराइ॥ १००॥ पिय मिलाप को सुव सषी। कह्यो न जात अनूप। सो सुष तैं सपनो भलो। सपनो सो सुख रूप॥ १०१॥ चित्र हु मैं जाके लषै। होइ अनन्त अनन्द॥ सपनै हू कबहू सषी। सो मिलि है ब्रजचन्द॥ १०२॥ इति श्रवण स्वप्न चित्र दर्शन॥

प्रस्तुत चित्र की फोटो-प्रति 'राजकीय संग्रहालय, जयपुर' के सौजन्य मे प्राप्त हुई।

१३. अभिसारिका नायिका—यह चित्र भी 'रसराज' पर आधारित है। अभिसारिका नायिका के उदाहरण को चित्रकार ने सुन्दर ढंग से अंकित किया है। 'पिय पै आपु हि जाय' के अनुसार नायिका सखियों-सहित कृष्ण के पास मिलन हेतु जाती हुई अंकित की गयी है, जब कि सवैये में दूती कृष्ण को शीघ्र चलने के लिए कह रही है। इस प्रकार चित्र भावानुकूल न होकर चित्रकार की कल्पना के अनुकूल है। मारवाड़शैली के इस चित्र में नायिका की आँखों का बाँकपन दर्शनीय है। चित्र में दोहा और सवैया इस प्रकार अंकित हैं—

॥ अभिसारिका नायिका ॥ दुहा ॥ पियही बुलावै आयु कै। पिय पै आपुहि जाय। ताहि कहत अभिसारिका। जे प्रवीन कविराय॥ ६८ ॥ मुग्धा अभिसारिका उदाहरन ॥ सवैया ॥ वातन जात लगाई लई रस ही रस मैं मनु

हाथ के लीनौ। लाल तिहारे बौलावन कों मतिराम मैं बोल कह्यौ पर बीनो। वेगि चलो न विलम्ब करो लष्यो वाल नवेलि को नेह नवीनो। लाजभरी अषियाँ विहसी बलि बोल कह्यौ चित्त उत्तर दीनो ॥ ६८ ॥ श्रीः ॥

यह चित्र भी राजकीय संग्रहालय, जयपुर के सौजन्य से प्राप्त हुआ है।

१४. परकीया प्रवत्स्यत्पतिका नायिका—प्रस्तुत चित्र भी मारवाड़शैली का है, जिसका आधार 'रसराज' रहा है। परकीया प्रवत्स्यत्पतिका नायिका के उदाहरण का चित्रकार ने भावानुकूल अंकन किया है। नायक के विदेशगमन की चर्चा सुनकर वह मिलन हेतु गागर लेकर मार्ग में खड़ी हो गयी है। चित्र के ऊपरी पार्श्व में कवित्त इस प्रकार अंकित है—

॥परकीया प्रवत्स्यतभर्तृका ॥ उदाहरन । कवित्त । मोहन लाल को सुन्यो चलनि विदेश भयो वाल मोहनी को चित्त निपट उचाट मैं ॥ परी तलबेली तन मन मैं छवीली राषै छित पर छिनकु छिन कु पांव षाट मैं। प्रीतम नयन कुवलयन को चन्द धरी एक मै चलैगो मतिराम जिंहि बाट मैं। नागरी नवली रूप आगरी अकेली रीती नागरी ले ठाढी भई बाट ही के घाट में ॥ ७८ ॥ ॥ श्री ॥

इस चित्र की फोटो-प्रति कुँ० संग्रामसिंह के सौजन्य से प्राप्त हुई है।

१५. कुंजविहार—जयपुरशैली के प्रस्तुत चित्र में राधा-कृष्ण के कुंजविहार का अत्यधिक मोहक अंकन हुआ है। राधा और कृष्ण गलबाँही डाले शयन हेतु कुंज में विछे हुए पर्यंक की ओर चले जा रहे हैं। कुंज का अंकन रीतिकालीन कुंजों के वैभव को प्रदर्शित करता है। राधा और कृष्ण का सौन्दर्यांकन भी मोहक है। श्रीभट्ट के 'युगल-शतक' के पद पर आधारित यह चित्र प्राकृतिक सौन्दर्य एवं रंगों की चटकता की दृष्टि से उत्कृष्ट है। चित्र के ऊपर कविता की एक पंक्ति इस प्रकार अंकित है—

॥ नदनंदन वृषभान की तनया। जै श्री भट्ट जोर अधर सुठ बनया ॥

यह फोटो-प्रति भी कुँ० संग्रामसिंह के निजी संग्रह से प्राप्त हुई है।

१६. निकुंजविहारी—यह चित्र भी श्रीभट्ट के पद पर आधारित जयपुर-शैली का सुन्दर उदाहरण है। भोर के वातावरण में पशु-पक्षियों की सचेष्टता तथा कमलों के प्रस्फुटन के साथ ही राधा का कृष्ण की बगल से पर्यंक पर से उठकर चोली की डस कसने की क्रिया का चित्रकार ने भावानुकूल अंकन किया है। कृष्ण को पाग बाँधे ही सोते हुए अंकित किया गया है, जो कदापि उचित नहीं है। शेष प्राकृतिक उपकरणों का अंकन अत्यधिक लुभावना है। चित्र के ऊपरी पार्श्व में पद इस प्रकार अंकित है—

रागविभास ॥ पद इकताल ॥ उठत भोर लालजू के संग तै कंचुकी कसत राधिका प्यारी ॥ खसि खसि परत नील पर सिर तै, ससि वदनी नव जोबन वारी ॥ टेक ॥ मन भाउ सो लाल गिरधर जू की रची है विघात सुहाथ

सवारी ।। जै श्री भट्ट सुरत रंग भीनै प्रिया सहित देषे निकुंजविहारी ।।१।।

इस चित्र की फोटो-प्रति कुं० संग्रामसिंह के सौजन्य से प्राप्त हुई है ।

१७. बैशाखमास-विहार—प्रस्तुत चित्र १९वीं शती के प्रारम्भ के अलवर के कवि आनन्दराम के बारहमासावर्णन पर आधारित है । अलवरशैली के इस चित्र में वैशाखमास में राधा और कृष्ण को अन्य गोपियों-सहित यमुनाजल में जलक्रीड़ा करते हुए अंकित किया है । प्रकृति का काव्य में जैसा वर्णन है, उसके अनुकूल ही चित्रकार ने अंकन किया है । दोहा और सवैया चित्र में निम्न प्रकार से अंकित हैं—

।। दोहा ।। उड़ि पराग जर अलि अवलि फूले सरल पलास ।। मनहू मैंन तम्बू तनैं बने घनै चहूपास ।।१।। सवैया ।। फूली है कुंज पलास थली तहाँ मूंज अली अलि गूंज सुहाई ।। चंदन सौ चरचैं वहु अंग सुडौलत संग दियो-गरवाँही।। कंज गुलाव के फूलन की रचि सेज सुगन्ध कदंव की छांही ।। माधव मास में माधव लाडिली क्रीड़त है जमुना जल मांही ।।१०।। बैसाष मास विहार ।। मुदतिनोह ।।

प्रस्तुत चित्र की फोटो-प्रति राजकीय संग्रहालय, अलवर से प्राप्त हुई है ।

१८. श्रावणमास-विहार—अलवरशैली का यह चित्र भी आनन्दराम के बारहमासावर्णन पर आधारित है । श्रावणमास में राधा और कृष्ण झूला झूल रहे हैं एवं अन्य दासियाँ संगीत की रसधार वहा रही हैं। प्रकृति श्रावणमास में अत्यधिक रंगीन हो उठती है । बादलों, वकपंक्तियों, पक्षियों एवं पेड़-पौधों के अंकन में चित्रकार ने अपना सूक्ष्मांकन का कौशल प्रदर्शित किया है । चित्र में काव्य इस प्रकार अंकित है—

।। श्री गणेशायनमः अथ बारामासा लिख्यतेः दोहा ।। श्री गुर सारद गणस हर हरि व्रह्मादि मुनीस । ब्रज विनोद रस मोद की करौ कछूक वकसीस ।।१।। नव निकुंज व्रज वननि में विहरत स्यामा स्याम ।। द्वादस मास विहार कछु बरनत आनदराम ।।२।। प्रथम मास सावन सरस छहरिति को सिरमौर । हरी भूमि द्रुम कदंम तरु झूलत है तिहि ठौर ।।३।। सवैया ।। भूमिहरी रस रूप भरी छबि इन्द्र वधू मखतूलन तूल ।। कुंज हरि नव बेली हरी सुजराय जरी नग फलन फूलै : सीतल मंद सुगन्ध समीर उसीट सुतीर कलंद्रनि कूलै ।। वलि आनन्द राम— हों मन भावन सावन मास हिडोरन झूलै ।।४।। पढ़ गुनस्वर्ग्यानः यह वारा मासा ।।

यह चित्र भी राजकीय संग्रहालय, अलवर के सौजन्य से प्राप्त हुआ है ।

१९. होली—मेवाड़शैली का प्रस्तुत चित्र दयाबाई के होली-सम्बन्धी पद पर आधारित है । पद इतना काव्यात्मक नहीं है जितना चित्र । चित्र में होली खेलते हुए कृष्ण-राधा और अन्य गोपियों की क्रिया-विदग्धता विशेष दर्शनीय है । गुलाल और पिचकारी से होली खेलना तथा डफ, मंजीर, ढोलक आदि बजाने का

दृश्य गत्यात्मकता का परिचायक है। चित्र के ऊपरी पार्श्व में पद इस प्रकार अंकित है—

॥ होरी रे मोहन रंग होरी ॥ काल हमारे आगन गारी दे गया सौ कोरी ॥ आज अचानक हमारे द्वारे खेलत रंग होरी ॥ गाल गुलाल दृगन में अंजन वेंदी भाल लगावोरी ॥ घनी गोकुल घनी बृंदावन जह यह भाग रचोरी ॥ दयासषी या नीठूर नन्द को किनी मोसे जोरा जोरी ॥

इस चित्र की फोटो-प्रति राजकीय संग्रहालय, जयपुर के सौजन्य से प्राप्त हुई।

२०. **दानसीला**—मेवाड़शैली का यह चित्र भी दयाबाई के दानलीला सम्बन्धी पद पर आधारित है। कृष्ण और गोपियों की चेष्टाओं एवं मुद्राओं को चित्रकार ने पद के अनुकूल अंकित किया है। पद में जिस प्रकार लोकभाषा का प्रभाव है, उसी प्रकार चित्र भी लोककलात्मकता से ओतप्रोत है। चित्र में पद इस प्रकार अंकित है—

॥ हमरो दान देहू व्रजनारी ॥ मदमाती गजगामिनी डोलै तू दधी वेचन हारी ॥ रूप तोही बीधंनाने दीन्हो ज्यों चन्दा उजीयारी ॥ मटुकी सीस मटीले नहना मोतियन माग संवारी ॥ हार हमेल गले में राजे अलकें घूघरवारी ॥ या व्रज में जैती सुन्दर है सब हम देषी भारी। स्याम सुन्दर तेरी या छबी पर बार-वार जात बलीहारी ॥३११॥

इस चित्र की फोटो-प्रति भी राजकीय संग्रहालय, जयपुर के सौजन्य से प्राप्त हुई है।

●●●

१

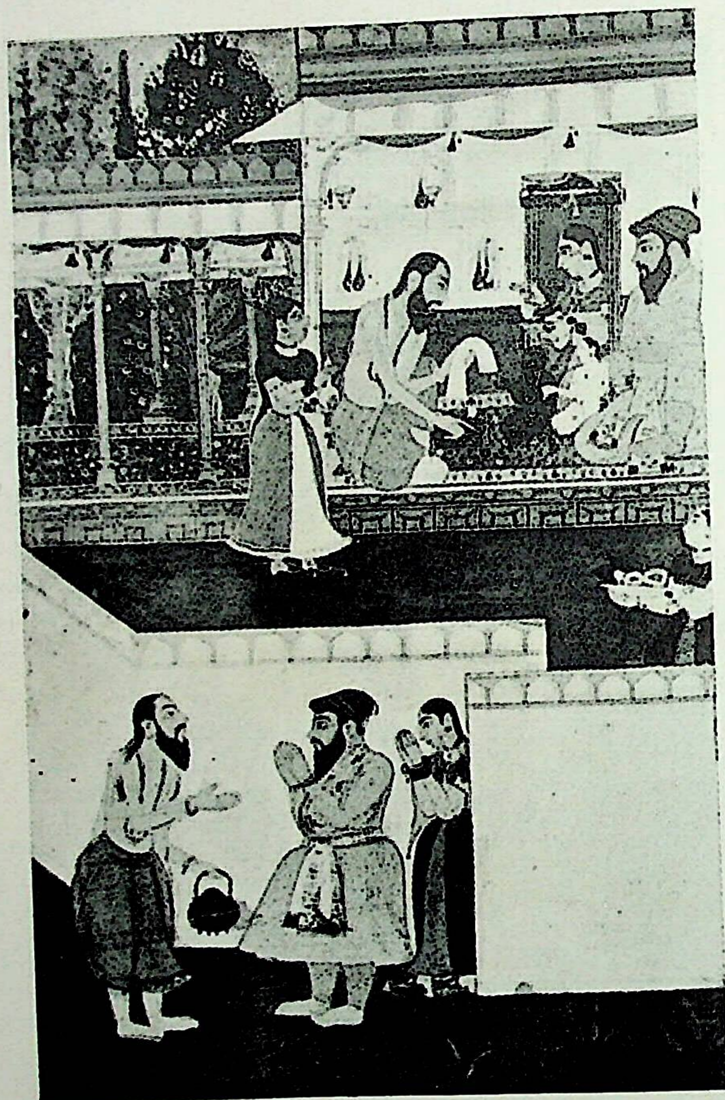
कृष्ण - लालन



सूर सागर मेवाड़ शैली

२

नामकरण



सूरसागर　　　　मेवाड़ शैली

३

गोवर्धन-पूजा



सूरसागर

मेवाड़ शैली

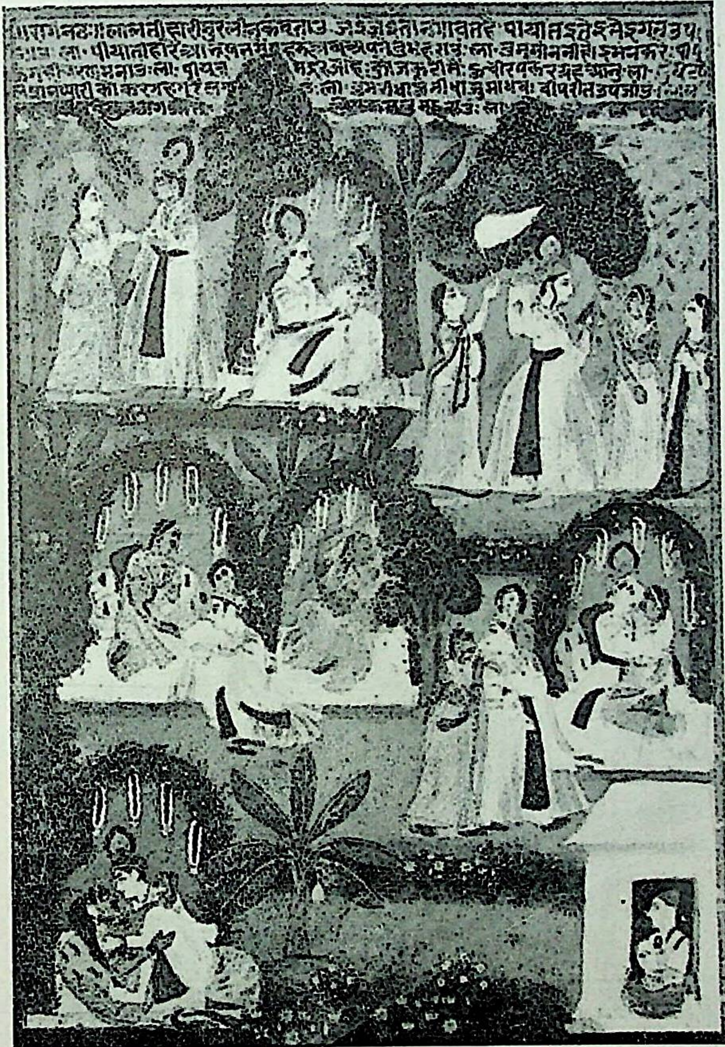
विभ्रम हाव



सूर सागर मारवाड़ शैली

५

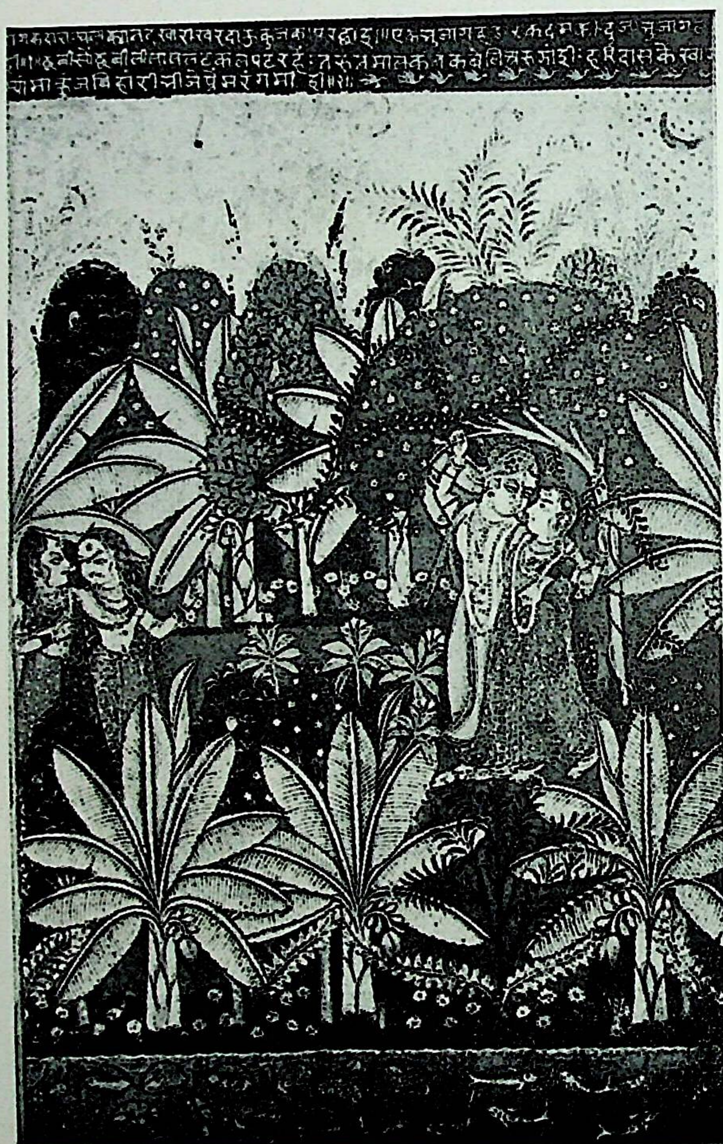
विपरीत रति



सूरसागर | मेवाड़ शैली

६

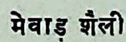
कुंज-विहार



हरिदास — नाथ द्वारा शैली

नवरसमय-व्रजराज

रसिक प्रिया



मेवाड़ शैली

वासकसज्जा नायिका

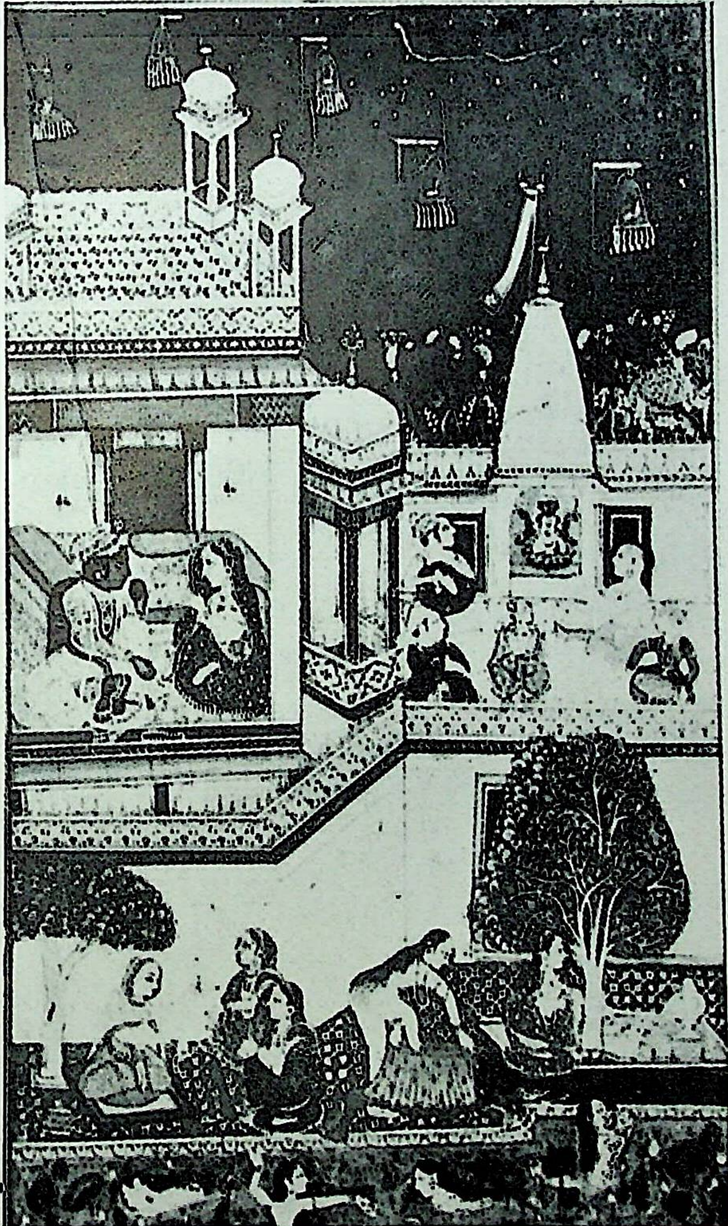


रसिकप्रिया

बूंदी शैली

९

कार्तिक-मास-विहार



कविप्रिया कोटा शैली

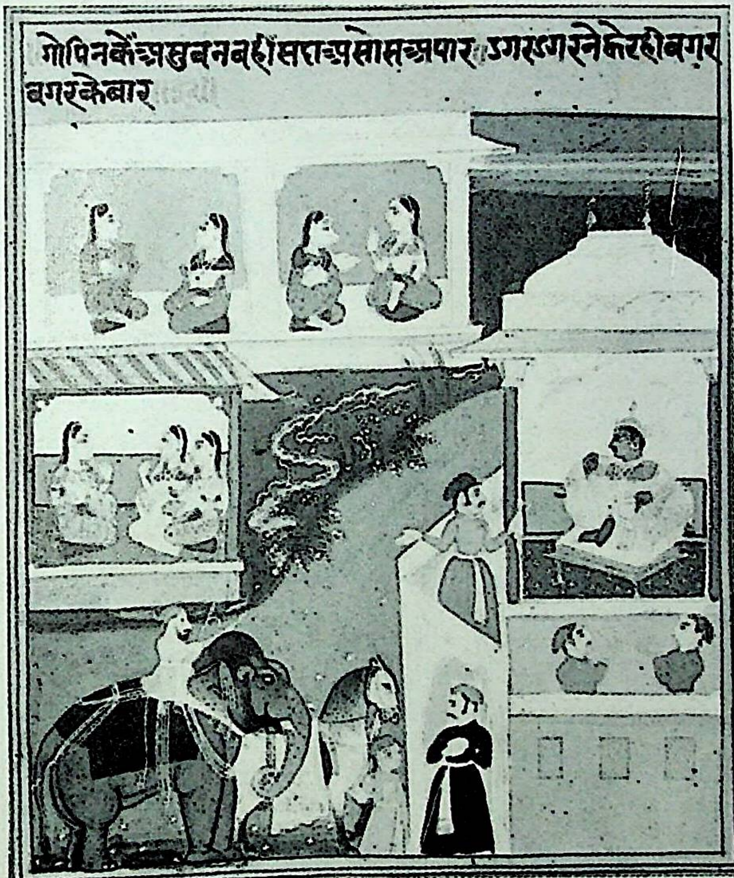
१०

वेहाल-कृष्ण



विहारी-सतमई मेवाड़ शैली

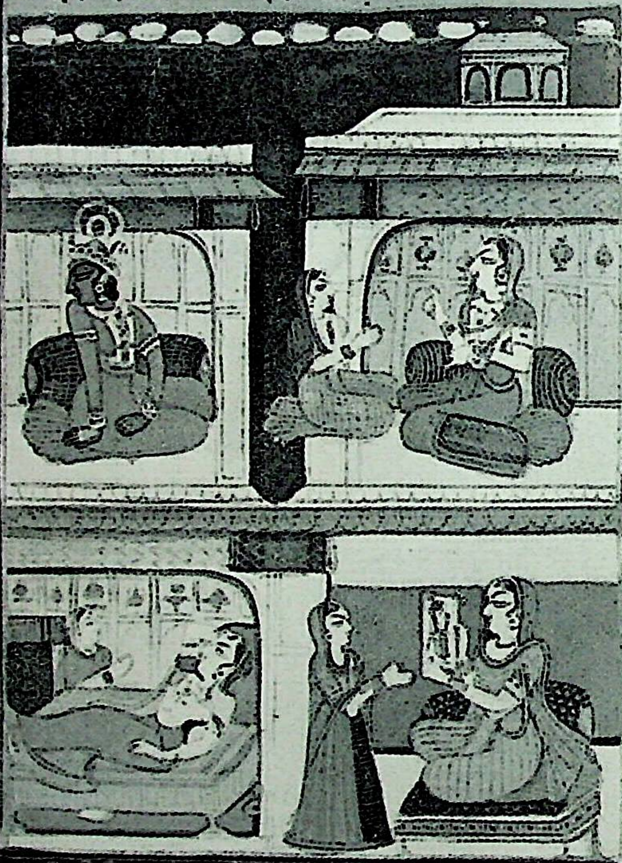
गोपी-विरह



बिहारी सतसई

मेवाड़ शैली

दर्शन-भेद

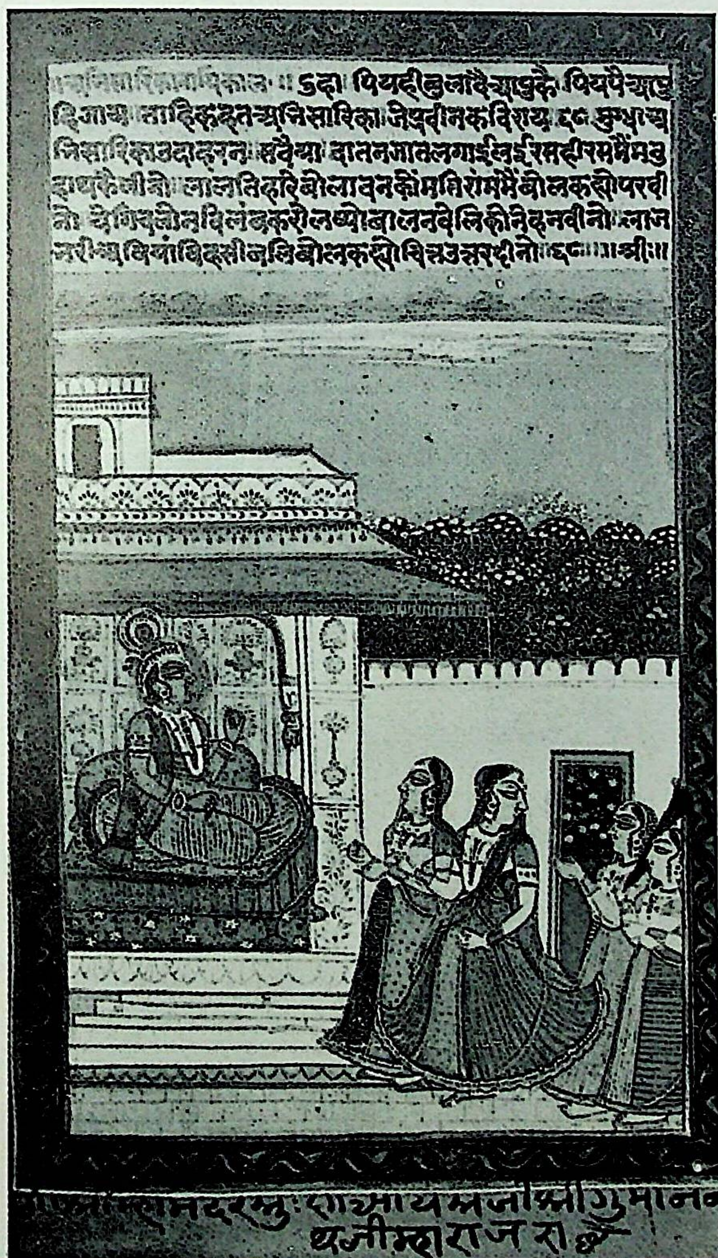


रसराज

मारवाड़ शैली

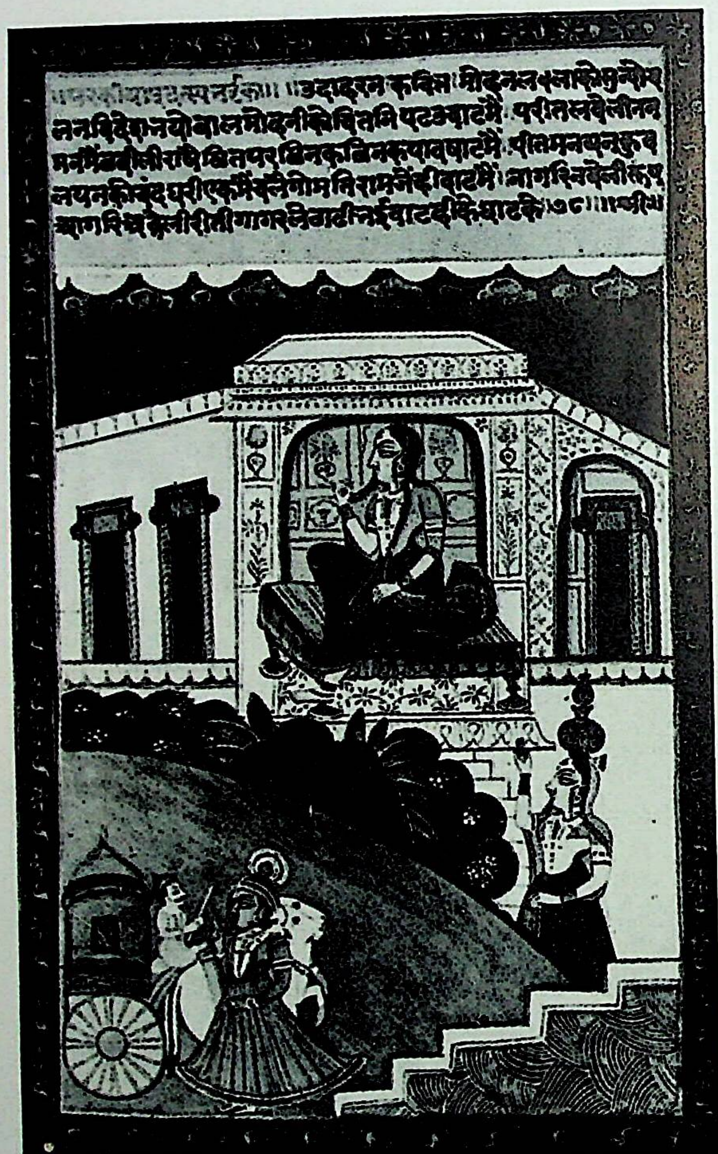
१३

अभिसारिका नायिका



रसराज — मारवाड़ शैली

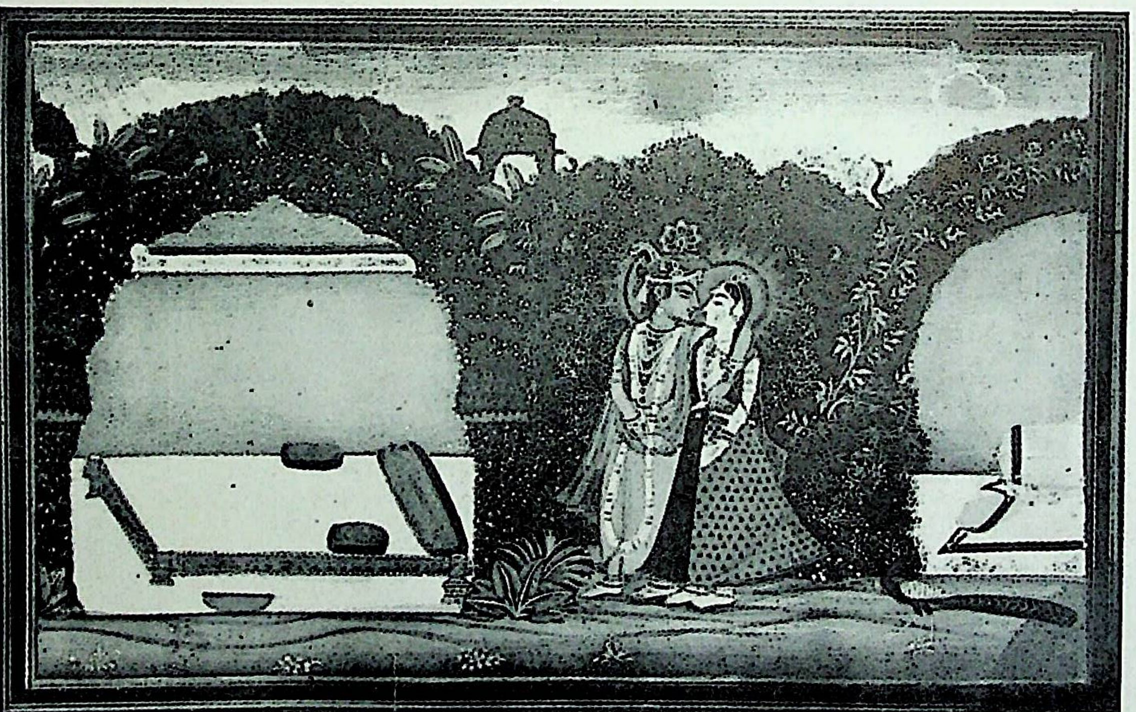
परकीया नायिका



रसराज मारवाड़ शैली

१५

कुंज-विहारी



श्री भट्ट

जयपुर शैली

१६

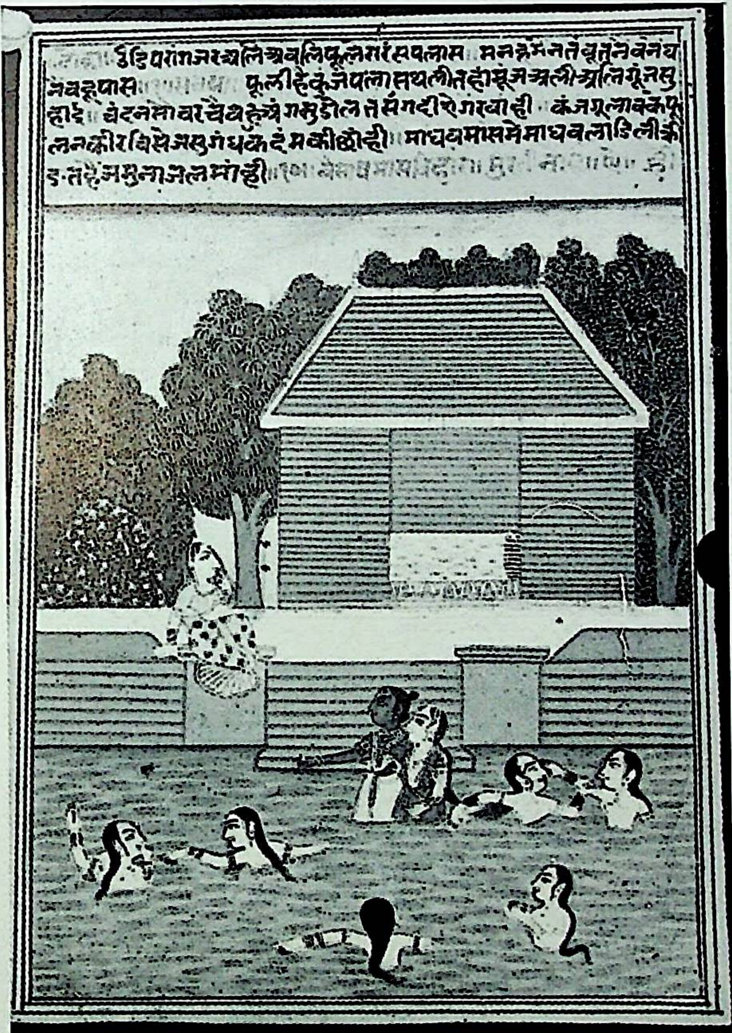
कुंज - विहार

श्रीभट्ट

जयपुर शैली

१७

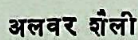
वैसाख-मास-विहार



आनन्दराम — अलवर शैली

श्रावण-मास-विहार

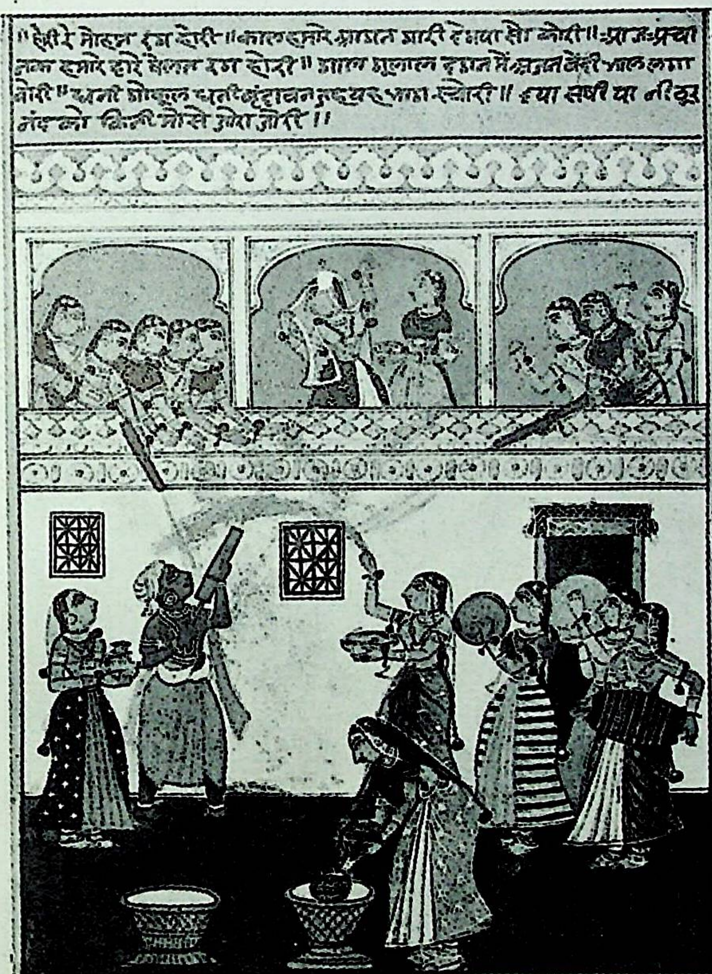
आनन्दराम



अलवर शैली

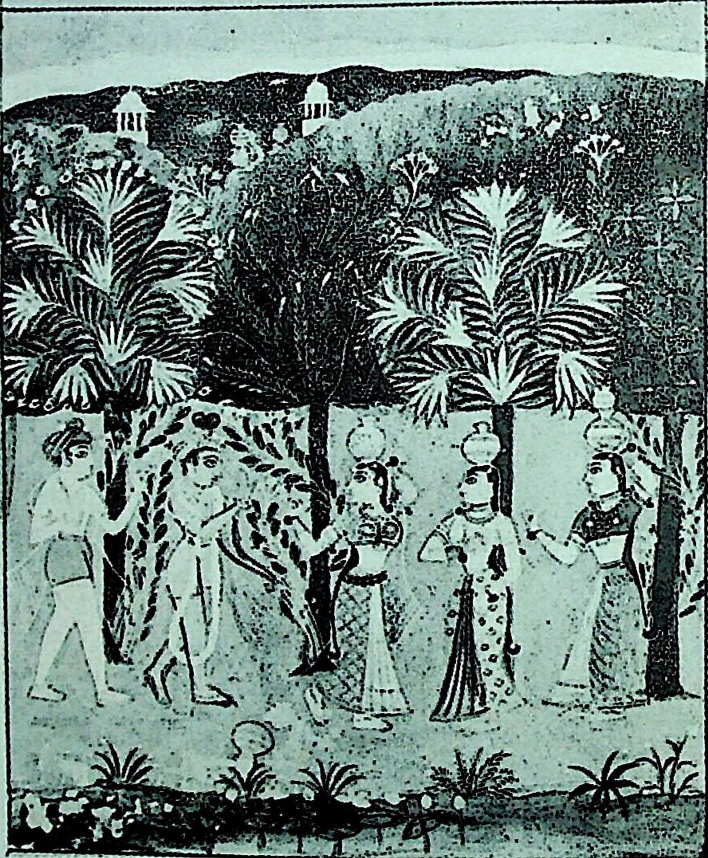
१९

होली



दयाबाई　　　　मेवाड़ शैली

दानलीला



दयावाई

मेवाड़ शैली